नित्यानन्द विलास

गुरुगीता, प्रश्नोत्तरी,

वेदान्तरत्न-जननी सुत-उपदेश,

श्रीबापजी का उपदेश एवं-वार्तालाप सम्बलित

श्रीमत्परमहंस परिव्राजकाचार्य, परम अवधूत,
ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय, श्री १०८ श्री
श्री नित्यानन्द जी महाराज
(महाप्रभुजी)
के

सदुपदेशों का संग्रह

संग्रहकर्ता तथा-प्रकाशक—

वकील भाईलाल दाया भाई त्रिपाठी

खम्बात

तृतीयावृत्ति १००० | सं० १९९४ | मूल्य २) वा नित्य-आनन्द-लाभ-

(इस पुस्तक के कवर पेज से भूमिका सहित प्रारम्भ के आठ पृष्ठ, गुरु-गीता, तथा वेदान्त-रत्न जननी-सुत-उपदेश पृष्ठ १ से ८८ तक मुद्रक पंडित रामनारायण पाठक के प्रबन्ध से श्रीराधेश्याम-प्रेस, बरेली में छपे हैं। और शेष ईष्टर्न प्रेस में मुद्रित हुआ है)

गुरु महिमा

अनेनैव प्रकारेण बुद्धिभेदो न सर्वग ।
दाता च धीरतामेति, गीयते नामकोटिभि ॥
गुरुप्रज्ञा प्रसादेन, मूर्खो वा यदि पण्डित ।
यस्तु-सम्बुध्यते तत्त्व, विरक्तो भवसागरात् ॥

(अवधूत गीता)

गुरु ब्रह्मा विष्णु हर शंकर, अग्नि मय ऋषि आदिकर।
कृतकृत्य वे हुवे हैं, एक देखे काना गाना ॥ १ ॥

प्रभु है सोई गुरु है, गुरु है सोई प्रभु है।
अरे वो आत्मा तेरो है, गोला है तुही सुखो ॥ २ ॥

उठते बैठते फिरते सद्गुरु, नाम को भजना।
भजे जिसको बिना देखे, कभी होता नहीं तिरना ॥ ३ ॥

गुरु भक्त दिव्य स्वरूप निज, देखे विराट् है ॥ ४ ॥

जब धा भजन किये से, मुक्ति न कोऊ पावे।
जब रूप वो होजावे, भव बीच गोता खावे ॥ ५ ॥

रोना हँसना विश्व में, देखो घर घर होय।
शून्य विवेकी शून्य संग, रहा शून्य को रोय ॥ ६ ॥

महावीर उनको कहैं, दे असत्य संग छोड़।
उलट वृत्ति जब देह से, निज आतम मे जोड़ ॥ ७ ॥

सूरत में ही मूरत मैही, जहां देखे वहाँ दीखू मैं ही।
कोई भेद वा न अभेद है, नहि दीखे दिल में ओट है ॥ ८ ॥

सर्व ठौर सर्व काल, नित्यानन्द को संभार।
निर्भय वोही मन्त्र जाप, खूब खात और खिलात रे ॥ ९ ॥

जड़ देह नित्य स्वरूप शून्य तज, जिनकी, अखंड सतमे रति ॥ १० ॥

लखा निज रूप नित्यानन्द कृपा गुरुदेव की पाई ॥ ११ ॥

जीव सदा शिवरूप, चराचर जीव सदा शिवरूप ॥ १२ ॥

कुछ पर्वा नहीं ॥ १३ ॥

AM Soul Almighty immortal ॥ १४ ॥

* प्रस्तावना *

परब्रह्म परमात्मा की अनादि सिद्ध शक्ति द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डात्मक संसार में अनेक जन्मार्जित शुभाशुभ कर्मों के कारण ऊँच नीच गति को प्राप्त होनेवाले प्राणी मात्र का सर्वोत्कृष्ट कर्त्तव्य इस भवसागर के सर्व दुःखादि से सदा के लिये मुक्त होकर परमानन्द रूप होना ही है। परन्तु—ऐसे परमपद की प्राप्ति प्रत्येक जन के लिये सहज नहीं किन्तु—प्रबल पुरुषार्थ द्वारा संस्कार साध्य है। इस प्रकार के संस्कार भी स्वधर्मानुष्ठान तथा शमदमादि साधन प्राप्त होने पर्यन्त उपार्जित होकर अन्तःकरण को शुद्ध करते हैं।

अन्तःकरण जितना निर्मल होता है, उतने ही अंशमे तो उस पर वेदान्त के गूढ़ तत्त्व सम्बन्धी सारगर्भित रहस्य के समझाने वाले सद्गुरु के वचनामृत का अलौकिक प्रभाव पड़ता है। जो सज्जन ऐसे अलौकिक प्रभाव से अलभ्य लाभ उठाना चाहें, उनके लिये यह पुस्तक बहुत उत्तम साधन है, जिसके विभिन्न उपदेश प्रति दिन के व्यवहार में परिणत कर वे निज के जीवन को सब प्रकार से सफल कर सकते हैं।

इस ग्रन्थ में संगृहीत रत्नों के प्रणयिता श्रीमान् परम हंस परिव्राजकाचार्य, परम अवधूत, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय, सद्गुरुदेव

प्रस्तावना

स्वयं नारायण रूप श्री नित्यानन्द जी महाराज ने अपने भक्त जनों पर अनुग्रह करके प्रसंगोपात्त सदुपदेश, किंवा-तत्वबोधक विनोदरूप से तात्कालिक पद रचना द्वारा जो उद्गार समय २ पर प्रगट किये, वे अतिरोचक और स्पष्ट होने के अतिरिक्त सर्व हितकारक प्रतीत हुए, इसी कारण हमने उनका यथा संबन्ध संग्रह करके, पृथक् शीर्षक रूपी अंगो में उनको विभक्त कर शृङ्खला बद्ध किया तो सहज ही यह सुन्दर पुस्तक बन गई। इस का नाम "नित्यानन्द विलास" भी हमने ही रख दिया है। वास्तव में-पूज्यपाद स्वामी जी ने न तो कभी लेखनी उठाकर ग्रन्थ निर्माण करने का यत्न किया और न उनका ऐसे कर्मों की ओर लौकिक दृष्टि से कोई लक्ष्य ही दिखाई देता है। तथापि-परमात्मा को ऐसे महापुरुषों द्वारा जब सांसारिक लोगों पर कुछ उपकार कराना होता है तो प्रकृति स्वयं अपना कार्य बड़ी विलक्षणता से करती है।

इस कल्याण कारक संग्रह मे हृदयाकर्षक छन्द लालित्य के साथ ही सदाचार से लेकर तत्त्वज्ञान पर्यन्त अनेक विषयों का सार और सचोट रूप से युक्ति पूर्वक विवेचन, बड़ी गम्भीरता से पूर्ण किया गया है, और स्थान स्थान पर सर्व व्यापी, स्वयं प्रकाश, नित्यानन्द स्वरूप का प्रतिपादन भी बहुत ही सुन्दरता पूर्वक करने में आया है। ऐसा यह परम हितकारी संग्रह केवल इसी

* प्रस्तावना *

परब्रह्म परमात्मा की अनादि सिद्ध शक्ति द्वारा अनन्त ब्रह्माण्डात्मक संसार में अनेक जन्मार्जित शुभाशुभ कर्मों के कारण ऊँच नीच गति को प्राप्त होनेवाले प्राणी मात्र का सर्वोत्कृष्ट कर्तव्य इस भवसागर के सर्व दुःखादि से सदा के लिए मुक्त होकर परमानन्द रूप होना ही है। परन्तु—ऐसे परमपद की प्राप्ति प्रत्येक जन के लिये सहज नहीं किन्तु—अनेक पुरुषार्थ द्वारा संस्कार साध्य है। इस प्रकार के संस्कार भी स्वधर्मानुष्ठान अथवा शमदमादि साधन प्राप्त होने पर्यन्त उपचित होकर अन्तःकरण को शुद्ध करते हैं।

अन्तःकरण जितना निर्मल होता है उतने ही अंशमें तो उस पर वेदान्त के गूढ़ तत्त्व सम्बन्धी सारगर्भित रहस्य के समाधान वाले सद्गुरु के वचनामृत का अलौकिक प्रभाव पड़ता है। जो सज्जन ऐसे अलौकिक प्रभाव से अत्यन्त लाभ उठाना चाहें, उनके लिये यह पुस्तक बहुत उत्तम साधन है, जिसके विभिन्न उपदेश प्रति दिन के व्यवहार में परिणत कर के निज के जीवन को सब प्रकार से सफल कर सकते हैं।

इस ग्रन्थ में संगृहीत रत्नों के प्रणेता श्रीमान् परम हंस परिव्राजकाचार्य, परम अवधूत, ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्मश्रोत्रिय, सद्गुरुदेव

तृतीयावृत्ति की प्रस्तावना

'नित्यानन्द विलास" कैसा उपादेय ग्रन्थ है इसके विषय मे जितना भी लिखाजाय थोड़ा है। आज मालवा और उत्तर भारत सहित गुजरात काठियावाड ही नहीं अपितु-साधारणतः सारे भारतवर्ष और अफ्रीका द्वीप तक में इसके पदों की ध्वनि गूंज रही है। असख्य भावुक जनता इससे लाभ उठा रही है। ऐसे सद्‌-ग्रन्थ की तृतीयावृत्ति प्रकाशित करते हुए हमको परम आनन्द होना स्वाभाविक है।

इस ग्रन्थ के प्रथम संग्रहकर्त्ता स्वनाम धन्य, परम गुरु भक्त, ब्रह्म-लीन श्री प० कन्हैयालाल जी उपाध्याय।वकील रतलाम आज हम लोगों में नहीं हैं, परन्तु-उनकी सग्रहकर्त्ता रूप से स्मृति होना भी हम लोगों के लिये कल्याणकारी है। उन पुण्य पुरुष का जीवन-चरित तयार हो रहा है, उससे हम लोग जान सकेंगे कि-वह कैसे पुरुष थे, और उन पर महाप्रभुजी की कैसी कृपा थी, अस्तु।

प्रथमावृत्ति हिन्दी अक्षरों में "भुवनेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस रतलाम" से तथा-द्वितीयावृत्ति गुजराती अक्षरों मे 'सूर्य प्रकाश प्रिंटिंग प्रेस अमदाबाद" से बहुत कुछ परिवर्द्धन सहित प्रकाशित हुई थी, वह सब खप जाने से यह तृतीयावृत्ति प्रकाशित की जा रही है। भावुक गुरु-भक्तों को श्रीमहाप्रभु के लगभग सभी उपदेशों का एकत्र लाभ प्राप्त हो सके, एतदर्थ गुरुगीता, प्रश्नोत्तरी, जननी-सुत उपदेश (वेदान्त रत्न), बापजी का उपदेश, वार्ताप्रसंग तथा-छुटपुट कविताओं को एक ही सूची में आवद्ध कर दिया गया है।

शुभ भावना से प्रकाशित किया जाता है कि–भक्तालु जन समीप इसका मनन कर चालन द्वारा नित्य–आनन्द–धाम प्राप्त करें।

ऐसा अपूर्वज्ञान परम दयालु स्वामी जी की सेवा में थोड़े ही काल के वास्तविक सत्संग से प्राप्तकर एक विद्वान् ने निज के हार्दिक–भाव इस प्रकार प्रगट किये हैं —

गुरुदेव की कृपा से, आनन्द हो रहा है ॥टेक॥
तम से घिरा हुआ था, जो अन्ध हो रहा था।
वो दिव्य ज्योति पाकर, स्वर्भानु हो रहा है ॥
गुरुदेव की कृपा० ॥१॥

जो था गरीब भारी दर द्वार का भिखारी।
वो दिव्यकोष पाकर, अक्रमस्त हो रहा है ॥
गुरुदेव की कृपा० ॥२॥

भ्रम से भटक रहा था, दिन रात रो रहा था।
लाचार हो रहा था, वह आज हँस रहा है ॥
गुरुदेव की कृपा० ॥३॥

भयभीत हो रहा था, जो दीन हो रहा था।
सर्व पदार्थ से जो, निर्भीक हो रहा है ॥
गुरुदेव की कृपा ॥४॥

सम्पादक—

तृतीयावृत्ति की प्रस्तावना

'नित्यानन्द विलास'' जैसा उपादेय ग्रन्थ है इसके विषय मे जितना भी लिखाजाय थोड़ा है। आज मालवा और उत्तर भारत सहित गुजरात काठियावाड ही नहीं अपितु–साधारणतः सारे भारतवर्ष और अफ्रीका द्वीप तक में इसके पदों की ध्वनि गूंज रही है। असंख्य भावुक जनता इससे लाभ उठा रही है। ऐसे सद्‌ग्रन्थ की तृतीयावृत्ति प्रकाशित करते हुए हमको परम आनन्द होना स्वाभाविक है।

इस ग्रन्थ के प्रथम संग्रहकर्त्ता स्वनाम धन्य, परम गुरु भक्त, ब्रह्मलीन श्री पं० कन्हैयालाल जी उपाध्याय वकील रतलाम आज हम लोगों में नहीं हैं, परन्तु–उनकी सग्रहकर्त्ता रूप से स्मृति होना भी हम लोगों के लिये कल्याणकारी है। उन पुण्य पुरुष का जीवन-चरित तयार हो रहा है, उससे हम लोग जान सकेंगे कि–वह कैसे पुरुष थे, और उन पर महाप्रभुजी की कैसी कृपा थी, अस्तु।

प्रथमावृत्ति हिन्दी अक्षरों में ''भुवनेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस रतलाम'' से तथा–द्वितीयावृत्ति गुजराती अक्षरों में 'सूर्य प्रकाश प्रिटिंग प्रेस अमदावाद'' से बहुत कुछ परिवर्द्धन सहित प्रकाशित हुई थी, वह सब खप जाने से यह तृतीयावृत्ति प्रकाशित की जा रही है। भावुक गुरु-भक्तों को श्रीमहाप्रभु के लगभग सभी उपदेशों का एकत्र लाभ प्राप्त हो सके, एतदर्थ गुरुगीता, प्रश्नोत्तरी, जननी-सुत उपदेश (वेदान्त रत्न), बापजी का उपदेश, वार्ताप्रसंग तथा–छुटपुट कविताओं को एक ही सूची में आवद्ध कर दिया गया है।

क्षमाप्रार्थना

यद्यपि—लगभग १ वर्ष में यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है, इसमे मेरे जैसे व्यक्ति का प्रमाद ही मुख्यत: अक्षम्य अपराध माना जासकता है। तथापि—भवितव्यता बलीयसी भगवदिच्छा क्या कुछ नहीं कर सकती था—कर सकती ?

क्षन्तव्यो मेऽपराध शिव शिव शिव भो श्रीमहादेव शम्भो

तथा—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृत स्वभावात् ॥
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥

विनीत

प्रकाशक—

क्षमाप्रार्थना

यद्यपि—लगभग १ वर्ष में यह पुस्तक प्रकाशित हो रही है, इसमें मेरे जैसे व्यक्तिका प्रमाद ही मुख्यतः असम्य अपराध माना जासकता है। तथापि—अघटित घटना पटीयसी भगवदिच्छा क्या कुछ नहीं कर सकती था—करा सकती ?

क्षन्तव्यो मेऽपराधः शिव शिव शिवभो श्रीमहादेव शम्भो

तथा—

कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वाऽनुसृत स्वभावात् ॥
करोमि यद्यत् सकलं परस्मै
नारायणायेति समर्पयामि ॥

विनीत

प्रकाशक—

॥ विषय सूची ॥

१—श्री गुरु-गीता ।

२—प्रश्नोत्तरी ।

विषय	पृष्ठ

नित्य-पाठ

सद्गुरु देव की आरती

नित्यानन्द-विलास

मंगला चरण

परमात्मा की महिमा

(३) मस्तों के हृदयोद्गार

(४) गुरु महिमा

(५) सन्त महिमा

(६) जिज्ञासु को सद्गुरु उपदेश

७ ऋद्धि-सिद्धि

८ ज्ञानी के लक्षण

(९) मन और चित्त को उपदेश

(१०) महिला-उपदेश

७ शुद्धि-सिद्धि

८ ज्ञानी के लक्षण

(१३) श्री राम विनोद

(१४) नित्यआनन्द स्तुति

श्रीगुरु-गीता

प्रकाशक—

भाईलालभाई डी. त्रिवेदी,

वकील हाईकोर्ट,

केम्बे (Cambay).

प्राप्ति स्थान—

पं० कान्तिचन्द्र श्रीनिवासजी पाठक,

रतलाम.

प्रथम बार २,०००] सन् १९३७ [मूल्य ।-)

Printed by Pt Ram Narayan Pathak at the Shri Radhey Shyam Press, Bareilly—108—2000—20-11-36

सत्यं नामविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्यं जगत्कारणं,
व्याप्तं स्थावरजङ्गमं मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः ।
अर्काग्नीन्दुमयं गताचरवपुस्तारात्मकं संततं,
नित्यानन्दगुणालयं गुणपरं वन्दामहे तन्महः ॥

—०—

ॐ

प्रास्ताविक निवेदन।

प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है, नकि–दुःख। परन्तु–"वास्तविक सुख किसे कहते है ? तथा–वह किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ?" इसके विषय में भगवती 'श्रुति' कहती है—

"तमेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति,
नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।"

(यजुः)

भावार्थः—'उस परब्रह्म परमात्मा को जानकर ही मनुष्य 'शाश्वतसुख–अमृत' (मोक्ष) पद को प्राप्त कर सकता है। इसके अतिरिक्त–अन्य और कोई उपाय नहीं है'।

दूसरी श्रुति कहती है.—

"आचार्यवान् पुरुषो वेद।"

(छान्दोग्योपनिषद्)

भावार्थ.—'परन्तु–जो ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मश्रोत्रिय गुरु वाला (शिष्य) है, वह ही उस परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान प्राप्त कर सकता है;

इतर (नुगरा) व्यक्ति नहीं । इसी बात को श्री गोस्वामी तुलसीदास जी अपने शब्दों में इस भाँति स्पष्ट करते हैं—

चौपाई—

गुरु बिन भव निधि तरै न कोई ।
जो विरञ्चि शङ्कर सम होई ॥

इसी को ॐ प्रभु श्री 'अपहरि' जी निम्न शब्दों में बताते हैं—

दोहा—

गुरु बिन ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिटे न भेव ।
गुरु बिन संशय ना मिटे, जय २ श्री गुरुदेव ॥

× × × ×

परन्तु—प्रथम तो वैसे 'सद्गुरु' की पहिचान, और उनका प्राप्त होना कठिन, पश्चात्—उनकी प्रसन्नता प्राप्त कर लेना तो बहुत ही कठिन कार्य है, क्योंकि—गुरु की प्रसन्नता परा गुरु—भक्ति बिना प्राप्त नहीं हो सकती । यथा—

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः, प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

भावार्थ —"जिसकी देव (भगवान्) में परा भक्ति है, और जैसी देव (भगवान्) में है, वैसी ही अपने श्री गुरुदेव में है

उसी को यह सब शास्त्रो मे कहे हुए विषय प्रकाशित होते हैं" ।
ऐसी स्थिति में यद्यपि—

**"तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाऽभिगच्छेत्समित्पाणिः ।
श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्"**

भावार्थ —उस परब्रह्म परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये-अधिकारी पुरुष भेट हाथ मे लेकर ब्रह्मश्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाय।" इत्यादि श्रुति तथा-पुराण और इतिहासों के अनेक कथानकों में गुरुशरणागति की विधि बतायी गयी है, परन्तु-अत्यन्त संक्षेप से ।

अत —यह विषय अत्यन्त गम्भीर एवं सब सिद्धियों का मूल होने से कृपालु भगवान् श्री शङ्कर ने जगज्जननी श्री पार्वती जी के प्रति यत्किञ्चित् विस्तार से लोकोपकार्थ प्रकट किया, वही यह—

"श्री गुरुगीता" है ।

परन्तु—गुरुगीता जैसे गम्भीर उपनिषद् का सम्पूर्ण अर्थ लेखनी द्वारा प्रगट करना अत्यन्त कठिन ही नहीं अपितु-असम्भव है, वह तो गुरु कृपा प्राप्त होने पर स्वत हृदय में प्रकाशित होने होने वाला विषय है। जिज्ञासु-पुरुषों को इस के पाठ से उक्त कथन का आभाष प्राप्त होगा इस में संशय नहीं अस्तु-

× × × ×

यह गुरुगीता साम्प्रतं अप्राप्य-दुर्लभ सी होगयी है। बहुत खोज करने पर महाराष्ट्र, गुर्जर तथा-हिन्दी भाषी प्रान्तों से सिर्फ ११ प्रतियां; वह भी अस्तव्यस्त एवं अपूर्ण प्राप्त हुई हैं। क्योंकि—जिसके पास यह पुस्तक है, वह वंश परम्परया प्राणों से भी अधिक इसे छिपाकर रखता है। तथापि श्री गुरुदेव की कृपा से प्राप्त प्रतियों और स्मान ग्रन्थों से मिलान कर इसे प्रकाशित किया जा रहा है। ॐ एतेन सुप्रीतां गुरुः।

ॐ तत्सत्
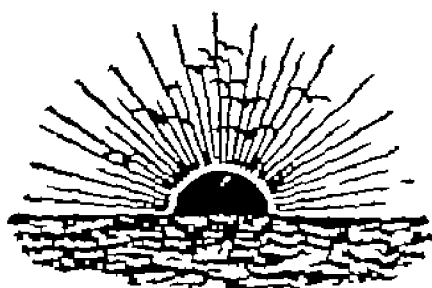
दोहा ।

अड़े रहो गुरु चरण में, अपना जाप अजाप ।
सदा विश्वव्यापक अचल, गुरुवर आपहि आप ॥

भजन (राग–भैरवी)

कौन करे सन्मान, गुरुविन । कौन करे सन्मान ।
गुरु–भक्त की गुरु–कृपा से, छुट जाये चौखान ।। टेक ।।
अष्ट-सिद्धि नव-निद्धि जिनके, अवर करे धन धान ।
स्थिर लोक परलोक में रहे वे, करे गमनागमन नहिं प्राण ।।१।।
मतलब विन तू देख लोक में, मान दे आप अमान ।
सम्यक् ज्ञान होय सोइ मुनिगुण, है कचित् पुरुष जन अजान ।।२।।
समवृत्ति सम होय दृष्टि गुरु, कर गुरु का गुण गान ।
है उल्लेख 'गुरूणां गुरुवर', कर दिव्य दृष्टि होय भान ।।३।।
मन्दिर महल गाँव वन तीरथ, बसह जाय समसान ।
नित्यानन्द चराचर व्यापक, है श्री गुरु भगवान् ।।४।।

भजन (राग–भैरवी)

गुरु विन कौन लड़ावे लाड ।
मात तात पत्नी सुत आदि दे–भोग मोक्ष में आड ।।टेक।।
भूत भविष्यत् वर्तमान में, होय आनन्द मल छाँड ।
अन्न वस्त्र फल फूल दूध घृत, भेटो ऑल् माइटी दी गॉड ।।१।।
नित्य शुद्ध गुरु निराकार है, निराभास ओंकार ।

चिदानन्द निजबोध रूप को, जग्य लगो नहिं दाग ॥२॥
विमल अनादि अक्षर ब्रह्म शिव, अखण्ड निरंजन आप ।
स्वयं साक्षि चेतन निज आतम, अक्रिय अविनाशी व्याप ॥३॥
"मायातीतं त्रिगुणरहितं" ब्रह्म तत्त्व में नाहिं राग ।
शेष महेश शारदा कथते, सुनहु जग कछुवा काग ॥४॥

भजन (राग—भैरवी)

कौन करे कल्याण ? गुरू बिन कौन करे कल्याण ।
सुजन कहूँ बिन गुरू मैं पायो विद्या ज्ञान सुन मान ॥टेक॥
निद्रा भोजन भोग भय,—ये पशु पुरुष समान ।
नर निज ज्ञान अधिकता मानहु ज्ञान बिना पशु जान ॥१॥
सत्य असत्य द्वैत जो कहिये वे अद्वय यथारथ ज्ञान ।
शिष्य गुरु को खोज शिष्य गुरु, तब पावे पद निर्वाण ॥२॥
ब्रह्मज्ञान अपरोक्ष बिना गुरु कृपा सके नहिं आन ।
जीवन मुक्त करे गुरु छिन में धर हृदये गुरु पद को ध्यान ॥३॥
मान कहूँ पापी सब मायी, पापी गुरु के हाथ ।
परम कृपालु करुणासागर, नित्यानन्द पिछान ॥४॥

दोहा ।

परम सनेही विश्व में, श्री गुरु तेरा मीत ।
कृत कृत्य तुमको करे, तज प्रमाद मति चीत ॥१॥

ॐ

नित्यानन्द परम सुखदं केवलं ज्ञानमूर्ति ।
द्वन्द्वातीत गगन सदृश तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥

श्री महाप्रभु अवधूत श्री [illegible] श्रीनित्यानन्दजी महाराज

अथ गुरुगीता प्रारम्भः

❀ श्रीगणेश-शारदा-सद्गुरु-मंगल-मूर्तिभ्योनमः ❀

यं ब्रह्म वेदान्त-विदो वदन्ति,
परं प्रधानं पुरुषं तथान्ये।
विश्वोद्भुतेः कारणमीश्वरं वा,
तस्मै नमो विघ्ननिवारणाय ॥ १ ॥

ॐ अस्य श्रीगुरुगीता माला मन्त्रस्य ॥ भगवान् सदाशिव ऋषि ॥ विराट् छंद ॥ श्रीगुरु-परमात्मा देवता ॥ हं बीजम् ॥ सः शक्ति ॥ सोहं कीलकम् ॥ श्रीगुरु-प्रसाद सिद्धयर्थे जपे विनियोग ॥

॥ अथ करन्यासः ॥

ॐ हं सां सूर्यात्मने अंगुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां नमः ॥ ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सौं अतनु-सूक्ष्मात्मने कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ हं सः अव्यक्तात्मने करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । इति करन्यासः ॥

॥ अथ हृदयादिन्यासः ॥

ॐ हं सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः ॥ ॐ हं सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा ॥ ॐ हं सूं निरञ्जनात्मने शिखायै वषट् ॥ ॐ हं सैं निराभासात्मने कवचाय हुम् ॥ ॐ हं सौं अतनुसूक्ष्मात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् ॥ ॐ हं सः अव्यक्तात्मने अस्त्राय फट् ॥ इति हृदयादि न्यासः ॥

॥ अथ ध्यानम् ॥

हंसाभ्यां परिवृत्त-पत्र-कमलैर्दिव्यैर्जगत् कारणं,
विश्वोत्कीर्णमनेक-देह निलयं स्वच्छन्दमानन्दकम् ।
आद्यन्तैकम-खण्ड-चिद्घन-रसं पूर्णं ह्यनन्तं शुभं,
प्रत्यक्षाक्षरविग्रहं गुरुपदं ध्यायेद्विभुं शाश्वतम् ॥ १ ॥

ॐ प्राणीमात्र में व्यापक आत्मस्वरूप सुन्दर-शुभ्र तथा दिव्यनत्रवाले जगत् के कारणस्वरूप, विश्वाकार को अमकन्द धारण करनेवाले, स्वच्छन्द आनन्ददाता, अखंड एक रस

सच्चिदानन्द, पूर्ण, अनन्त, कल्याणकर्त्ता, प्रत्यक्ष, अक्षर विग्रहवाले, शाश्वत, विभु, श्रीगुरुदेव के चरण कमलों का ध्यान करो ॥ १ ॥

विश्वं व्यापि नमामि देवममलं नित्यं परं निष्कलं,
नित्योद्बुद्ध-सहस्र-पत्र-कमलं कुसान्तरे मण्डपे ॥
नित्यानन्दमयं सुखैकनिलयं नित्यं शिवं स्वप्रभं,
ध्यायेद्धंस--परं परात्परतरं स्वच्छंदसर्वागमम् ॥२॥

श्रीगुरुदेव कैसे हैं कि-संसार भर में व्यापक, निर्मल, नित्य, पर, निष्कल, नित्यबुद्ध-बोधस्वरूप, सहस्रदल-कमल में ॐ में विराजित, नित्यानन्दस्वरूप, सुख समुद्र, त्रिकालावाधित, कल्याण-कर्ता, अपनी प्रभा में प्रकाशित, पर, परात्पर, आत्मस्वरूप, स्वच्छन्द और सर्वत्र व्यापक हैं-ऐसे श्रीगुरुदेव को मेरा नमस्कार है ॥२॥

ऊर्ध्वाम्नायगुरोः पदं त्रिभुवनोंकाराख्यसिंहासनं,
सिद्धाचारसमस्तवेदपठितं षट्चक्रसंचारणम् ।
अद्वैतस्फुरदग्निमेकममलं पूर्णप्रभा-शोभितं ,
शान्तं श्रीगुरुपंकजं भज मनश्चैतन्यचंद्रोदयम् ॥ ३ ॥

हे मन ! श्रीगुरुदेव के चरणकमल सर्व वेदों के श्रेष्ठ भाग उपनिषद्-वेदान्त द्वारा स्तुति किये हुए, ज्ञानदाता, त्रिभुवन के आधार रूप, ॐकार नामक सिंहासनरूप, सिद्धाचार और समस्त वेदों से पठित, षट्चक्रों के संचारण रूप, अद्वैत तत्व के स्फुरण

करानेवाले, एक अद्वितीय रूप, अखिलस्वरूप, पूर्ण प्रकाश से सुशोभित, शान्त और सौम्य चन्द्र के उदय रूप हैं तू सदा उनका ध्यान कर ॥ ३ ॥

नमामि सद्गुरुं शान्तं, प्रत्यक्षं शिवरूपिणम् ।
शिरसा योगपीठस्थं, मुक्तिकामार्थसिद्धिदम् ॥ ४ ॥

शान्त, प्रत्यक्ष शिवरूप योगासन पर विराजित तथा मुक्ति की इच्छावालों को उनकी इच्छित सिद्धि देनवाले प्रेम श्रीसद्गुरुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ ॥ ४ ॥

प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे, द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम् ।
वराभयकरं शान्तं, स्मरेत्-नाम-पूर्वकम् ॥ ५ ॥

प्रातः काल में—श्वेतकमलपरस्थित दो नेत्र दो भुजावाले वरदमूर्ति अभय-कर्ता शान्तरूप श्रीगुरुदेव का उनके नाम सहित स्मरण-ध्यान करे।

प्रसन्नवदनाक्षं च, सर्वदेवस्वरूपिणम् ।
तत्पादोदकजा धारां, निपतन्तीं स्व-मूर्धनि ॥ ६ ॥

जो प्रसन्न मुखारविन्दवाले हैं, सर्वदेव-स्वरूप हैं और जिनके चरणकमलों से निकली अमृतधारा को मस्तक पर धारण करने से शिष्य सब दुःखों से निवृत्ति पाता है ॥ ६ ॥

तया संक्षालयेद्देहे, ह्यन्तर्बाह्यगतं मलम् ।
तत्क्षणाद्विरजो मन्त्री, जायते स्फटिकोपमः ॥ ७ ॥

इस अमृतधारा मे देह क्षालन करने से अन्तर वाहिर के सव मल दूर होकर हृदय मे गुरु मन्त्र' स्फटिक मणि के समान प्रकाशमान होजाता है ॥ ७ ॥

तीर्थानि दक्षिणे पादे, वेदास्तन्मुखमाश्रिताः ।
पूजयेदर्चितं तंतु, तदभिध्यानपूर्वकम् ॥ ८ ॥

श्रीगुरु के दाहिने चरण में सव तीर्थ निवास करते हैं, तथा– सर्व वेद उनके मुखारविन्द मे स्थिर है, इसलिये ध्यान पूर्वक उनकी पूजा अर्चा करना चाहिये ।

सहस्रदलपंकजे सकल-शीत-रश्मि-प्रभं,
वराभय-कराम्बुजं विमल–गंध–पुष्पाम्बरम् ।
प्रसन्न–वदने–क्षणं सकल–देवता–रूपिणं,
स्मरेच्छिरसिहंसगं तदभिधानपूर्वं गुरुम् ॥ ९ ॥

सहस्रदल कमल मे, सकल शान्त, तेज प्रभावाले, अभय करनेवाले हस्तकमलवाले, निर्मल, श्रेष्ठ गन्ध पुष्पों द्वारा अर्चित, प्रसन्नमुखवाले, सर्वदेव स्वरूप श्रीगुरुदेव का 'हस' रूप से ध्यान पूर्वक स्मरण करे ॥ ९ ॥ इति ध्यानम ॥

ॐ मानसोपचारैः श्रीगुरुं पूजयित्वा ॥ तद्यथा–
ॐ लं पृथिव्यात्मने गंधतन्मात्राप्रकृत्यानंदा–त्मने श्रीगुरुदेवाय नमः–पृथिव्यात्मकं गंधंसमर्प-

पामि ॥ ॐ हं आकाशात्मने शब्दतन्मात्राप्रकृत्या-नन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः —आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि ॥ ॐ यं वाय्वात्मने स्पर्शतन्मात्रा प्रकृत्यानन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः—वाय्वात्मकं धूपं समर्पयामि ॥ ॐ रं तेज आत्मने रूपतन्मात्रा प्रकृत्या-नन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः—तेज आत्मकं दीप समर्पयामि ॥ ॐ वं अबात्मने रसतन्मात्रा प्रकृत्या-नन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः—अबात्मकं नैवेद्यं समर्पयामि ॥ ॐ सं सर्वात्मने सर्वतन्मात्रा प्रकृत्या-नन्दात्मने श्रीगुरुदेवाय नमः—सर्वात्मकान सर्वोपचारान् समर्पयामि ॥ इति मानस पूजा ॥ अथ श्रीगुरुमालामंत्र । "ॐ नमः श्रीगुरुदेवाय परमपुरुषाय, सर्वदेवतावशीकराय, सर्वारिष्ट विनाशाय, सर्व-मन्त्रच्छेदनाय त्रैलोक्य वशमानय स्वाहा ॥

ॐ अचिन्त्याव्यक्तरूपाय, निर्गुणाय गुणात्मने । समस्तजगदाधारमूर्तये ब्रह्मणे नमः ॥१॥ ॐ

विचार में न आवे ऐसा है अव्यक्त स्वरूप जिनका, ऐसे परमार्थ से निर्गुण, व्यवहार में गुणरूप और समस्त जगत

के आधाररूप स्वरूपवाले श्रीसद्गुरुरूप परब्रह्म को मैं प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

ऋषयऊचुः —

गुह्याद्गुह्यतरं सारं, गुरुगीता विशेषतः ।
त्वत्प्रसादाच्च श्रोतव्या, तत्सर्वं ब्रूहि सूत नः॥२॥

ऋषिगण बोले—

हे सूत ! धर्म्म दुर्ज्ञेय है, विशेषत गुरुगीता–विद्या सब विद्याओं से अति दुर्ज्ञेय है, आपकी कृपा से हम उसको श्रवण करना चाहते हैं, इस कारण उसका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

सूतउवाच—

कैलासशिखरे रम्ये, भक्ति-साधन-हेतवे ।
प्रणम्य पार्वती भक्त्या, शंकरं परिपृच्छति ॥३॥

सूत बोले—

किसी समय–कैलास पर्वत के अति रमणीय -सुन्दर शिखर पर विराजित, श्रीशङ्कर भगवान् से जगन्माता पार्वती जी लोकोपकार के लिये भक्तिपूर्वक प्रणाम कर प्रश्न करती हुईं ॥ ३ ॥

श्रीपार्वत्युवाच—

ॐ नमो देव देवेश, परात्पर जगद्गुरो ।
सदाशिव महादेव, गुरुदीक्षां प्रयच्छमे ॥४॥

श्रीपार्वती जी बोलीं—

हे प्रणवस्वरूप देव देवेश! हे परात्पर! हे जगद्गुरो! हे कल्याणस्वरूप देवाधिदेव महादेवजी! मैं आपको प्रणाम करती हूँ, कृपा करके मुझे गुरु-दीक्षा दीजिये।

भगवन् सर्वधर्मज्ञ व्रतानां व्रतनायकम्।
ब्रूहि मे कृपया शंभो, गुरुमाहात्म्यमुत्तमम् ॥५॥

हे भगवन्! आप सर्व धर्मों के जाननेवाले हैं इसलिये हे शम्भो! व्रतों में मुख्य-व्रत-रूप और उत्तम जो श्रीगुरु माहात्म्य है, वह कृपा करके मुझको कहिये ॥ ४ ॥

केन मार्गेण भो स्वामिन्, देही ब्रह्ममयो भवेत्।
तत्कृपां कुरु मे स्वामिन्नमामि चरणौ तव ॥६॥

हे स्वामिन्! जीव कौन उपाय अवलम्बन करने से ब्रह्मपद को प्राप्त कर सकता है? सो कृपा करके मुझसे कहिये। हे देव! मैं आपके चरण-कमलों को बारम्बार नमस्कार करती हूँ ॥ ६ ॥

श्रीमहादेवउवाच—

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताह्यर्था, प्रकाशन्ते महात्मनः ॥७॥

श्रीमहादेव जी बोले—

हे पार्वती! जिसकी परमेश्वर में उत्तम भक्ति हो और जैसी परमेश्वर में भक्ति हो, वैसी ही अपने गुरु में भक्ति होय, उस

महापुरुष को यह (योगशास्त्र में और वेदान्त में) कहे हुए अर्थ निज हृदय में प्रकाशित होते हैं ।

मम रूपासि देवित्वं, त्वद्भक्त्यर्थं वदाम्यहम् ।
लोकोपकारकः प्रश्नो न केनापि कृतः पुरा ॥८॥

हे देवि ! तू मेरा ही रूप है तेरी भक्ति के लिये मैं कहता हूँ, तेरा यह प्रश्न लोकोपकार—जन—कल्याण के अर्थ है पूर्व में ऐसा प्रश्न मुझसे किसी ने भी नहीं किया ॥ ८ ॥ सुनो—

यो गुरुः स शिवः प्रोक्तो यः शिवः सगुरुः स्मृतः ।
विकल्पं यस्तु कुर्वीत, सनरो गुरुतल्पगः ॥९॥

"जो गुरु हैं—वही शङ्कर हैं और जो शङ्कर हैं—वही गुरु हैं" ऐसा जो कहा गया है सो सत्य है । इसमें जो संशय करता है उस मनुष्य को गुरु—पत्नि—गामी के समान महा पापी जानना ॥ ९ ॥

दुर्लभं त्रिषु लोकेषु, तच्छृणुष्व वदाम्यहम् ।
गुरुं ब्रह्म बिना नान्यत् सत्यंसत्यं वरानने ॥१०॥

त्रैलोक्य के विषे दुर्लभ ऐसा तत्वसार तुझ से कहता हूँ तू सुन— गुरु—ब्रह्म' के सिवा दूसरा कुछ भी नहीं है । हे पार्वती ! यह वार्ता सत्य है । सत्य है ॥ १० ॥

वेदशास्त्रपुराणानि, इतिहासादिकानिच ।
मंत्र यंत्रादि विद्यानां, स्मृतिरुच्चाटनादिकम् ॥११॥

हे देवी! देह में अहंभाव प्रकट होने से महान् अविद्या उत्पन्न होती है। और जिसके कृपा प्रसाद से इसका अनुभवपूर्वक ज्ञान उत्पन्न होता है वह 'गुरु' शब्द से कथित है ॥ १५ ॥

यदंघ्रिकमलद्वंद्वं, द्वंद्वतापनिवारकम् ।
तारकं भवसिंधौ च, श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम् ॥१६॥

जिनके दोनों चरणकमल, दोनो-(मानसिक और दैहिक) तापों को अथवा-शीत उष्णादिक द्वंद तापो को हरण करनेवाले तथा-ससाररूप समुद्र से पार उतारनेवाले हैं, ऐसे श्रीगुरुदेव को मैं प्रणाम करता हू ॥ १६ ॥

देही ब्रह्म भवेद्यस्मात्, त्वत्कृपार्थं वदामि तत् ।
सर्वपापी विशुद्धात्मा, श्रीगुरोः पादसेवनात् ॥१७॥

जिस ज्ञान करके जीव ब्रह्मरूप होजाता है 'वह ज्ञान' मैं तुझे कृपा के अर्थ कहता हू—श्रीगुरु के चरणों की सेवा करने से सर्वपापी पवित्र शुद्धात्मा होजाता है ॥ १७ ॥

सर्वतीर्थाऽवगाहस्य, संप्राप्नोति फलं नरः ।
गुरोः पादोदकं पीत्वा, शेषं शिरसि धारयन् ॥१८॥

सर्व तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह फल-श्रीगुरु के पादोदक को पीने से तथा-शेष रहे को मस्तक पर धारण करने से प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

शोषणं पापपंकस्य, दीपनं ज्ञानतेजसः ।
गुरोः पादोदकं सम्यक्, संसारार्णवतारकम् ॥१९॥

श्रीगुरु का चरणोदक पापरूपी कीचड़ को सुखानेवाला, ज्ञानरूपी तेज को प्रकाश करनेवाला और संसाररूपी समुद्र से भली प्रकार तारनेवाला—पार करनेवाला है ॥ १९ ॥

अज्ञानमूलहरणं, जन्म-कर्म-निवारणम् ।
ज्ञान-विज्ञानसिद्ध्यर्थं, गुरुपादोदकं पिबेत् ॥२०॥

अज्ञान के मूल को हरण करनेवाला, जन्म और कर्म निवारण करनेवाला, तथा ज्ञान-विज्ञान सिद्ध करनेवाला श्रीगुरु का पादोदक-चरणामृत पान करना चाहिये ॥ २० ॥

गुरुपादोदकं पानं, गुरोरुच्छिष्टभोजनम् ।
गुरुमूर्तेः सदा ध्यानं, गुरुस्तोत्रं सदा जपः ॥२१॥

श्रीगुरु के चरणोदक को पीना, श्रीगुरु का उच्छिष्ट भोजन करना और श्रीगुरुमूर्ति का ध्यान करना तथा गुरुस्तोत्र का जाप करना ॥ २१ ॥

स्वदेशिकस्यैव च नामकीर्तनं,
भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्तनम् ॥
स्वदेशिकस्यैव च नामचिन्तनं,
भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनम् ॥ २२ ॥

अपने गुरुदेव का कीर्तन करना ही अनन्त शिव कीर्तन है और अपने गुरुदेव का चिन्तन करना ही अनन्त शिव चिन्तन है ॥ २२ ॥

यत्पादरेणुवै नित्यं, कोपि संसारवारिधौ ।
सेतु-वंधायते नाथ, देशिकं तमुपास्महे ॥२३॥

संसार-समुद्रपार होने के लिये जिन गुरुदेव की चरण-धूलि सेतु-रूप दिखती है-उन श्रीगुरुदेव की मैं उपासना करता हूँ ॥ २३ ॥

यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा, महदज्ञानमुत्सृजेत् ।
तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय, नमश्चाभीष्टसिद्धये ॥२४॥

जिनके अनुग्रह से ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होता है, उन गुरुदेव को अभीष्ट सिद्ध के लिये नमस्कार करता हूँ ॥२४॥

काशी-क्षेत्रं निवासश्च, जान्हवी चरणोदकम् ।
गुरुर्विश्वेश्वरः साक्षात्, तारकं ब्रह्म निश्चितम् ॥२५

जहाँ श्रीगुरु निवास करते हैं, वहीं श्रीकाशी क्षेत्र जानना, श्रीगुरु-चरणोदक को गगा जानना और श्रीगुरु को साक्षात् श्री विश्वनाथ जान, वे श्रीगुरु साक्षात् तारक ब्रह्म हैं ऐसा निश्चय जानना ॥२५॥

शिरः पादांकितं कृत्वा, गयास्ते चाक्षयो वटः ।
तीर्थराजप्रयागोऽसौ, गुरु--मूर्त्यै नमोनमः ॥२६॥

गुरु चरण मस्तक ऊपर धारण करना, यही गया, यही अक्षय वट और इसे ही तीर्थराज प्रयाग जानना । इस श्रीगुरु-मूर्ति को ब्रारम्बार नमस्कार हो ॥ २६

गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं, गुरोर्नाम सदा जपेत् ।
गुरोराज्ञां प्रकुर्यात, गुरोरन्यन्न भावयेत् ॥२७॥

गुरुमूर्ति का सदा स्मरण करना (ध्यान करना), गुरु नाम का सदा जाप करना, गुरु की आज्ञा पालन करना और गुरु के सिवाय अन्य की भावना नहीं करना ॥२७॥

गुरु—वक्त्रस्थितं ब्रह्म, प्राप्यते तत्प्रसादतः ।
गुरोर्ध्यानं तथा कुर्यान्नारीव स्वैरिणी यथा ॥२८॥

श्रीगुरु के मुखारविन्द विषे ब्रह्म स्थित है, गुरु के प्रसाद से ब्रह्म की प्राप्ति होती है, इसलिये गुरुमूर्ति का ध्यान सदा इस प्रकार करना, जैसे कि—जार स्त्री अपने प्रिय का चिन्तन करती है ॥२८॥

स्वाश्रमञ्च स्वजातिञ्च, स्वकीर्ति पुष्टिवर्धनम् ।
एतत्सर्वं परित्यज्य, गुरोरन्यन्न भावयेत् ॥२९॥

अपने आश्रम को वा अपनी जाति को वा कीर्ति को पुष्टवर्धन वाला सिवा गुरु के दूसरा कोई नहीं है, इसलिये दूसरे दूसरे सर्व पदार्थों का त्याग कर भी गुरु के सिवा कोई भी भावना करना नहीं ॥२९॥

अनन्याश्चिन्तयन्तो ये, सुलभं परमं सुखम् ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन, गुरोराराधनं कुरु ॥३०॥

श्री गुरु के अनन्य चिन्तन करने से परमसुख की प्राप्ति सुलभ होजाती है, इसलिए सर्व प्रयत्न करके श्रीगुरु की आराधना करो ॥३०॥

गुरुवक्त्रे स्थिता विद्या गुरुभक्त्या च लभ्यते।
त्रैलोक्येऽस्फुटवक्तारो-देवाद्यसुरपन्नगाः ॥३१॥

श्री गुरु के मुख मे जो ब्रह्म–विद्या रहती है वह गुरु–भक्ति द्वारा ही प्राप्त होती है, दूसरे (इन्द्रादिक) जितने त्रैलोक्य में उपदेश देने वाले हैं वे गुरु समान नहीं हैं ॥३१॥

'गु' कारश्चांधकारोहि, 'रु' कारस्तेज उच्यते ।
अज्ञान–ग्रासकं ब्रह्म, गुरुरेव न संशयः ॥३२॥

'गु' शव्द का अथ अधकार है 'रु' शव्द का अर्थ तेज,प्रकाश है। अज्ञान का नाश करने वाला जो 'ब्रह्म' वह गुरु ही है, इसमें संशय नहीं ॥६२॥

'गु'कारश्चांध कारस्तु, 'रु'कारस्तन्निरोधकृत् ।
अंधकार–विनाशित्वात्, गुरुरित्यभिधीयते ॥३३॥

गुकार अन्धकार का वाचक तथा-रुकार उसके निरोध का वाचक है, इस कारण जो अज्ञान रूप अन्धकार को नाश करते हैं वे ही गुरु शव्द वाच्य हैं ॥३३॥

'गु'कारश्च गुणातीतोरूपातीतो 'रु' कारकः ।
गुण-रूप-विहीनत्वात्, गुरुरित्यभिधीयते ॥३४॥

'गु' वर्ण गुणातीत तथा 'रु' कार वर्ण रूपातीत का वाचक है, गुण और रूपसे परे जो परमतत्व है वह 'गुरु' शव्द से वर्णन किया गया है ॥३४॥

'गु' कारः प्रथमो वर्णो मायादि गुणभासकः ।
'रु' कारोऽस्ति परं ब्रह्म, मायाभ्रान्तिविमोचकम् ॥२५॥

गुरु इस शब्द के प्रथम वर्ण 'गु' से माया आदि गुण प्रकाशित होता है, और द्वितीय वर्ण 'रु' से ब्रह्म में जो माया का भ्रम है, उसका नाश होता है, इस कारण 'गु' शब्द सगुण को और 'रु' शब्द निर्गुण अवस्था को प्रतिपन्न करके 'गुरु' शब्द बना है॥२५॥

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं, देवानामपि दुर्लभम् ।
हाहाहूहूगणैश्चैव, गन्धर्वाद्यैश्च पूजितम् ॥२६॥

इस प्रकार से गुरु के चरणारविन्द सर्व श्रेष्ठ हैं जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं, हाहा हूहू नामक गंधर्वादिकों ने भी इन्हीं चरणों को पूजा है ॥२६॥

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां, नास्ति तत्त्वं गुरो परम् ।
गुरोराराधनं कार्यं, स्वजीवित्वं निवेदयेत् ॥२७॥

सर्व श्रुतियों का यह ध्रुव निश्चय है कि-गुरु से पर कोई दूसरा तत्त्व नहीं है इसलिए गुरु-सेवा कार्य में अपने जीवन को अर्पण कर देना ॥२७॥

आसनं शयनं वस्त्रं, वाहनं भूषणादिकम् ।
साधकेन प्रदातव्यं, गुरु-सन्तोष-कारणम् ॥२८॥

साधक को चाहिये कि वह गुरु को सन्तुष्ट करने के लिये आसन, शय्या वस्त्र, वाहन भूषणादि उनको अर्पण करे ॥२८॥

कर्मणा मनसा वाचा, सर्वदाऽऽराधयेद्गुरुम् ।
दीर्घदण्डं नमस्कृत्य, निर्लज्जो गुरुसन्निधा ॥३९॥

मन से वाचा से, और कर्म से सदा सर्वदा श्रीगुरु को अराधना करे, और गुरु के सन्मुख निर्ल्लज होकर दीर्घ दण्डाकार साष्टाङ्ग प्रणाम करे ॥३९॥

शरीरमिंद्रियं प्राणमर्थं, स्वजनबांधवान् ।
आत्मदारादिकं सर्वं, सद्गुरुभ्यो निवेदयेत् ॥४०॥

शरीर, इन्द्रिय, प्राण द्रव्य, स्वजन, बन्धु, आत्मा, स्त्री, पुत्र कन्या आदि सर्व श्री सद्गुरु के अर्पण असकुचित चित्त से करे ॥४०॥

गुरुरेको जगत्सर्वं, ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
गुरोः परतरं नास्ति, तस्मात्सपूजयेद्गुरुम् ॥४१॥

श्री गुरु ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिदेव रूपों से समस्त विश्व में व्याप्त हैं, गुरु की अपेक्षा और कोई श्रेष्ट नहीं है, इस कारण गुरु की पूजा करना सदा उचित है ॥४१॥

सर्वश्रुतिशिरोरत्न,-नीराजितपदाम्बुजम् ।
वेदान्तार्थ-प्रवक्तारं, तस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम् ॥४२॥

सर्व श्रुतियों के शिरोरत्न—महावात्क्य- श्री गुरु के चरण कमलों की आरति करते हैं—अर्थात् उनके स्वरूप को स्पष्ट रीति से प्रकाशित करते हैं, इसलिए वेदान्त के अर्थ का भली प्रकार प्रबोध कराने वाले श्रीगुरु की सम्यक् प्रकार से पूजा करे ॥४२॥

'गु'कारः प्रथमो वर्णो मायादि गुणभासकः ।
'रु'कारोऽस्ति परब्रह्म, मायाभ्रान्तिविमोचकम् ॥१५॥

गुरु इस शब्द के प्रथम वर्ण 'गु' से माया आदि गुण प्रकाशित होता है, और द्वितीय वर्ण 'रु' से ब्रह्म में जो माया का भ्रम है, उसका नाश होता है। इस कारण 'गु' शब्द सगुण को और 'रु' शब्द निर्गुण अवस्था को प्रतिपन्न करके 'गुरु' शब्द बना है॥१५॥

एवं गुरुपदं श्रेष्ठं, देवानामपि दुर्लभम् ।
हाहाहूहूगणैश्चैव, गन्धर्वाद्यैश्च पूजितम् ॥१६॥

इस प्रकार से गुरु के चरणारविन्द सर्व श्रेष्ठ हैं जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। हाहा हूहू नामक गंधर्वादिकों ने भी इन्हीं चरणों को पूजा है ॥१६॥

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां, नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् ।
गुरोराराधनं कार्यं, स्वजीवित्वं निवेदयेत् ॥१७॥

सर्व पूजितों का यह ध्रुव निश्चय है कि—गुरु से परे कोई दूसरा तत्त्व नहीं है। इसलिए गुरु-सेवा कार्य में अपने जीवन को अर्पण कर देना ॥१७॥

आसनं शयनं वस्त्रं, वाहनं भूषणादिकम् ।
साधकेन प्रदातव्यं, गुरु-संतोष-कारणम् ॥१८॥

साधक को चाहिए कि वह गुरु को सन्तुष्ट करने के लिए आसन, शय्या वस्त्र वाहन, भूषणादि उनको अर्पण करे ॥१८॥

अज्ञानतिमिरांधस्य, ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४७॥

जिन्होने ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका द्वारा अज्ञान रूप-अन्धकार से अन्धे जीव के नेत्रो को खोल दिया है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥४७॥

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४८॥

जो अखण्डमण्डलरूप इस स्थावर-जङ्गमात्मक संसार मे व्याप्त हो रहे है, उन परमात्मा के परमपद का जो दर्शन कराते हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥४८॥

स्थावरं जङ्गमं व्याप्तं, यत्किञ्चित्सचराचरम् ।
त्वंपदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४९॥

आकाश के सहित जड और चेतन जो कुछ पदार्थ हैं उनमे जो परमात्मा व्याप्त हो रहे हैं-उनके चरण कमलों का दर्शन जिनके द्वारा मिला है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥४९॥

चिन्मयं व्यापितं सर्वं, त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
असित्वं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५०॥

जो स्थावर-जङ्गमात्मक त्रिलोक में व्याप्त हो रहे हैं और जो शुद्ध ज्ञान मय हैं, ऐसे परमात्मा के चरण कमलों का दर्शन जिनके द्वारा हुआ है-होता है, उन गुरुदेव को नमस्कार है ॥५०॥

यस्य स्मरणमात्रेण, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
स एव सर्वसम्पत्ति, तस्मात्सम्पूजयेद्गुरुम् ॥४३॥

जिनके स्मरणमात्र से ज्ञान स्वयं-आपोआप उत्पन्न होता है वे सद्गुरु ही सर्व सम्पत्तिरूप—सर्वस्वरूप हैं, इसलिये श्रीगुरु का सम्यक् प्रकार से पूजन करे ॥४२॥

कृमिकीटभस्मविष्ठा,—दुर्गन्धिमलमूत्रकम् ।
श्लेष्मरक्त त्वचामांसैर्नद्ध चैतद्वरानने ॥४४॥

हे वरानने ! यह शरीर तो कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, दुर्गन्धि मल मूत्र, श्लेष्म, रक्त, त्वचा, मांस आदि से भरा पड़ा है, इस लिये यदि इसका सदुपयोग करना है तो गुरु सेवा करो ॥४४॥

संसार—वृक्षमारूढा, पतन्ति नरकार्णवे ।
तस्मादुद्धरते सर्वान्, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४५॥

संसार रूप वृक्ष पर आरूढ़ हुए जीव नर्करूपी समुद्र में पड़ते हैं उस नर्क से सबों का जो उद्धार करने वाले हैं, उस श्री गुरु देव को मेरा नमस्कार है ॥४६॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४६॥

गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही शिव और गुरु ही परब्रह्म हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥४६॥

अज्ञानतिमिरांधस्य, ज्ञानाञ्जन-शलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४७॥

जिन्होंने ज्ञान रूपी अञ्जन की शलाका द्वारा अज्ञान रूप-अन्धकार से अन्धे जीव के नेत्रों को खोल दिया है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥४७॥

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४८॥

जो अखण्डमण्डलरूप इस स्थावर-जङ्गमात्मक संसार में व्याप्त हो रहे हैं, उन परमात्मा के परमपद का जो दर्शन कराते हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥४८॥

स्थावरं जंगमं व्याप्तं, यत्किञ्चित्सचराचरम् ।
त्वंपदं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥४९॥

आकाश के सहित जड़ और चेतन जो कुछ पदार्थ हैं उनमें जो परमात्मा व्याप्त हो रहे हैं-उनके चरण कमलों का दर्शन जिनके द्वारा मिला है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥४९॥

चिन्मयं व्यापितं सर्वं, त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
असित्वं दर्शितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५०॥

जो स्थावर-जङ्गमात्मक त्रिलोक में व्याप्त हो रहे हैं और जो शुद्ध ज्ञान मय हैं, ऐसे परमात्मा के चरण कमलों का दर्शन जिनके द्वारा हुआ है-होता है, उन गुरुदेव को नमस्कार है ॥५०॥

निमिषार्द्धार्द्धपाताद्वा, यद्वाक्याद्वै विमोक्षयते ।
स्वात्मानं स्थिरमादत्ते, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५१॥

जिनके वचन मात्र, अथवा—कृपावलोकन मात्र से निमिष मात्र में आत्मस्थिर हो जाता है, उस श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥५१॥

चैतन्यं शाश्वतं शांतं, व्योमातीतं निरंजनम् ।
नादबिन्दुकलातीतं, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५२॥

जो पुरुष चैतन्यरूप, नित्य, शान्त, आकाश से भी परे और निरंजन हैं, जो प्रणव, नाद, ज्योति और कला से अतीत हैं, ऐसे गुरुदेव को नमस्कार है ॥५२॥

निर्गुणं निर्मलं शान्तं, जंगमं स्थिरमेव च ।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५३॥

जो त्रिगुण रहित, निर्मल, शान्त, चराचर रूप हैं और जगत् मात्र में व्यापक हैं ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥५३॥

त्वं पिता त्वं च मे माता, त्वं बंधुस्त्वं च देवता ।
संसार-प्रीति-भंगाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५४॥

हे श्री गुरुदेव ! आप मेरे पिता हो, आप मेरी माता हो बन्धु हो और मेरे देव भी आप ही हो संसार में से प्रीति—आसक्ति छुड़ाने वाले हे गुरुदेव ! आपको मेरा नमस्कार है ॥५४॥

यत्सत्येन जगत्सत्यं, यत्प्रकाशेन भाति यत् ।
यदानन्देन नन्दन्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५५॥

जिसकी सत्यता से जगत् सत्य दिखता है, जिसके प्रकाश से सब प्रकाश होता है, जिस आनन्द से ही सब आनन्द है, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥५५॥

यस्मिन् स्थितमिदं सर्वं, भाति यद्भानुरूपतः ।
यत्प्रीत्या प्रियपुत्रादि, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५६॥

जिसमें यह सब जगत् स्थिर है, और सूर्य रूप से जो प्रकाशित है, जिसकी प्रीति के हेतु पुत्रादि प्रिय हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥५६॥

येन चेतयता हीदं, चित्तं चेतयते नरः ।
जाग्रत्स्वप्न-सुषुप्त्यादौ, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५७॥

जिसकी चैतन्यता से ही यह सब चैतन्य है, जिसकी चैतन्यता से ही मनुष्य का चित्तचेतन होता है, और जो जाग्रत्स्वप्न–सुषुप्त्यादि में एक रस हैं, ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥५७॥

यस्य ज्ञानमिदं विश्वं, न दृश्यं भिन्नभेदतः ।
सदैकरूपरूपाय, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५८॥

जिस ज्ञान से यह ससार भेद–भाव–रहित, एक, अखंड–रूप जानने में आता है, उस ज्ञान के प्रदाता श्री गुरुदेव को नमस्कार है ॥५८॥

यस्य ज्ञानं मत यस्य, मत यस्य न वेद मः ।
अनन्यभावभावाय, तस्मै श्रीगुरवे नम ॥५६॥

जिनका ज्ञान 'वेदसम्मत' है, और 'वेद का ज्ञान' ही जिनका ज्ञान है—ऐसे अनन्य भाव वाले श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥५९॥

यस्मै कारणरूपाय, कार्यरूपेण भाति यत् ।
कार्यकारणरूपाय, तस्मै श्रीगुरवे नम ॥६०॥

कार्य—रूप से भासित होनेवाले में जो कारण-रूप स स्थित हैं, उन "कार्य—कारण—रूप" श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६०॥

नानारूपमिदं विश्वं, न केनाप्यस्ति भिन्नता ।
कार्य-कारण-रूपाय, तस्मै श्रीगुरवे नम ॥ ६१ ॥

नाना प्रकार के विश्व में जो अनेक प्रकार की भिन्नता दीखती है, उसमें जो कार्य-कारण-रूप' से स्थित हैं उन श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६१॥

ज्ञानशक्तिसमारूढ—तत्त्वमालाविभूषिण ।
भुक्तिमुक्तिप्रदायाय, तस्मै श्रीगुरवे नम ॥६२॥

जो ज्ञान शक्ति की पूर्णता को पहुँचे हुए हैं और तत्त्वरूप माला से विभूषित हैं, और भोग तथा—मोक्ष प्रदान करने में समर्थ हैं—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६२॥

अनेकजन्मसम्प्राप्त,—कर्मधर्मविदाहिने ।
ज्ञानानलप्रभावेण, तस्मै श्रीगुरवे नम ॥ ६३ ॥

जो आत्मज्ञान के प्रभाव—दान से अनुजन्मजन्मान्तरों के

'कर्म-रूप बन्धनों' को दग्ध किया करते हैं—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६३॥

शोषणं भवसिन्धोश्च, दापनं सारसम्पदाम्।
गुरोः पादोदकं यस्य, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६४॥

जिनके पादोदक पान, करने से संसार-रूपी समुद्र सूख जाता है, और तत्त्वज्ञान-रूप 'सारवान् सम्पत्ति' को प्राप्ति हो जाती है, ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥८४॥

न गुरोरधिकं तत्त्वं, न गुरोरधिकं तपः।
तत्त्वज्ञानात्परं नास्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६५॥

'तत्त्व' अर्थात्—"ब्रह्म-ज्ञान" गुरु से अधिक नहीं है, तपस्या भी श्रीगुरुदेव से अधिक नहीं है, और जिस 'गुरु-तत्त्व-ज्ञान' से अधिक इस संसार मे और कुछ भी नहीं है—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६५॥

मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुः श्रीजगद्गुरुः।
स्वात्मैव सर्वभूतात्मा, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६६॥

मेरे नाथ श्रीगुरु' ही जगत् के श्रीनाथ'-ईश्वर हैं, मेरे श्रीगुरु ही "जगद्गुरु" हैं, मेरा आत्मा ही 'जगत् के सब प्राणियों का आत्मा है'-सो ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६६॥

गुरुरादिरनादिश्च, गुरुः परमदैवतम्।
गुरुमन्त्रसमो नास्ति, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६७॥

गुरु ही सबके आदि हैं—उनसे आदि कोई भी नहीं है।

गुरु ही देवताओं के देवता हैं, और गुरु-मन्त्र से श्रेष्ठ कोई मन्त्र नहीं है—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६७॥

एक एव परोबन्धुर्विषमे समुपस्थिते ।
गुरुः सकलधर्मात्मा, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६८॥

विषम समय के उपस्थित होने पर जो 'एक मात्र-बन्धु"—रक्षक हैं जो सकल धर्मों की आत्मा हैं—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६८॥

गुरुमध्ये स्थितं विश्वं, विश्वमध्ये स्थितं गुरुम् ।
गुरुर्विश्वं नमस्तेऽस्तु, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥६९॥

गुरु के मध्य में विश्व स्थित है, और विश्व में श्रीगुरुस्थित—हैं, ऐसे 'विराट्—रूप" प्रणम्य श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥६९॥

भवारण्यप्रविष्टस्य, दिङ्मोहभ्रान्तचेतसः ।
येन सन्दर्शितः पन्था, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥७०॥

संसार रूपी महावन में प्रविष्ट हुए दिङ्मूढ भ्रमित—जीव को मार्ग बतानेवाले श्रीगुरुदेव हैं—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥७०॥

तापत्रयाग्नितप्तानाम्–अशान्तप्राणिनां मुने ।
गुरुरेव परागङ्गा, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥७१॥

हे मुनि ! तीनों तापों की अग्नि से तप्त-अशान्त प्राणियों के लिए एक गुरु ही "परा—गङ्गा" हैं—ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥७१॥

अज्ञानेनाऽहिना ग्रस्ताः, प्राणिनस्तान् चिकित्सकः ।
विद्यास्वरूपो भगवान्, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥७२॥

अज्ञान-रूपी रोग से ग्रस्त प्राणियों के "वैद्य-विद्या-ज्ञान स्वरूप" भगवान् गुरु हैं-ऐसे श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥७२॥

हेतवे जगतामेव, संसारार्णवसेतवे ।
प्रभवे सर्वविद्यानां, शंभवे गुरवे नमः ॥७३॥

जगत् के 'हेतु-रूप', संसाररूपी समुद्र से तिरने में सेतु-रूप' तथा-ज्ञान मात्र के उत्पादक 'कल्याण-स्वरूप" श्रीगुरुदेव को नमस्कार है ॥७३॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः, पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं, मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥७४॥

गुरु-मूर्तिध्यान ही 'सब ध्यानों का मूल' है, गुरु के श्रीचरण-कमल की पूजा ही सब 'पूजाओं का मूल' है, गुरु वाक्य ही सब 'मन्त्रो का मूल' है और गुरु की कृपा ही 'मुक्ति' प्राप्त करने का प्रधान कारण है ॥७४॥

सप्तसागरपर्यन्तं, तीर्थस्नानफलं यथा ।
गुरोः पादोदविन्दोश्च, सहस्रांशेन तत्फलम् ॥८५॥

सप्त समुद्र पर्य्यन्त तीर्थों में स्नान करने से जो फल लाभ होता है-गुरु के चरणकमलों के एक विन्दु चरणामृत पान करने से

उससे अधिक फल होता है, इस कारण "गुरु-पाद-पद्म-जल" सहस्र अंशेन "पवित्र और दुर्लभ" है ॥७५॥

शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन ।
लब्ध्वा कुलगुरुं सम्यक्, गुरुमेव समाश्रयेत् ॥७६॥

शिव के रुष्ट होजाने पर गुरु बचा सकते हैं परन्तु गुरु के रुष्ट होजाने पर कोई बचा नहीं सकता । इसलिये 'सद्गुरु की प्राप्ति' होजाने पर उसकी सम्यक् प्रकार से सेवा कर 'आश्रय' लेना चाहिये ॥७६॥

मधुलुब्धो यथा भृङ्गः, पुष्पात्पुष्पान्तरं व्रजेत् ।
ज्ञानलुब्धस्तथा शिष्यो, गुरोर्गुर्वन्तरं व्रजेत् ॥७७॥

जिस प्रकार भ्रमर मधु के लोभ में पुष्प से पुष्प पर घूमता फिरता है इसी प्रकार शिष्य ज्ञान प्राप्ति के लिये 'गुरु के पीछे पीछे' फिरता रहता है ॥७७॥

वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं, वाङ्मनोऽतीतगोचरम् ।
श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं, शिवशक्त्यात्मकं परम् ॥७८॥

शिवशक्त्यात्मक श्वेत-रक्त-प्रभा से भिन्न, मनवाणी से अगोचर, श्रीगुरुदेव के श्रेष्ठ-चरणकमलों की मैं वन्दना करता हूं ॥७८॥

गुकारञ्च गुणातीतं, रुकारंरूपवर्जितम् ।
गुणातीतमरूपञ्च, योदद्यात्स गुरुः स्मृतः ॥७९॥

'गु' कार अर्थात्—गुणातीत, और 'रु' कार अर्थात्—रूप वर्जित, ऐसे "त्रिगुणातीत" को और 'अरूप' अर्थात्—'निर्गुण-निराकार'—ऐसे 'ब्रह्मतत्त्व" को जो 'स्वरूपज्ञान' द्वारा भान कराते हैं—वह गुरु कहलाते है ॥७९॥

अत्रिनेत्रः शिवः साक्षाद्द्विबाहुश्च हरिः स्मृतः ।
योऽचतुर्वदनोब्रह्मा, श्रीगुरुः कथितः प्रिये ॥८०॥

हे प्रिये ! जो गुरुदेव है वे तीन नेत्र न होते हुए भी 'शिव' हैं दो हाथवाले 'हरि' हैं और चार मुख के बिना 'ब्रह्मा' हैं—ऐसा शास्त्रों में कहा है ॥८०॥

अयं मयाञ्जलिर्बद्धो, दयासागरसिद्धये ॥
यदनुग्रहतो जन्तुः, चित्रसंसारमुक्तिभाक् ॥८१॥

ऐसे दया के सागर श्रीगुरुदेव को मैं सिद्धि—कृपा के अर्थ हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ, जिसकी कृपा से जीव संसार को 'चित्रवत्' देखता है और 'मुक्ति का भागी' वनता है ॥८१॥

श्रीगुरोः परमं रूपं, विवेकं चक्षुरग्रतः ।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति, अन्धाः सूर्योदयं यथा ॥८२॥

विवेकी चक्षु से श्रीगरुदेव का 'परमस्वरूप' दीखता है, मन्द

भागी—अभागों—को नहीं। जैसे कि—अन्धा सूर्योदय को नहीं देख सकता ॥८२॥

कुलानां कुलकोटीनां, तारकस्तत्र तत्क्षणात्।
अतस्तं सद्गुरुं ज्ञात्वा, त्रिकालमभिवन्दयेत् ॥८३॥

जो वंश और वंश-परम्परा को तत्क्षण उद्धार करनेवाले हैं—ऐसे सद्गुरु को जानकर—मानकर—तीनों काल उनकी 'वन्दना' करते रहना ॥८३॥

श्रीनाथचरणद्वन्द्वं, यस्यां दिशि विराजते।
तस्यां दिशि नमस्कुर्याद्भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये ॥८४॥

हे प्रिये ! जिस दिशा में श्रीगुरुदेव के चरणकमल विराजते हैं उस दिशा को प्रतिदिन भक्ति पूर्वक नमस्कार करना चाहिए ॥८४।

साष्टाङ्गप्रणिपातेन, स्तुवन्नित्यं गुरुं भजेत्।
भजनात्स्थैर्यमाप्नोति, स्वस्वरूपमयो भवेत् ॥८५॥

श्रीगुरुदेव को साष्टांग प्रणाम तथा स्तुति से भजना चाहिए। भजन से चित्त स्थिर रहता है, और फिर 'स्व-स्वरूप' का ज्ञान प्राप्त होता है ॥८५॥

दोर्भ्यां पद्भ्यां च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
मनसा वचसा चेति, प्रणामोऽष्टाङ्ग उच्यते ॥८६।

दोनों हाथों से, दोनों पाँव मे, दोनों घुटनों से, छाती से, मस्तक से, दृष्टि से, मनसे और वाणी से—इस प्रकार (सयुक्तरूप) से कीगयीप्रणाम को ' अष्टाङ्ग प्रणाम'' कहते हैं ॥८६॥

तस्यैदिशे सततमञ्जलिरेप नित्यं ।
प्रक्षिप्यते मुखरितैर्मधुरैः प्रसूनैः ॥
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती,
विश्वस्थिति-प्रलय-नाटक-नित्य-साक्षी ८७॥

जहाँ—चक्रवर्ती भगवान्—गुरुदेव सदा जाग्रत रहकर इस विश्वनाटक की 'स्थिति' और 'प्रलय' के साक्षी रूप से विराजित, 'मधुर' 'वाक्य—पुष्प' खिलाते रहते है, उस दिशा को मेरी सदा—सर्वदा प्रणामाञ्जलि है ॥८७॥

अभ्यस्तैः किमु दीर्घकालविमलैर्व्याधिप्रदैर्दुष्करैः ।
प्राणायामशतैरनेककरणैर्दुःखात्मकैर्दुर्जयैः ॥
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुःस्वयं तत्क्षणात् ।
प्राप्यस्तत्सहजस्वभावमनिशं सेवे तमेकंगुरुम् ॥८८॥

बहुत काल में निर्मल बनानेवाले, व्याधि—प्रद दुष्कर, अनेक साधनों की अपेक्षा रखनेवाले, दु ख—रूप, और दुर्जय—ऐसे सैकड़ों प्राणायामों के अभ्यास से क्या प्रयोजन ? जिसके (हृदय मे) प्रकट होते ही बलवान् वायु स्वयं तत्काल विनाश को प्राप्त हो

जाता है, उस 'सहजावस्था' को प्राप्त हो—मैं एकमात्र उन गुरुदेव का ही निरन्तर सेवन करता हूँ ॥८८॥

ज्ञानं विना मुक्तिपदं, लभ्यते गुरुभक्तितः ।
गुरोःसमानतो नान्यत्,साधनं गुरुमार्गिणाम् ॥८९॥

श्रीगुरु के प्रति भक्ति करने से ज्ञान के बिना भी मुक्तिपद—प्राप्त हो सकता है । श्रीगुरुदेव से परे और कुछ भी नहीं है, इस कारण गुरु—पन्थावलम्बी—साधकगण को ऐसे गुरुदेव का ध्यान करना उचित है ॥८९॥

यस्मात्परतरं नास्ति, नेति नेतीति वै श्रुतिः ।
मनसा वचसा चैव, सत्यमाराधयेद्गुरुम् ॥९०॥

वेद कहते हैं कि—गुरु से परे दूसरी कोई भी वस्तु नहीं है; इसलिये मन, वचन, कर्म से सदा—सर्वदा श्रीगुरुदेव की 'पूजा—आराधना' करना उचित है ॥९०॥

गुरोः कृपाप्रसादेन, ब्रह्माविष्णुमहेश्वराः ।
सामर्थ्यं तत्प्रसादेन, केवलं गुरुसेवया ॥९१॥

ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीनों देवता केवल एकमात्र श्रीगुरुदेव की कृपा से ही और गुरु—सेवा के फल से ही 'सृष्टि—पालन और प्रलय—क्रिया' करने में समर्थ हुए हैं ॥९१॥

देव-किन्नर-गन्धर्वाः, पितृ-यक्षाश्च तुम्बुरुः ।
मुनयोऽपि न जानन्ति, गुरुशुश्रूषणे विधिम् ॥९२॥

देवतागण, किन्नरगण, गन्धर्वगण, यक्षगण, चारणगण और मुनिगण कोई भी गुरु-सेवा की विधि नहीं जानते ॥९२॥

महाऽहंकारगर्वेण, तपोविद्याबलेनच ।
भ्रमन्त्येतस्मिन्संसारे, घटियन्त्रं तथा पुनः ॥९३॥

वे-तप, विद्या, और शरीरबल के गर्व से गर्वित हो अहङ्कारी होगये हैं, इससे घटियन्त्र की भाति ससार के आवागमन के चक्कर में घूमते रहते हैं ॥९३॥

न मुक्ता देवगन्धर्वाः, पितृयक्षास्तु चारणाः ।
ऋषयः सिद्धदेवाद्या, गुरुसेवापराङ्मुखाः ॥९४॥

देवगण, गन्धर्वगण, पितृगण, यक्षगण, किन्नरगण, ऋषिगण और सब सिद्धगण के बीच में जो कोई गुरु सेवा-पराङ् मुख हो-सो कदापि "मुक्ति-लाभ" करने में समर्थ न होगा ॥९४॥

ध्यानं शृणु महादेवि, सर्वानन्दप्रदायकम् ।
सर्वसौख्यकरं चैव, भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥९५॥

हे महादेवि पार्वती ! मैं तुम्हारे निकट "गुरु-ध्यान" कहता हूँ-श्रवण करो, इस गुरु-ध्यान से सर्व प्रकार का आनन्द, सर्व

सौख्य-लाभ होता है और एकाकार में यह भोग और मुक्ति-प्रदान किया करता है ॥९४॥

श्रीमत्परब्रह्म गुरुं स्मरामि,
श्रीमत्पर ब्रह्म गुरुं भजामि ।
श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं वदामि,
श्रीमत्परं ब्रह्म गुरुं नमामि ॥९६॥

श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु का 'स्मरण' करता हूँ श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु का 'भजन' करता हूँ, श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु की 'प्रार्थना' करता हूँ तथा-श्रीमान् पर-ब्रह्मरूप गुरु को 'नमस्कार' करता हूँ ॥९६॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं,
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादिलक्ष्यम् ।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं,
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि ॥९७॥

ब्रह्म के स्वरूप भूत, आनन्दरूप परमसुख के दाता, केवल ज्ञान की मूर्तिमय सुखदुःख आदि द्वन्द से रहित, आकाशतुल्य, वेद के 'तत्त्वमसि' इत्यादि-महावाक्य के लक्ष्य' रूप एक नित्य, निर्मल, स्थिर, सर्व प्राणियों की बुद्धि के साक्षीरूप सब भाव विकारों से पर, तीनों गुणों से रहित-ऐसे श्री सद्गुरु देव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥९७॥

हृदम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थं ,
सिंहासने संस्थितदिव्यमूर्तिम् ॥
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकला-प्रकाशं ,
सच्चित्सुखाभीष्टवरं दधानम् ॥६८॥

हृदयरूपी कमल के मध्य भाग में स्थित–सिंहासन पर विराजित, दिव्यमूर्तिरूप, चन्द्रकला के समान प्रकाशवाले, सत्, चित् और आनन्द–सुख–रूप, और इच्छित–वरदान के देनेवाले-श्रीसद्गुरु का ध्यान शिष्य को करना चाहिये ।।९८।।

श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं ,
मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम् ॥
वामाङ्क–पीठस्थितदिव्य–शक्तिं ,
मन्दस्मितं पूर्ण–कृपा–निधानम् ॥६६॥

श्वेतवस्त्र धारण किये हुए, सफ़ेद गन्ध–पुष्प–मोतियों से विभूषित, हँसते दो नेत्रवाले, वामाङ्क में दिव्यशक्ति धारण किये, कृपा के सागर, धीमे धीमे (मन्द मुसक्यान से) हँस रहे हैं–ऐसा गुरु का ध्यान करे ।।९९।।

आनन्दमानन्द–करं प्रसन्नं ,
ज्ञान–स्वरूपं निज-भाव-युक्तम् ॥

योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं ।

श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥१००॥

आनन्दरूप, आनन्द-दाता, प्रसन्नमुखवाले, ज्ञान-स्वरूप, अपने सत्-स्वभाव से युक्त, योगीश्वर स्तुति करने योग्य, और संसार रूपी रोग के वैद्य, श्रीमान् गुरु को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ ॥१००॥

वन्दे गुरूणां चरणारविन्दं,

संदर्शितस्वात्मसुखाम्बुधीनाम् ॥

जनस्य येषां गुलिकायमानं,

संसार-हालाहल-मोहशान्त्यै ॥१०१॥

स्वस्वरूप-सुखरूप-समुद्र को बतानेवाले जो श्रीगुरुदेव के चरणकमल हैं, वे शिष्य के संसाररूप हालाहल-विष-से मोहित-मूर्छा-के लिये गुलिका-औषध-रूप हैं-इन चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ॥१०१॥

यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंस-निग्रहानुग्रहात्मकम् ।

कृत्यं पञ्चविधं शश्वद्, भासते तं गुरुं भजे ॥१०२॥

जिसमें उत्पत्ति स्थिति, लय, निग्रह, अनुग्रह रूप पांच कृत्य 'शाश्वत्' (निरन्तर) भासते रहते हैं-उस गुरु का भजन करता हूँ ॥ १०२ ॥

पादाब्जे सर्वसंसार-दावकालानलं स्वके ।

ब्रह्मरंध्रेस्थिताम्भोज-मध्यस्थं चन्द्रमण्डलम् ॥१०३॥

जिन चरणकमलो का ध्यान करने से संसार की सर्वदावानल-अग्नि शान्त होजाती है, वे चरणकमल ब्रह्मरध्र में स्थित चन्द्र-मंडल में विराजमान हैं ।।१०३।।

अकथादित्रिरेखाब्जे, सहस्रदल-मण्डले ।
हंसपार्श्वत्रिकोणे च, स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम् ॥१०४॥

'आज्ञाचक्र' के ऊपर मस्तक मे 'सहस्र पत्र कमल' है । इस रविसदृश कमल के पञ्चाशत् दलों पर अकारादि क्षकार पर्यन्त पञ्चाशद्वर्ण हैं, उस अक्षर-कर्णिका मे 'गोलाकार चन्द्र-मण्डल' है, उस चन्द्रमण्डल के छत्राकार से ऊपर एक 'ऊर्ध्व-मुखी द्वादश कमल' की कर्णिका में अकथादि 'त्रिकोण यन्त्र' विद्यमान है, इस यंत्र के चारो और 'सुधासागर' रहने से यन्त्र 'मणि-द्वीप' सदृश होगया है । इस द्वीप के मध्यस्थान में 'मणि-पीठ' है ।उसमें 'नादविन्दु' के ऊपर 'हंस-पीठ' का स्थान है । हंस-पीठके ऊपर "गुरु-पादुका" है-इस स्थान में श्रीगुरुदेव का ध्यान करे ।।१०४।।

नित्यं शुद्धं निराभासं, निराकारं निरञ्जनम् ।
नित्यबोधं चिदानन्दं, गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम् ॥१०५॥

नित्य-त्रिकालाबाधित,माया मल से रहित, निराभास,-लौकिक प्रकाश से रहित, आकार रहित, निरंजन-निर्लेप, ज्ञान तथा

चिदानन्दस्वरूप, ब्रह्मस्वरूपी 'श्रीसद्गुरु–ब्रह्म' को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१०५॥

सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषसृष्टि-
र्निखिलनिगमदृष्टिः सत्पदार्थैकसृष्टिः ॥
अथ गणपरमेष्ठी सत्पदार्थैक सृष्टि
र्भवगुणपरमेष्ठी मोक्षमार्गैकदृष्टिः ॥१०६॥

समस्त संसार की सृष्टि जिसकी दृष्टि में कल्पनामात्र रह गई है, और इसस शेष सृष्टि जिस सर्वेश्वरमयदृष्टि से सत् रूप ब्रह्मरूप–दीखती है, इन्द्रियाँ जिसकी परमनैष्ठिक होकर ब्रह्म-चिन्तन में निरत हो, एक मोक्ष मार्ग की ही ओर लगी हुई हैं–ऐसे श्रीसद्गुरुदेव की मुझ पर "कल्याण–कारिणी–दृष्टि" सदा रहे ॥१०६॥

सकलभुवनरंगस्थापनास्तम्भयष्टिः
सकरुणरसवृष्टिस्तत्त्वमालासमष्टिः ।
सकलसमयसृष्टिः सच्चिदानन्ददृष्टि-
र्निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः ॥१०७॥

सकल विश्व की उत्पत्ति–स्थिति–लयरूप–क्रिया के अधिष्ठान रूप करुणारस की वृष्टिरूप तत्त्वमाला की समष्टि–आधाररूप,

सकल समय की सृष्टिरूप, सच्चिदानन्द–दृष्टिरूप, ऐसी श्रीगुरुदेव की "दिव्य–दृष्टि" मुझ पर नित्य–निरंतर रहियो ॥१०७॥

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं,
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम् ।
शिवशासनतः शिवशासनतः,
शिवशासनतः शिवशासनत ॥१०८॥

श्रीशिव की आज्ञा से, श्रीशिव की आज्ञा से, श्रीशिव की आज्ञा से, श्रीशिव की आज्ञा से–गुरु से कोई अधिक नहीं, गुरु से कोई अधिक नहीं, गुरु से कोई अधिक नहीं, गुरु से कोई अधिक नहीं ऐसा सद्गुरु के अनन्य भक्त कहते हैं ॥१०८

इदमेव शिवमिदमेव शिवं,
इदमेव शिवमिदमेव शिवम् ।
मम शासनतो मम शासनतो,
मम शासनतो मम शासनतः ॥१०९॥

मेरी [महेश्वर की–स्वयकी] आज्ञा से, मेरी आज्ञा से, मेरी आज्ञा से, मेरी आज्ञा से, यह ["गुरुपूजन-स्तुति"] ही सुखरूप है, यह ही सुखरूप है, यह ही सुखरूप है, यह ही सुखरूप है ॥१०९॥

विदितं विदितं विदितं विदितं,
विजनं विजनं विजनं विजनम् ।
हरिशासनतो हरिशासनतो,
हरिशासनतो हरिशासनतः ॥११०॥

[भगवान् शंकर कहते हैं कि–] हरि (श्रीविष्णु) के शासन (वचन) से, हरि के शासन से, हरि के शासन से, हरि के शासन से, विजन (एकान्त) में, विजन में, विजन में, विजन में मैंने यह जाना है, यह जाना है यह जाना है, यह जाना है कि–"कल्याण कर्ता भी गुरु ही हैं" ॥११०॥ इति ध्यानम्

एवं विधं गुरुं ध्यात्वा, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
तदा गुरूपदेशेन, मुक्तोऽहमिति भावयेत् ॥१११॥

इस प्रकार गुरू का ध्यान करने से ज्ञान आप ही आप–स्वयं उत्पन्न होता है । और गुरु प्रसाद से ज्ञान होने से 'मुक्त' होता है ॥१११॥

गुरुप्रदर्शितै र्मार्गैर्मनःशुद्धिं तु कारयेत् ।
अनित्यं खण्डयेत्सर्वं, यत्किञ्चिदात्मगोचरम् ॥११२॥

गुरु के बताए हुए साधन द्वारा बुद्धिमान (शिष्य) को अपने मन की शुद्धि करना चाहिए और जो कुछ मन की

विषय रूप वस्तु है, वह सब अनित्य है- ऐसा विचार करना चाहिए॥११२॥

ज्ञेयं सर्वमतीतञ्च, शास्त्रकोटिशतैरपि।
ज्ञानं ज्ञेयं समं कृत्वा,यथा नान्यद्वितीयकम् ॥११३॥

ज्ञान, ज्ञेय दोनो को एक रूप जाने। नित्य—अनित्य अथवा—अनित्य—नित्य, यह सब छोड देकर ज्ञानी "गुरुत्राण" लेता है ॥११३॥

किमत्र बहुनोक्तेन, शास्त्रकोटिशतैरपि।
दुर्लभा चित्तविश्रांति,र्विना गुरुकृपां पराम् ॥११४॥

बहुत कहने से क्या लाभ है—सौ करोड़ शास्त्रों से भी क्या होवे, सार बात तो यह है कि—"गुरु-कृपा के बिना मनुष्य के चित्त को विश्राति मिलना दुर्लभ है" ॥११४॥

करुणा—खड्ग—पातेन, छित्वा पाशाष्टकं शिशोः।
सम्यगानन्द—जनकः, सद्गुरुः सोऽभिधीयते ॥११५॥

जो दया-रूप खड्ग के पात (झटके) से शिशु (शिष्य) के (मल माया कर्मादि) आठ पाशों को छेदन कर सम्यक् आनन्द के उत्पन्न करने वाले है, वे गुरु—"सद्गुरु" कहाते हैं ॥११५॥

एव श्रुत्वामहादेवि, गुरुनिन्दां करोति च ।
स याति नरकान् घोरान्, यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥११६॥

हे देवी ! ऐसा श्रवण करने पर भी जो प्राणी गुरुदेव की निंदा करता है, वह जब तक चन्द्र सूर्य विद्यमान रहते हैं तबतक महान घोर नरक में पड़ा रहता है ॥११६॥

यावत्कल्पान्तको देहस्तावद्देवि गुरुं स्मरेत् ।
गुरुलोपोन कर्तव्य ,स्वच्छन्दो यदि वा भवेत् ११७॥

हे देवी ! कल्पकान्त तक देह रहे, तब तक 'गुरु-स्मरण' करता रहे और ज्ञान प्राप्त हो जाय, अथवा—गुरु साधना करे, तो भी 'गुरु आज्ञा का लोप न करे' यह शिष्य का कर्तव्य है ॥११७॥

हुंकारेण न वक्तव्य, प्राज्ञशिष्यै कदाचन ।
गुरोरग्र न वक्तव्य मसत्यं तु कदाचन ॥११८॥

विवकी शिष्य को चाहिये कि—गुरु से कभी 'हुँकार कर' न बोले तथा—कभी उनके सन्मुख 'असत्य–भाषण' न करे ॥११८॥

गुरुं त्वंकृत्य हुं कृत्य, गुरुसान्निध्यभाषणः ।
अरण्ये निर्जले देशे, स भवेद् ब्रह्मराक्षसः ॥११९

गुरु के सन्मुख जो शिष्य हुंकार तुंकार कर भाषण करता है—औधी सीधी बाकता है वाद करता है वह एस वन में—जहाँ जल नहीं मिलता—ब्रह्मराक्षस होता है ॥११९॥

गुरुकार्यं न लङ्घेत, नाऽपृष्ट्वा कार्यमाचरेत् ।
नह्युत्तिष्ठेद्दिशेऽनत्वा, गुरुसद्भावशोभितः ॥१२०॥

गुरु के अपने ऊपर के प्रेम से अथवा अपने प्रमाद से उन्मत्त होकर गुरु के कार्य का उल्लंघन नहीं करना । गुरु को पूछे बिना नया काम नहीं करना तथा—प्रणाम किये बिना गुरु के पास से उठना वा—बैठना नहीं ॥१२०॥

न गुरोराश्रमे कुर्याद्दुःपानं परिसर्पणम् ।
दीक्षा व्याख्या प्रभुत्वादि,गुरोराज्ञां न कारयेत्॥१२१

गुरु के अश्राम मे 'अपेय—पान' और 'खाटा चलन' नहीं करना और न गुरु की आज्ञा सिवाय दीक्षा व्याख्यान तथा अपनी बड़ाई—महत्व-वर्णन करे ॥१२१॥

नोपाश्रयञ्च पर्यङ्कं, न च पादप्रसारणम् ।
नाङ्गभोगादिकं कुर्यान्न लीलामपरामपि ॥१२२॥

गुरु के सामने पलंग पर न बैठे, पाँव फैलाकर न बैठे। न भोगादिक करे और न किसी से ठट्ठा मश्करी करे ॥१२२॥

गुरूणां सदसद्वापि, यदुक्तं तन्न लङ्घयेत् ।
कुर्वन्नाज्ञां दिवारात्रौ, दासवन्निवसेद्गुरौ ॥१२३॥

गुरु के योग्यायोग्य कहे वचनों का उल्लंघन न करे, दिन रात उनकी आज्ञा का पालन करते हुए सेवक-दास की भाँति रहे ॥१२३॥

अदत्तं न गुरोर्द्रव्य,-मुपभुञ्जीत कर्हिचित् ।
दत्तञ्च रङ्कवद् ग्राह्यं, प्राणोऽप्येतेन लभ्यते ॥१२४

चाहे प्राण जाँय तो भी गुरु के द्रव्य को बिना उनके दिये कभी उपयोग में नहीं लाना । और यदि गुरु देवें तो गरीब के समान ले लेना ॥१२४॥

पादुकासन-शय्यादि, गुरुणा यदधिष्ठितम् ।
नमस्कुर्वीत तत्सर्वं,पादाभ्यां न स्पृशेत्क्वचित्॥१२५

जिस वस्तु का गुरु ने उपयोग किया हो—ऐसी पादुकाओं, (खड़ाऊँ) आसन तथा—शय्या आदि समस्त वस्तुओं को शिष्य नमस्कार करे, पर उसे कोई दिन पांव से स्पर्श न करे ॥१२५॥

गच्छतः पृष्ठतो गच्छेद्, गुरुच्छायां न लङ्घयेत् ।
नोल्बणं धारयेद्वेष, मालङ्कारांस्ततोल्बणान् ॥१२६॥

गुरु जाते हों, तो उनके पीछे जाना । गुरु की छाया उल्लंघन न करे, असभ्य वेष न रखे, वैसे ही उद्धत गहने भी न पहने ॥१२६॥

गुरुनिन्दाकरं दृष्ट्वा, धावयेदथवा शपेत् ।
स्थानं वा तत्परित्याज्यं,जिह्वाच्छेदाक्षमो यदि॥१२७।

कोई गुरु की निन्दा करता हो तो वहाँ से भगा दे, अथवा—सो जाय या उस स्थान का परित्याग करदे, या—शक्ति हो तो उस निन्दक की जीभ काट डाले, या उसे चुप करदे । "परन्तु गुरु निन्दा कभी न सुने" ॥१२७॥

नोच्छिष्टं कस्यचिद्देयं, गुरोराज्ञां न च त्यजेत् ।
कृत्स्नमुच्छिष्टमादाय, नित्यमेव व्रजेद्बहिः ॥१२८॥

गुरुदेव से मिले हुए प्रसाद को किसी को न दे, न कभी गुरु की आज्ञा का उल्लंघन करे । 'गुरु-प्रसाद' रहित दूसरी वस्तु अगीकार नही करना ॥१२८॥

नाऽनृतं नाऽप्रियं चैव, न गर्वान्ना वा बहु ।
न नियोगपरं ब्रूयाद्गुरोराज्ञां विभावयेत् ॥१२९॥

झूँठ नहीं बोलना, अप्रिय-भाषण नहीं करना, गर्व की अथवा-बहुत सी बात नहीं करना और न अभ्यास सम्बन्धी बात गुरु आज्ञा सिवाय कहना ॥१२९॥

प्रभो! देव ! कुलेशान ! स्वामिन् ! राजन्! कुलेश्वर !
इति सम्बोधनैर्भीतो, गुरुभावेन सर्वदा ॥१३०॥

प्रभो ! देव ! कुलेशान ! स्वामिन् ! राजन् ! कुलेश्वर ! इत्यादि संबोधन करते हुए-डरते हुए-गुरु-भाव से सर्वदा रहना ॥१३०॥

मुनिभिः पन्नगैर्वाऽपि, सुरैर्वा शापितो यदि ।
काल-मृत्युभयाद्वापि, गुरुः संत्राति पार्वति ॥१३१॥

हे पार्वती ! मुनियों ने, सर्पो ने अथवा देवताओं ने जो किसी को शाप दिया हो तो-उसमें से अथवा-कालरूपी मृत्यु के भय से भी गुरु उसे बचा लेते हैं ॥१३१॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च, अशक्ता मुनयस्तथा ।
गुरुशाप-प्रपन्नस्य, रक्षणाय च कुत्रचित् ॥१३२॥

जिसे गुरु ने शाप दिया हो, ऐसे का रक्षण करने को कभी कोई भी देवता आदि समर्थ नहीं हैं, और मुनियों को भी सामर्थ्य नहीं है ॥१३२॥

मन्त्र-राजमिदं देवि, गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
स्मृति-वेदार्थवाक्याभ्यां,गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥१३३

हे पार्वती ! श्रुति के और स्मृति के वाक्यों में 'गुरु' पद दो अक्षर वाला महामंत्र है । और 'गुरु' पद साक्षात् 'परम-पद' है ॥१३३॥

सत्कार-मानपूजार्थं, दण्डकाषाय-धारणः ।
स सन्यासी न वक्तव्यः, सन्यासी ज्ञानतत्परः ॥१३४॥

जो मान-सम्मान-पूजा प्राप्त करने को दण्ड, काषाय-वस्त्र धारण करते हैं वे सन्यासी नहीं है । सन्यासी उसी को कहा जाता है जो ज्ञान में तत्पर हो ॥१३४॥

विजानन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता, इतरे वेषधारिणः ॥१३५

जिन्होंने श्रीगुरु के चरणों की सेवा करके 'तत्त्वमसि' महा-वाक्यों को जाना है—समझा है, वे ही जन सन्यासी हैं, इतर तो वेषधारी मात्र हैं ॥१३५॥

ब्रह्म नित्यं निराकारं, निर्गुणं बोधयेत्परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं यो, दीपात् दीपान्तरं यथा ॥१३६॥

जिस प्रकार एक दीपक अन्य-दीपक को प्रकट करता है, उसी प्रकार जो अन्य (शिष्य) को ब्रह्मभाव का भास करा-नित्य, निराकार, निर्गुण परब्रह्म का बोध करे-वह "गुरु" है ॥१३६॥

गुरुप्रसादतः स्वात्माऽन्यात्मारामनिरीक्षणात् ।
समता मुक्तिमार्गेण, स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥१३७।

गुरु की कृपा से "निजात्मा और अन्य की आत्मा एक है" ऐसा निरीक्षण करते, करते, मुक्ति के मार्ग में चलते हुए-आत्म-ज्ञान में प्रवृत्ति होती है ॥१३७॥

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं, परमात्मस्वरूपकम् ।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव, प्रणमामि जगन्मयम् ॥१३८॥

'स्थावर जगमरूप' यह अखिल ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसे "श्रीजगद्गुरु-ब्रह्म" को मैं नमस्कार करता हू ॥१३७॥

वंदेऽहं सच्चिदानन्द, भावातीतं जगद्गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं, निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम् ॥१३९॥

सच्चिदानन्दमय, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मा के विषे स्थित-ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार है॥ ३९॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च, अशक्ता मुनयस्तथा ।
गुरुशाप-प्रपन्नस्य, रक्षणाय च कुत्रचित् ॥१३२॥

जिसे गुरु ने शाप दिया हो, ऐसे का रक्षण करने को कभी कोई भी देवता आदि समर्थ नहीं हैं, और मुनियों को भी सामर्थ्य नहीं है ॥१३२॥

मन्त्रराजमिदं देवि, गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
स्मृति-वेदार्थवाक्यानां, गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥१३३॥

हे पार्वती ! श्रुति के और स्मृति के वाक्यों में 'गुरु' पद दो अक्षर वाला महामंत्र है । और 'गुरु' पद साक्षात् 'परम-पद' है ॥१३३॥

सत्कार-मानपूजार्थं, दण्डकाषाय-धारणः ।
स सन्यासी न वक्तव्यः, सन्यासी ज्ञानतत्परः ॥१३४॥

जो मान-सन्मान-पूजा प्राप्त करने को दण्ड, काषाय-वस्त्र धारण करते हैं वे सन्यासी नहीं है । सन्यासी उसी को कहा जाता है, जो 'ज्ञान में तत्पर हो' ॥१३४॥

विजानन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता, इतरे वेषधारिणः ॥१३५॥

जिन्होंने श्रीगुरु के चरणों की सेवा करके 'तत्त्वमस्यादि' महा वाक्यों को जाना है—समझा है, वे ही जन सन्यासी हैं, इतर तो वेषधारी मात्र हैं ॥१३५॥

ब्रह्म नित्यं निराकारं, निर्गुणं बोधयेत्परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं यो,दीपात् दीपान्तरं यथा ॥१३६॥

जिस प्रकार एक दीपक अन्य–दीपक को प्रकट करता है, उसी प्रकार जो अन्य (शिष्य) को ब्रह्मभाव का भास करा–नित्य, निराकार, निर्गुण परब्रह्म का बोध करे–वह "गुरु" है ॥१३६॥

गुरुप्रसादतः स्वात्माऽन्यात्मारामनिरीक्षणात् ।
समता मुक्तिमार्गेण, स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥१३७।

गुरु की कृपा से "निजात्मा और अन्य की आत्मा एक है" ऐसा निरीक्षण करते, करते, मुक्ति के मार्ग मे चलते हुए–आत्मज्ञान में प्रवृत्ति होती है ॥१३७॥

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं, परमात्मस्वरूपकम् ।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव, प्रणमामि जगन्मयम् ॥१३८॥

'स्थावर जगमरूप' यह अखिल ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसे "श्रीजगद्गुरु-ब्रह्म" को मैं नमस्कार करता हू ॥१३७॥

वंदेऽहं सच्चिदानन्द, भावातीतं जगद्गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं, निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम् ॥१३९॥

सच्चिदानन्दमय, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मा के विषे स्थित-ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार है॥ ३९॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च, अशक्ता मुनयस्तथा ।
गुरुशाप-प्रपन्नस्य, रक्षणाय च कुत्रचित् ॥१२२॥

जिसे गुरु ने शाप दिया हो, ऐसे का रक्षण करने को कभी कोई भी देवता आदि समर्थ नहीं हैं, और मुनियों को भी सामर्थ्य नहीं है ॥१२२॥

मन्त्र-राजमिदं देवि, गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
स्मृति-वेदार्थवाक्यानां,गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥१२३

हे पार्वती ! श्रुति के और स्मृति के वाक्यों में 'गुरु' पद दो अक्षर वाला महामंत्र है । और 'गुरु' पद साक्षात् 'परम-पद' है ॥१२३॥

सत्कार-मानपूजार्थं, दण्डकाषाय-धारणः ।
स सन्यासी न वक्तव्यः, सन्यासी ज्ञानतत्परः ॥१२४॥

जो मान-सम्मान—पूजा प्राप्त करने को दण्ड, काषाय-वस्त्र धारण करते हैं वे सन्यासी नहीं है । सन्यासी उसी को कहा जाता है, जो 'ज्ञान में तत्पर हो' ॥१२४॥

विजानन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता, इतरे वेषधारिणः ॥१२५

जिन्होंने श्रीगुरु के चरणों की सेवा करके 'तत्त्वमस्यादि' महा-वाक्यों को जाना है—समझा है, वे ही जन सन्यासी हैं, इतर तो वेषधारी मात्र हैं ॥१२५॥

ब्रह्म नित्यं निराकारं, निर्गुणं बोधयेत्परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं यो, दीपात् दीपान्तरं यथा ॥१३६॥

जिस प्रकार एक दीपक अन्य-दीपक को प्रकट करता है, उसी प्रकार जो अन्य (शिष्य) को ब्रह्मभाव का भास करा-नित्य, निराकार, निर्गुण परब्रह्म का बोध करे-वह "गुरु" है ॥१३६॥

गुरुप्रसादतः स्वात्माऽन्यात्मारामनिरीक्षणात् ।
समता मुक्तिमार्गेण, स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥१३७।

गुरु की कृपा से "निजात्मा और अन्य की आत्मा एक है" ऐसा निरीक्षण करते, करते, मुक्ति के मार्ग में चलते हुए-आत्मज्ञान में प्रवृत्ति होती है ॥१३७॥

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं, परमात्मस्वरूपकम् ।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव, प्रणमामि जगन्मयम् ॥१३८॥

'स्थावर जगमरूप' यह अखिल ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसे "श्रीजगद्गुरु-ब्रह्म" को मैं नमस्कार करता हू ॥१३७॥

वंदेऽहं सच्चिदानन्द, भावातीतं जगद्गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं, निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम् ॥१३९॥

सच्चिदानन्दमय, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मा के विपे स्थित-ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार है ॥ ३९॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च, अशक्ता मुनयस्तथा।
गुरुशाप-प्रपन्नस्य, रक्षणाय च कुत्रचित् ॥१३२॥

जिसे गुरु ने शाप दिया हो, ऐसे का रक्षण करने को कभी कोई भी देवता आदि समर्थ नहीं हैं, और मुनियों को भी सामर्थ्य नहीं हैं ॥१३२॥

मन्त्र-राजमिदं देवि, गुरुरित्यक्षरद्वयम्।
स्मृति-वेदार्थवाक्यानां,गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥१३३

हे पार्वती! श्रुति के और स्मृति के वाक्यों में 'गुरु' पद दो अक्षर वाला महामंत्र है। और 'गुरु' पद साक्षात् 'परम-पद' है ॥१३३॥

सत्कार-मानपूजार्थं, दण्डकाषाय-धारणः।
स सन्यासी न वक्तव्यः, सन्यासी ज्ञानतत्पर:॥१३४॥

जो मान-सन्मान-पूजा प्राप्त करने को दण्ड, कषाय-वस्त्र धारण करते हैं वे सन्यासी नहीं है। सन्यासी उसी को कहा जाता है जो 'ज्ञान में तत्पर हो ॥१३४॥

विजानन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरणसेवया।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता,इतरे वेषधारिणः ॥१३५

जिन्होंने श्रीगुरु के चरणों की सेवा करके 'तत्त्वमस्यादि' महावाक्यों को जाना है—समझा है, वे ही सच्चे सन्यासी हैं, इतर तो वेषधारी मात्र हैं ॥१३५॥

ब्रह्म नित्यं निराकारं, निर्गुणं बोधयेत्परम् ।
भासयन् ब्रह्मभावं यो, दीपात् दीपान्तरं यथा ॥१३६॥

जिस प्रकार एक दीपक अन्य-दीपक को प्रकट करता है, उसी प्रकार जो अन्य (शिष्य) को ब्रह्मभाव का भास करा-नित्य, निराकार, निर्गुण परब्रह्म का बोध करे-वह "गुरु" है ॥१३६॥

गुरुप्रसादतः स्वात्माऽन्यात्मारामनिरीक्षणात् ।
समता मुक्तिमार्गेण, स्वात्मज्ञानं प्रवर्तते ॥१३७।

गुरु की कृपा से "निजात्मा और अन्य की आत्मा एक है" ऐसा निरीक्षण करते, करते, मुक्ति के मार्ग में चलते हुए-आत्म-ज्ञान में प्रवृत्ति होती है ॥१३७॥

आब्रह्मस्तम्भपर्यन्तं, परमात्मस्वरूपकम् ।
स्थावरं जङ्गमञ्चैव, प्रणमामि जगन्मयम् ॥१३८॥

'स्थावर जगमरूप' यह अखिल ब्रह्माण्ड परमात्मा का स्वरूप है ऐसे "श्रीजगद्गुरु-ब्रह्म" को मैं नमस्कार करता हू ॥१३७॥

वंदेऽहं सच्चिदानन्द, भावातीतं जगद्गुरुम् ।
नित्यं पूर्णं निराकारं, निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम् ॥१३९॥

सच्चिदानन्दमय, भेदरहित, नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मा के विषे स्थित-ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार है॥ ३९॥

अशक्ता हि सुराद्याश्च, अशक्ता मुनयस्तथा ।
गुरुशाप-प्रपन्नस्य, रक्षणाय च कुत्रचित् ॥१३२॥

जिसे गुरु ने शाप दिया हो, ऐसे का रक्षण करने को कभी कोई भी देवता आदि समर्थ नहीं हैं, और मुनियों को भी सामर्थ्य नहीं है ॥१३२॥

मन्त्र-राजमिदं देवि, गुरुरित्यक्षरद्वयम् ।
स्मृति-वेदार्थवाक्यानां, गुरुः साक्षात्परं पदम् ॥१३३

हे पार्वती ! श्रुति के और स्मृति के वाक्यों में 'गुरु' पद दो अक्षर वाला महामंत्र है । और 'गुरु' पद साक्षात् 'परम-पद' है ॥१३३॥

सत्कार-मानपूजार्थं, दण्डकाषाय-धारणः ।
स सन्यासी न वक्तव्यः, सन्यासी ज्ञानतत्परः ॥१३४॥

जो मान-सन्मान-पूजा प्राप्त करने को दण्ड, काषाय-वस्त्र धारण करते हैं वे सन्यासी नहीं है । सन्यासी उसी को कहा जाता है जो 'ज्ञान में तत्पर हो' ॥१३४॥

विजानन्ति महावाक्यं, गुरोश्चरणसेवया ।
ते वै संन्यासिनः प्रोक्ता, इतरे वेषधारिणः ॥१३५

जिन्होंने श्रीगुरु के चरणों की सेवा करके 'तत्त्वमस्यादि' महा वाक्यों को जाना है—समझा है, वे ही जन सन्यासी हैं, इतर तो वेषधारी मात्र हैं ॥१३५॥

'मैं अजन्मा हूं, अमर हूँ अनादि हूँ, अनिधन हूँ, अविकारी, आनन्द स्वरूप, अणु से अणु, और महान् से महान् हूँ।

मैं अपूर्व हूँ, अपर, नित्य, ज्योति स्वरूप, निरञ्जन, निराकार, परमाकाश रूप—सब मे विराजमान, ध्रुव तथा—आनन्द रूप और अव्यय-स्वरूप हूँ" ॥१४३—१४४॥

अगोचरं तथाऽगम्यं, नाम-रूप-विवर्जितम् ।
निःशब्दं तु विजानीयात्स्वभावाद् ब्रह्म पार्वति ॥१४५

हे पार्वती ! जो अगोचर है, अगम्य है, नाम-रूप रहित है, तथा शब्दों द्वारा जो समझा न जा सके—ऐसी स्थिति को "ब्रह्म" कहा है ॥१४५॥

यथा गन्ध-स्वभावत्वं, कर्पूरकुसुमादिषुः ।
शीतोष्णत्व-स्वभावत्वं, तथा ब्रह्मणि शाश्वतम् ॥१४६

जिस प्रकार कपूर-पुष्पादि मे गंध स्वभाव ही से रहती है, सर्दी-गर्मी स्वाभाविक है, उसी प्रकार "ब्रह्म" स्वभाव ही से स्थित है ॥१४६॥

यथा निज-स्वभावेन, कुण्डले कटकादयः ।
सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति, तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ॥१४७

जिस प्रकार कुण्डल-कङ्कणादि में सुवर्ण स्वभावत है—वैसे ही 'ब्रह्म" सदा सर्वदा सब में स्वभावत ही स्थित है ॥१४७॥

परात्परतरं ध्यायेन्नित्यमानन्द-कारकम् ।
हृदयाकाश-मध्यस्थ, शुद्धस्फटिक-सन्निभम् ॥१४०॥
स्फटिके स्फाटिक रूपं, दर्पणे दर्पणो यथा ।
तथात्मनि चिदाकार,-मानन्दं सोऽहमित्युत ॥१४१॥

वेही परात्पर, ध्यान करने में मग्न, नित्य, आनन्द-कारक, हृदयाऽऽकाश के मध्य में शुद्ध "स्फटिक" की भांति स्थित हैं ॥१४०॥

जैसे-स्फटिक में स्फटिक तथा दर्पण में दर्पण दीखता है, वैसे ही —आत्मा के चिदाकार में वह आनन्द स्वरूप "सोऽहम्" मैं ही हूँ, यह दीखता है—'अपरोक्षानुभव' होता है ॥१४१॥

रूपातीतं हि पुरुषं, ध्यायते चिन्मये हृदि ।
तत्र स्फुरति यो भाव , शृणु तत्कथयामि ते ॥१४२॥

हे देवी ! निर्गुण निरञ्जन, परमात्मा का "ज्योति" रूप से हृदय में ध्यान करने से जो भाव उत्पन्न होता है, वह मैं तुम से कहता हूँ, सो सुन—॥१४२॥

अजोऽहममरोऽहञ्च, अनादि-निधनोह्यहम् ।
अविकारश्चिदानन्दो ह्यणीयान् महतो महान् ॥१४३॥
अपूर्वमपरं नित्यं, स्वयं ज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं, ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥१४४॥

'मैं अजन्मा हूं, अमर हूँ अनादि हूँ, अनिधन हूँ, अविकारी, आनन्द स्वरूप, अणु से अणु, और महान् से महान् हूँ।

मैं अपूर्व हूँ, अपर, नित्य, ज्योति' स्वरूप, निरञ्जन, निराकार, परमाकाश रूप—सब में विराजमान, ध्रुव तथा—आनन्द रूप और अव्यय-स्वरूप हूँ" ॥१४३–१४४॥

अगोचरं तथाऽगम्यं, नाम-रूप-विवर्जितम् ।
नि:शब्दं तु विजानीयात्स्वभावाद् ब्रह्म पार्वति॥१४५

हे पार्वती ! जो अगोचर है, अगम्य है, नाम-रूप रहित है, तथा शब्दों द्वारा जो समझा न जा सके—ऐसी स्थिति को 'ब्रह्म" कहा है ॥१४५॥

यथा गन्ध-स्वभावत्वं, कर्पूरकुसुमादिषुः ।
शीतोष्णत्व-स्वभावत्वं, तथा ब्रह्मणि शाश्वतम्॥१४६

जिस प्रकार कपूर-पुष्पादि मे गंध स्वभाव ही से रहती है, सर्दी-गर्मी स्वाभाविक है, उसी प्रकार "ब्रह्म" स्वभाव ही से स्थित है ॥१४६॥

यथा निज-स्वभावेन, कुण्डले कटकादयः ।
सुवर्णत्वेन तिष्ठन्ति, तथाऽहं ब्रह्म शाश्वतम् ॥१४७

जिस प्रकार कुण्डल-कङ्कणादि में सुवर्ण स्वभावत है—वैसे ही 'ब्रह्म" सदा सर्वदा सब में स्वभावत' ही स्थित है ॥१४७॥

स्वयं तथा विधोभूत्वा, स्थातव्यं यत्र कुत्रचित् ॥
कीटो भृङ्ग इव ध्यानाद्यथा भवति तादृश ॥१४८॥

संसार में कहीं भी–किसी भी–स्थिति में रहते हुए 'ब्रह्म का ध्यान' करने से ब्रह्म–रूप' हो जाता है। जैसे कि–'कीड़ा' भ्रमर का ध्यान करने से भ्रमर–रूप' हो जाता है ॥१४८॥

गुरुध्यानात्तथा स्वान्ते, स्वयं ब्रह्म–मयो भवेत् ।
पिण्डे पदे तथा रूपे, मुक्तोऽसौ नात्र संशय ॥१४९॥

गुरु का ध्यान करने से शिष्य स्वयं गुरु—(ब्रह्म) रूप हो जाता है। जिसको कुण्डलिनी–जागृत' प्राण–स्थिर और ज्योति प्रकट ' हो गई है वह मुक्त है–इसमें संशय नहीं ॥१४९॥

श्रीपार्वत्युवाच—

पिण्डं किं तन्महादेव, पदं किं समुदाहृतम् ।
रूपातीतञ्च रूपं किं–मेतदाख्याहि शङ्कर ॥१५०॥

श्रीपार्वती बोली–

हे दयानिधे ! भूतनाथ ! शंकर ! कृपा करके यह मुझसे कहिए कि— पिण्ड' और 'पद' किसे कहते हैं ? तथा–'रूपातीत' का रूप' क्या है ? ॥१५०॥

श्रीमहादेवउवाच—

पिण्डं कुण्डलिनीशक्ति, पदं हंसमुदाहृतम् ।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं, रूपातीतं निरञ्जनम् । १५१॥

श्री महादेव जी बोले'—

'पिण्ड' तो 'कुण्डलिनी शक्ति" जानना । क्यो कि नाभि-चक्र के विषे जो कुण्डलिनी—शक्ति रहती है, उसी के आधार से यह स्थूल शरीर रहता है। और 'पद' को "प्राण—हंस" कहा है। क्योंकि—प्राणप्रधान वासनालिंग का संग करके यह जीवात्मा 'हंस' की तरह अनेक देहों में फिरता है, और मोक्ष का साधन भी प्राण द्वारा ही होता है, इसी से प्राण को 'हंस' कहा है। और 'विन्दु" को 'रूप'—कारण शरीर जानो। तथा 'रूपातीत'—निरञ्जन देव— "ब्रह्म" को समझो ॥१५१॥

पिण्डे मुक्ताः पदे मुक्ता, रूपे मुक्ता वरानने ।
रूपातीतेषु ये मुक्तास्ते, मुक्तो नात्र संशयः ॥१५२॥

हे वरानने ! जो प्राणी पिंड, पद, रूप, को क्रम से प्राप्तकर जो रूपातीत को प्राप्त कर लेता है, वह निश्चय मुक्त हो जाता है— इसमें संशय नहीं ॥१५२ ॥

गुरोर्ध्यानेनेति नित्यं, देही ब्रह्ममयो भवेत् ।
स्थितश्च यत्र कुत्रापि, मुक्तोऽसौ नात्र संशयः ॥१५३॥

इस प्रकार गुरु के नित्य—ध्यान से प्राणी ब्रह्मरूप हो जाता है। वह चाहे जहाँ होवे तो भी उसे 'मुक्त' समझना। इसमें सशय नहीं ॥१५३॥

ज्ञानं वैराग्यमैश्वर्यं, यशः श्रीः स्वमुदाहृतम् ।
षड्गुणैश्वर्ययुक्तः श्री,-भगवान् श्रीगुरुः प्रिये॥१५४॥

स्वयं तथा विधोमूत्वा,स्थातव्य यत्र कुत्रचित् ॥
कीटो भृङ्ग इव ध्यानाद्यथा भवति तादृश ॥१४८॥

संसार में कहीं भी—किसी भी—स्थिति में रहते हुए 'ब्रह्म का ध्यान' करने से ब्रह्म—रूप' हो जाता है। जैसे कि—'कीड़ा' भ्रमर का ध्यान करने से भ्रमर—रूप' हो जाता है ॥१४८॥

गुरुध्यानात्तथा स्वान्ते, स्वयं ब्रह्म—मयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूप, मुक्तोऽसौ नात्र संशय ॥१४९॥

गुरु का ध्यान करने से शिष्य स्वयं गुरु—(ब्रह्म) रूप हो जाता है। जिसको कुण्डलिनी-जागृत' प्राण-स्थिर' और ज्योति प्रकट" हो गई है वह मुक्त है—इसमें संशय नहीं ॥१४९॥

श्रीपार्वत्युवाच—

पिण्ड किं तन्महादेव, पदं किं समुदाहृतम्।
रूपातीतश्च रूप किं—मेतदाख्याहि शङ्कर ॥१५०॥

श्रीपार्वती बोली—

हे महाशिव ! प्राणनाथ ! शंकर ! कृपा करके यह मुझसे कहिए कि— पिण्ड' और 'पद' किसे कहते हैं ? तथा—'रूपातीत' का 'रूप' क्या है ? ॥१५०॥

श्रीमहादेवउवाच—

पिण्डं कुण्डलिनीशक्तिः, पदं हंसमुदाहृतम्।
रूपं बिन्दुरिति ज्ञेयं, रूपातीतं निरञ्जनम्। १५१॥

श्रीगुरु की चरण-सेवा में वेदान्त-सम्मत जैसा सुख है, वैसा सुख चार्वाकमत में, वैष्णव मत मे और प्रभाकर के मत में नहीं है ॥१५८॥

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य, न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।

यत्सुखं वीतरागस्य, मुनेरेकान्तवासिनः ॥१५९॥

जो सुख वीतरागी, एकान्त वासी, महात्मा को प्राप्त होता है, वैसा सुख न तो इन्द्र को है, और न चक्रवर्ती सम्राट् ही को होता है ॥१५९॥

रसं ब्रह्म पिबेद्यश्च, ो यः परमात्मनि ।

इन्द्रश्च मन्यते रङ्कं, नृपाणां तत्र का कथा ॥१६०॥

जो महात्मा "परमात्म-ब्रह्म-रस" को प्राशन कर चुके हैं उनके आगे इन्द्र दरिद्री लगता है, तो संसार के राजाओं की तो बात ही क्या है ? ॥१६०॥

एक एवाद्वितीयोऽहं, गुरुवाक्येन निश्चितः ।

एवमभ्यस्यता नित्यं, न सेव्यं वै वनान्तरम् ॥१६१॥

अभ्यासान्निमिषेणैव, समाधिमधि-गच्छति ।

आजन्मजनितं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति ॥१६२॥

गुरु वाक्य से—'एक अद्वितीय, मैं हू' ऐसा निश्चय करके जो नित्य अभ्यास करे, तो उसे दूसरा वन सेवन नहीं करना पड़ता। इसके—निमिष मात्र अभ्यास करने से समाधि लग जाती है और जन्म जन्मान्तर के पाप तत्क्षण नाश हो जाते हैं ॥ १६१-१६२ ॥

हे प्रिय ! ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, यश शोभा [या-लक्ष्मी] और द्रव्य (धर्म) ये छह ऐश्वर्य कहे हैं और "भगवद्-रूप श्रीगुरु" इन छह ऐश्वर्य से युक्त होते हैं ॥१५४॥

गुरुःशिवो गुरुर्देवो, गुरुर्बन्धुः शरीरिणाम् ।
गुरुरात्मा गुरुर्जीवो, गुरोरन्यन्न विद्यते ॥१५५॥

श्री गुरु ही शिव हैं, श्री गुरु ही देव हैं श्रीगुरु ही बन्धु हैं, श्री गुरु ही शरीर हैं और श्रीगुरु ही आत्मा है तथा श्री गुरु ही जीव मात्र हैं। श्री गुरु के सिवा अन्य कुछ भी नहीं मालूम होता है ॥१५५॥

एकाकी निस्पृहः शान्त,-श्चिन्ताऽसूया-विवर्जित ।
बाल्यभावेन यो भाति,ब्रह्मज्ञानी स उच्यते ॥१५६॥

जो अकेला, निस्पृह शान्त, चिन्ता असूयादि रहित, बालक भाव से विचरता रहता है उसे "ब्रह्मज्ञानी" कहते हैं ॥१५६॥

न सुखं वेदशास्त्रेषु न सुखं मन्त्रयन्त्रके ।
गुरो प्रसादादन्यत्र, सुखं वेदान्तसम्मतम् ॥१५७॥

गुरु की कृपा बिना इस पृथ्वी पर अथवा-दूसरी कोई जगह सुख नहीं है, वेद में और दूसरे शास्त्रों में सुख नहीं है, न यंत्र मंत्रादि ही में कोई सुख है ॥१५७॥

चार्वाकवैष्णवमते, सुखं प्राभाकरे नहि ।
गुरो पादान्तिके यद्वत्,सुखं नास्ति महीतले॥१५८॥

श्रीगुरु की चरण-सेवा मे वेदान्त-सम्मत जैसा सुख है, वैसा सुख चार्वाकमत में, वैष्णव मत में और प्रभाकर के मत में नहीं है ॥१५८॥

न तत्सुखं सुरेन्द्रस्य, न सुखं चक्रवर्तिनाम् ।

यत्सुखं वीतरागस्य, मुनेरेकान्तवासिनः ॥१५९॥

जो सुख वीतरागी, एकान्त वासी, महात्मा को प्राप्त होता है, वैसा सुख न तो इन्द्र को है, और न चक्रवर्ती सम्राट् ही को होता है ॥१५९॥

रसं ब्रह्म पिबेद्यश्च, ो यः परमात्मनि ।

इन्द्रश्च मन्यते रङ्कं, नृपाणां तत्र का कथा ॥१६०॥

जो महात्मा "परमात्म-ब्रह्म-रस" को प्राशन कर चुके हैं उनके आगे इन्द्र दरिद्री लगता है, तो संसार के राजाओं की तो बात ही क्या है ? ॥१६०॥

एक एवाद्धितीयोऽहं, गुरुवाक्येन निश्चितः ।

एवमभ्यस्यता नित्यं, न सेव्यं वै वनान्तरम् ॥१६१॥

अभ्यासान्निमिषेणैव, समाधिमधि-गच्छति ।

आजन्मजनितं पापं, तत्क्षणादेव नश्यति ॥१६२॥

गुरु वाक्य से—'एक अद्वितीय, मैं हू' ऐसा निश्चय करके जो नित्य अभ्यास करे, तो उसे दूसरा वन सेवन नहीं करना पड़ता। इसके—निमिष मात्र अभ्यास करने से समाधि लग जाती है और जन्म जन्मान्तर के पाप तत्क्षण नाश हो जाते हैं ॥ १६१-१६२ ॥

किमावाहनमव्यक्ते, व्यापके किं विसर्जनम् ।
अमूर्तो च कथं पूजा, कथं ध्यानं निरामये ॥१६३॥

अव्यक्त का आवाहन क्या ? व्यापक का विसर्जन कैसे ? मूर्ति रहित की पूजा कैसे हो ? तथा—निरामय-निराकार का ध्यान कैसे किया जाय ? ॥१६३॥

गुरुर्विष्णुः सत्त्वमयो,—राजसश्चतुराननः ।
तामसो रुद्ररूपेण सृजत्यवति हन्ति च ॥१६४॥

श्री गुरु—सत्त्वमय—'विष्णु', राजस—'चतुरानन' (ब्रह्मा) और तामस 'रुद्र' रूप से सृष्टि को रक्षण करते हैं उत्पन्न करते हैं, और संहार करते हैं ॥१६४॥

स्वयं ब्रह्ममयोभूत्वा, तत्परं नावलोकयेत् ।
परात्परतरं नान्यत्, सर्वगं तन्निरामयम् ॥१६५॥

उस परम तत्व के दर्शन से जीव स्वयं 'ब्रह्म-रूप' हो जाता है । उस परम तत्व के सिवाय अन्य कुछ नहीं है, वह सब में व्यापक, निराकार निरंजन है ॥१६५॥

तस्यावलोकनं प्राप्य, सर्वसङ्गविवर्जितः ।
एकाकी निःस्पृहः शान्तः, स्थाता यै तत्प्रसादतः ॥१६६॥

उसके दर्शन प्राप्त होने से सब संग छूट जाते हैं । उस (गुरु) की कृपा-प्रसादी से वह अकेला निस्पृही—शान्त हो स्थिर हो जाता है ॥१६६॥

लब्धं वाऽथ न लब्धं वा, स्वयं वा बहुलं तथा ।

निष्कामेनैव भोक्तव्यं,सदा संतुष्टमानसम् ॥१६७॥

प्राप्ति हो-किंवा न हो, थोडी प्राप्ति हो-अथवा तो बहुत हो, तो भी इच्छा रहित होकर–उपभोग कर, सदा संतुष्ट मन से जो रहते हैं–'वे ब्रह्म रूप ही हैं' ॥१६७॥

सर्वज्ञ पदमित्याहु-, र्देही सर्वमयो भुवि ।

सदानन्दः सदा शांतो-, रमते यत्र कुत्रचित् ॥१६८॥

ऐसे 'सर्वज्ञ' पद को प्राप्त हुए महात्मा देह–भाव रहित, नित्यानन्द-स्वरूप, अखंड, शान्त, लोकोपकार के लिये इधर उधर विचरते रहते हैं ॥१=८॥

यत्रैव तिष्ठते सोपि, स देशः पुण्य-भाजनः ।

मुक्तस्य लक्षणञ्चैव, तवाग्रे कथितं मया ॥१६९॥

वे जहा कहीं निवास करते हैं–वह देश 'महान् पवित्र'–पुण्य भाजन है । हे देवि ! मैंने मुक्त पुरुषों के लक्षण तेरे आगे वर्णन किये हैं ॥१६९॥

उपदेशस्त्वयं देवि, गुरुमार्गेण मुक्तिदः ।

गुरुभक्तिस्तथात्यन्ता,कर्तव्या वै मनीषिभिः॥१७०॥

हे देवि ! गुरु जिस मार्ग को बताकर मुक्ति का उपदेश देते हैं, वह यही है । इसलिये मुमुक्षु को चाहिए कि–गुरुभक्त कर कर्तव्य पालन करे ॥१७०॥

नित्ययुक्ताश्रय सर्वो, वेदकृत्सर्ववेदकृत् ।
स्वपरज्ञानदाता च, तम्वन्दे गुरुमीश्वरम् ॥१७१॥

जो नित्य-युक्त है, सबको आश्रयदाता है, सर्व वेदों का ज्ञाता और वेदानुसारी कृति करने वाला अपना और दूसरे का ज्ञान कराने वाला है—उस ईश्वरस्वरूप गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७१॥

यद्यप्यधीता निगमाः, षडङ्गाआगमा प्रिये ।
अध्यात्मादीनि शास्त्राणि,ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ॥१७२

हे पार्वती ! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़े, वेद के षट् (छः) अङ्ग तथा—दूसरे सब शास्त्र पढ़ले और वेदान्त आदि शास्त्रों का—अभ्यास करे; तो भी बिना गुरु के आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता ॥१७२॥

निरस्तसर्वसन्देहो, एकीकृत्य सुदर्शनम् ।
रहस्यं यो दर्शयति, भजामि गुरुमीश्वरम् ॥१७३॥

सर्व सन्देहों को दूर कर तथा—समस्त 'सत्-शास्त्र' के अभिप्राय एक करके जो 'गुप्त-बात (ज्ञान) बताते हैं उन ईश्वर स्वरूप गुरु का मैं नित्य भजन करता हूँ ॥१७३॥

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो, मिथ्यावादी विडम्बकः ।
स्वविश्रान्तिं न जानाति,परशान्तिं करोति किम् ॥१७४

शिलायाः किं परं ज्ञानं, शिलासङ्घ प्रतारणे ।
स्वयं तर्तुं न जानाति, परं निस्तारयेत्कथम् ॥१७५॥

न वन्दनीयास्ते कष्टं, दर्शनाद्भ्रान्तिकारकाः ।
वर्जयेत्तान् गुरून्दूरे, धीरस्यतु समाश्रयेत् ॥१७३॥

ज्ञान से रहित मिथ्याबोलने वाले, विडंबना करने वाले गुरु का त्याग करना । क्योंकि--जो स्वयं की शाति को नही जानता तो दूसरे का शाति कैसे दे मकता है ?

पत्थर पत्थर को नही तार सकता, जो स्वयं ही तिरना नहीं जानता वह दूसरे को कैसे पार कर सकता है ।

धीर पुरुप को चाहिये कि ऐसे गुरु को, जिनके दर्शनों से भ्रन्ति उत्पन्न होती है, कष्ट होता है-दूर ही से त्याग दे, वे वन्दन करने योग्य नहीं है ॥१७४॥१७५॥१७६॥

पाखण्डिनः पापरता, नास्तिका भेदबुद्धयः ।
स्त्रीलम्पटा दुराचाराः, कृतघ्ना वकवृत्तयः ॥१७७॥
कर्मभ्रष्टाः क्षमानष्टा, निन्द्यतर्कैश्च वादिनः ।
कामिनः क्रोधिनश्चैव, हिंसाचण्डाः शठास्तथा ॥१७८॥
ज्ञानलुप्ता न कर्तव्या,-महापापास्तथा प्रिये ।
एभ्योभिन्नो गुरुः सेव्य,-एकभक्त्या विचार्य च ॥१७९॥

पाखण्डी, पाप करने में रत, नास्तिक, भेदबुद्धि उत्पन्न करने वाले, स्त्रीलंपट, दुराचारी, उपकार को न मानने वाले, वगलावृत्ति वाले ।

कर्मभ्रष्ट, क्षमारहित, निंद्य, तर्कों से वृथा वाद करने वाले, कामी, क्रोधी, लोभी, हिंसक, चंड, शठ, तथा-

नित्यमुक्तोऽमरः सर्वो, वेदकृत्सर्ववेदकृत् ।
स्वपरज्ञानदाता च, तम्वन्दे गुरुमीश्वरम् ॥१७१॥

जो नित्य–मुक्त है, सबको आश्रय देता है, सब वेदों का ज्ञाता और वेदानुसारी कर्म करने वाला अपना और दूसरे का ज्ञान कराने वाला है—उस ईश्वरस्वरूप गुरुदेव को मैं नमस्कार करता हूँ ॥१७१॥

यद्यप्यधीता निगमाः, षडङ्गान्यागमाः प्रिये ।
अध्यात्मादीनि शास्त्राणि, ज्ञानं नास्ति गुरुं विना ॥१७२

हे पार्वती ! मनुष्य चाहे चारों वेद पढ़े, वेद के षट् (छः) अङ्ग तथा—दूसरे सब शास्त्र पढ़ले और वेदान्त आदि शास्त्रों का—अभ्यास करे तो भी बिना गुरु के आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता ॥१७२॥

निरस्तसर्वसन्देहो, एकीकृत्य सुदर्शनम् ।
रहस्यं यो दर्शयति, भजामि गुरुमीश्वरम् ॥१७३॥

सर्व सन्देहों को दूर कर, तथा—समस्त 'सत्–शास्त्र' के अभिप्राय एक करके जो 'गुप्त–तत्व' (ज्ञान) बताते हैं उन ईश्वर स्वरूप गुरु का मैं नित्य भजन करता हूँ ॥१७३॥

ज्ञानहीनो गुरुस्त्याज्यो, मिथ्यावादी विडम्बकः ।
स्वविश्रान्तिं न जानाति, परशान्तिं करोति किम् ॥१७४

शिलायाः किं परं ज्ञानं, शिलासङ्घ-प्रतारणे ।
स्वयं तर्तुं न जानाति, परं निस्तारयेत्कथम् ॥१७५॥

हे पार्वती ! जो वस्तु गुरुदेव को अर्पण होती है, उससे मैं—सतोष पाता हू ! श्रीगुरु की 'पावडी,' उनकी दी हुई 'मुद्रा' और उनके दिये 'मूलमंत्र'—इतनी वस्तुएं शिष्य को गुप्त रखना चाहिए ॥१८३॥

नमाः स्म ते नाथ पदारविन्दं ,
बुद्धीन्द्रिय-प्राणमनोवचोभिः ।
यच्चिन्त्यते भावतयात्मयुक्तौ ,
मुमुक्षुभिः कर्ममयोपशान्तः ॥१८४॥

हे नाथ—गुरुदेव ! मैं मनसा वाचा, कर्मणा से तथा—अन्तःकरण, इन्द्रियादि पूर्वक नमस्कार करता हूँ—उन आपके चरण कमलों की कि,—जिनका आत्मभाव से चिन्तन कर मुमुक्षुजन कर्मादिक से शान्ति पाते हैं ॥१८४॥

अनेन यद्भवेत्कार्यं, तद्वदामि तव प्रिये ।
लोकोपकारक देवि, लौकिकं तु विवर्जयेत् ॥१८५॥

हे प्रिये ! इस गुरु गीता के पाठ करने से जो कार्य—सिद्ध होते हैं, वह कहता हू —इसका उपयोग लोकोपकार के लिये करना चाहिये, लौकिक कार्य के लिये नहीं ॥१८५॥

लौकिकाद्धर्मतो याति, ज्ञानहीनो भवार्णवे ।
ज्ञानभावे च यत्सर्वं, कर्म निष्कर्म शाम्यति॥१८६॥

जो कोई इसका लौकिक—कार्य के लिये उपयोग करेगा, तो वह ज्ञान हीन, ससाररूपी समुद्र में पडेगा । ज्ञान भाव से उपयोग करने से कर्म निष्कर्म हो शान्ति की प्राप्ति होती है ॥१८६॥

ज्ञान प्राप्त करने के कर्तव्य में न लगे हुए, तथा महापापी हों—ऐसों को छोड़, जो इनसे भिन्न, 'सद्‌गुण वाले गुरु' हैं, वही सेव्य'—सेवा करने के योग्य हैं ॥१७७॥१७८॥१७९॥

शिष्यादन्यत्र देवेशि, न वदेयस्य कस्यचित् ।
नराणां च फलप्राप्तौ, भक्तिरेव हि कारणम् ॥१८०॥

हे देवी ! शिष्य के लिए गुरु के सिवा अन्यत्र कहीं देवता नहीं । इसलिए मनुष्य जन्म की सफलता का कारण एक गुरु—भक्ति ही है ॥१८०॥

गूढा दृढाश्च प्रीताश्च, मौनेन सुसमाहिता' ।
सकृत्कामगता वापि, पंचधा गुरवीरिता ॥१८१॥

आत्म—ज्ञान—पूर्ण अमोघ—संकल्प, दयालु मौन द्वारा सुसमाहित पराकार्य निरत—प्रस पंचलक्षणोंयुक्त गुरु कहे गये हैं ॥ १८१ ॥

सर्वं गुरुमुखाल्लब्धं, सफलं पापनाशनम् ।
यद्यदात्महितं वस्तु, तत्तद्‌द्रव्यं न वञ्चयेत् ॥ १८२॥

श्रीगुरु द्वारा जो प्राप्त होता है वह सब सफल होता है । पाप का नाश करने वाला होता है । इसलिये—आत्महित करने वाली—सम्पत्ति के प्राप्त करने में वंचना नहीं करना ॥१८२॥

गुरुदेवार्पणं वस्तु, तेन तुष्टोऽस्मि सुव्रते ।
श्रीगुरोः पादुकां मुद्रां, मूलमन्त्रञ्च गोपयेत् ॥१८३॥

कालमृत्युहरा चैव, सर्वसंकटनाशिना ।
यक्षराक्षसभूतादि,–चोरव्याघ्रविघातिनी ॥१९१॥

यह गुरु–गीता काल (मृत्यु) को हरने वाली, सर्व संकटों की नाशक तथा–यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि, चोर, व्याघ्रादि को घात करने वाली है ॥१९१॥

सर्वोपद्रवकुष्ठादि,–दुष्ट–दोष–निवारिणी ।
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद्भवेत् ॥१९२॥

सर्व उपद्रव, कुष्ठादि रोग ओर दुष्ट–दोषो को निवारण करने वाली यह गीता है । श्रीगुरु के सान्निध्य मे रहने से जो पुण्य–फल मिलता है, वही इसके पाठ करने से प्राप्त होता है ॥१९२॥

महाव्याधिहरा सर्वा, विभूतिःसिद्धिदा भवेत् ।
अथवा मोहने वश्ये, स्वयमेव जपेत्सदा ॥१९३॥

इसके स्वयं सदा जप करने से महाव्याधि दूर हो सर्व विभूति को प्राप्ति होती है । तथा–मोहन, वशीकरणआदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है ॥१९३॥

कुशदूर्वासने देवि, ह्यासने शुभ्रकम्बले ।
उपविश्य ततो देवि, जपेदेकाग्रमानसः ॥१९४॥

हे देवी ! मनुष्य को चाहिये कि कुश, दूर्वासन, शुभ्र–कम्बल पर बैठकर एकाग्र मन से जप करे–पाठ करे ॥१९४॥

इमां तु भक्तिभावेन, पठन्वै शृणुयादपि ।
लिखित्वा यत्प्रदानेन, तत्सर्वं फलमश्नुते ॥१८७॥

इस गुरु-गीता को भक्ति भाव से पढ़ने से, सुनने से अथवा-लिखकर सुपात्र को दान देने से जो पुण्य होता है, वह सब सुनो—॥१८७॥

गुरुगीतामिमां देवि, हृदि नित्यं विभावय ।
महाव्याधि-गतैर्दुःखै, सर्वदा प्रजपेन्मुदा ॥१८८॥

हे देवी ! इस गुरु-गीता को नित्य भाव पूर्वक हृदय में धारण करने से सर्व प्रकार की महाव्याधि और दुःख दूर होकर (इसके पाठ कर्ता को) आनन्द प्राप्त होता है ॥१८८॥

गुरुगीताक्षरैकैकं, मंत्रराजमिदं प्रिये ।
अन्ये च विविधा मंत्रा, कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥१८९

हे पार्वती ! इस गुरु-गीता का एक एक अक्षर परम मंत्र है, और दूसरे विविध मंत्र इसके सोलहवें भाग के योग्य भी नहीं हैं ॥१८९॥

अनन्तं फलमाप्नोति, गुरुगीता जपेन तु ।
सर्वपापहरा देवि, सर्वदारिद्र्यनाशिनी ॥१९०॥

हे देवी ! गुरु-गीता के जप-पाठ करने से अगाध फल की प्राप्ति होती है। यह गीता-सर्व पाप तथा सब प्रकार के दारिद्र्यों को नाश करने वाली है ॥१९०॥

कालमृत्युहरा चैव, सर्वसंकटनाशिनी ।
यक्षराक्षसभूतादि,-चोरव्याघ्रविघातिनी ॥१९१॥

यह गुरु-गीता काल (मृत्यु) को हरने वाली, सर्व संकटों की नाशक तथा-यक्ष, राक्षस, भूत, प्रेतादि, चोर, व्याघ्रादि को घात करने वाली है ॥१९१॥

सर्वोपद्रवकुष्ठादि,-दुष्ट-दोष-निवारिणी ।
यत्फलं गुरुसान्निध्यात्तत्फलं पठनाद्भवेत् ॥१९२॥

सर्व उपद्रव कुष्टादि रोग और दुष्ट-दोषों को निवारण करने वाली यह गीता है । श्रीगुरु के सान्निध्य में रहने से जो पुण्य-फल मिलता है, वही इसके पाठ करने से प्राप्त होता है ॥१९२॥

महाव्याधिहरा सर्वा, विभूतिःसिद्धिदा भवेत् ।
अथवा मोहने वश्ये, स्वयमेव जपेत्सदा ॥१९३॥

इसके स्वयं सदा जप करने से महान्याधि दूर हो सर्व विभूति को प्राप्ति होती है । तथा-मोहन, वशीकरणआदि सिद्धियों की प्राप्ति होती है ॥१९३॥

कुशदूर्वासने देवि, ह्यासने शुभ्रकम्बले ।
उपविश्य ततो देवि, जपेदेकाग्रमानसः ॥१९४॥

हे देवी ! मनुष्य को चाहिये कि कुश, दूर्वासन, शुभ्र-कंबल पर बैठकर एकाग्र मन से जप करे-पाठ करे ॥१९४॥

शुक्लं सर्वत्र वै प्रोक्त, वश्ये रक्तासने प्रिये ।
पद्मासने जपेन्नित्य, शान्तिवश्यकरं परम् ॥१९५॥

श्वेत आसन सब समय युक्त है । रक्तासन से वशीकरण होता है । पद्मासन से बैठकर नित्य जप करने से श्रेष्ठ शान्ति प्राप्त होती है ॥१९५॥

वस्त्रासने च दारिद्र्य, पाषाणे रोगसंभव ।
मेदिन्यां दुःखमाप्नोति, काष्ठे भवति निष्फलम् ॥१९६

वस्त्र के आसन से दारिद्र, पाषाण– पत्थर पर बैठने मे रोग की संभावना पृथ्वी से दुःख और काष्ठ पर बैठने से निष्फलता मिलती है ॥१९६॥

कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिर्मोक्ष' श्रीर्व्याघ्रचर्मणि ।
कुशासने ज्ञानसिद्धि', सर्वसिद्धिस्तु कम्बले ॥१९७॥

मृगचर्म पर बैठने से 'ज्ञान–सिद्धि' व्याघ्रचर्म 'मोक्षदाता 'कुशा–चर्मासन– ज्ञानसिद्धि' तथा–कंबल आसन स तो सर्वसिद्धि' होती है ॥१९७॥

आग्नेय्यां कर्षणञ्चैव, वायव्यां शत्रुनाशनम् ।
नैऋत्यां दर्शनञ्चैव, ईशान्यां ज्ञानमेव च ॥१९८॥

अग्नि कोण में पाठ करने से आकर्षण, वायुकोण स–शत्रुनाश नैऋत्य कोण से दर्शन और ईशान कोण में पाठ करने स ज्ञान की प्राप्ति होती है ॥१९८॥

उदङ्मुखः शान्तिजाप्ये, वश्ये पूर्वमुखस्तथा ।
याम्ये तु मारणं प्रोक्तं, पश्चिमे च धनागमः ॥१९९॥

उत्तर दिशा की तरफ मुख करके पाठ करने से शान्ति, पूव दिशा की तरफ मुख रखने से वशीकरण,दक्षिण दिशा की ओर मुख रखने से मारण तथा—पश्चिम मे मुख रख पाठ करने से सम्पत्ति की प्राप्ति होती है ॥१९९॥

मोहनं सर्वभूतानां, बन्ध-मोक्षकरं परम् ।
देवराज्ञां प्रियकर राजानं वशमानयेत् ॥२००॥

इस गीता के पाठ करने वाले पर सर्वभूत मोहित होजाते हैं। इसका पाठ कर्ता सब बन्धनो को छुडा, "परममोक्ष" का दाता होता है और उसके देवाज्ञानुसारी राजा भी 'वश' मे हो जाते हैं ॥२००॥

मुखस्तम्भकरञ्चैव, गुणानाञ्च विवर्द्धनम् ।
दुष्कर्मनाशनञ्चैव, तथा सत्कर्मसिद्धिदम् ॥२०१॥

इस गुरुगीता का पाठ प्रतिपक्षी का 'मुखस्तम्भन' करने वाला, सद्गुणो को बढ़ाने वाला, दुष्कर्मों का नाशक और सत्कर्मों की सिद्धि को देने वाला है ॥२०१॥

असिद्धं साधयेत् कार्यं, नवग्रहभयापहम् ।
दु स्वप्ननाशनञ्चैव, सुस्वप्नफलदायकम् ॥२०२॥

इसके पाठ करने से, नहीं सिद्ध होने वाले कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं, नवग्रहों का भय दूर होजाता है, दु स्वप्न नाश हो जाते हैं, और फलदायक—सुस्वप्नों की प्राप्ति होती है ॥२० ॥

सर्वशान्तिकरं नित्यं, तथा वन्ध्यासुपुत्रदम् ।
अवैधव्यकरं स्त्रीणां, सौभाग्यस्यविवर्द्धनम् ॥२०३॥

इसके पाठ से सर्व प्रकार की 'शान्ति' होती है वन्ध्यास्त्री को 'पुत्र-प्राप्ति' तथा—सधवा स्त्री को "अवैधव्य" प्राप्ति और 'सर्व—सौभाग्य" की वृद्धि होती है ॥२०३॥

आयुरारोग्यमैश्वर्यं, पुत्रपौत्रविवर्द्धनम् ।
निष्काम-जापी-विधवा, पठेन्मोक्षमवाप्नुयात् ॥२०४॥

इसके पाठ से आयु आरोग्य ऐश्वर्य, और पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है। जो विधवास्त्री निष्काम भाव से इसका पाठ करती है, उसे मोक्ष-प्राप्त होती है ॥२०४॥

अवैधव्यं सकामा तु, लभते चान्य-जन्मनि ।
सर्वदुःख-भयं विघ्नं, नाशयेत्तापहारकम् ॥२०५॥

यदि सधवास्त्री कामना सहित पाठ करे तो उसे दूसरे जन्म में सब दुःख भय, विघ्न तथा—तीनों तापों रहित—'शान्ति' प्राप्त होती है ॥२०५॥

सर्वपाप-प्रशमनं, धर्म—कामार्थ—मोक्षदम् ।
यं यं चिन्तयते कामं, तं तं प्राप्नोति निश्चितम् ॥२०६

इसके पाठ करने वाले के सब पाप नाश हो जाते हैं। और धर्म-अर्थ, काम मोक्षादि—जिस जिस काम की वह इच्छा करता है वह वह इच्छा निश्चय करके पूर्ण होता है ॥२०६॥

काम्यानां कामधेनुर्वै, कल्पिते कल्पपादपः ।
चिन्तामणिश्चिन्तितस्य, सर्वमंगलकारकम् ॥२०७॥

यह 'गुरु-गीता' कामियो के लिये 'काम-धेनु' कल्पना करने वालों के लिये 'कल्प-वृक्ष' तथा-चिन्तन करने वालों के लिये 'चिन्ता-मणि' रूप सर्व मगल-आनन्द देने वाली है ॥२०७॥

लिखित्वा पूजयेद्यस्तु, मोक्षश्रियमवाप्नुयात् ।
गुरुभक्तिर्विशेषेण, जायते हृदि सर्वदा ॥२०८॥

जो कोई इस 'गुरु-गीता' को लिख कर उसकी पूजा करते हैं उसे मोक्ष और लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और विशेष करके उसके हृदय में "गुरु-भक्ति की जागृति-वृद्धि" होती है ॥२०८॥

जपन्ति शाक्ताः सौराश्च, गाणपत्याश्च वैष्णवाः ।
शैवाः पशुपताः सर्वे, सत्यं सत्यं न संशय ॥२०९॥

शक्ति उपासक, सूर्योपासक, गाणपत्य, विष्णु उपासक, शैव या पाशुपतिक जो कोई भी इसका जप करता है-उसे नि संशय सिद्धि होती है यह वार्ता सत्य है। सत्य है। ॥२०९॥

अथ काम्यजपस्थानं, कथयामि वरानने ।
सागरान्ते सरित्तीरे, तीर्थे हरिहरालये ॥२१०॥

हे वरानने। अब मैं कामना की इच्छा वालों को जप करने के स्थानों का वर्णन करता हूँ। सागर के किनारे, नदी के तटपर, तीर्थ में तथा हरिहर (शिव-विष्णु) के मन्दिर में—॥२१०॥

शक्तिदेवालये गोष्ठे, सर्वदेवालये शुभे ।
वटस्य धात्र्या मूले वा मठे वृन्दावने तथा ॥२११॥
पवित्रे निर्मले देशे, जपानुष्ठानतोऽपि वा ।
निर्वेदनेन मौनेन, जप स्तोत्र समारभेत् ॥२१२॥

दुर्गा के मन्दिर में गौ–शाला में और सब देवालयों में जप करना शुभ है। वट के मूल में, पृथ्वी पर मठ में,–सन्तों के स्थान में, तुलसी के बगीचे में, पवित्र–निर्मल देश में, शान्त चित्त से मौन रखकर 'स्तोत्र–पाठ–जप'' का अनुष्ठान प्रारम्भ करे ॥२११॥–२१२॥

जाप्येन जयमाप्नोति, जपसिद्धि फलं तथा ।
हीनकर्म त्यजेत्सर्वं, गर्हितस्थानमेव च ॥२१३॥

सर्व प्रकार के हीन–'निम्न–कर्म' तथा 'मलीन–स्थानों' का त्याग कर जप करने से ''जय'' प्राप्त होती है और जप की सिद्धि मिलती है ॥२१३॥

श्मशाने–भय–भूमौ वा, वट–मूले च कानने ।
सिध्यन्ति कानके मूले, चूतवृक्षस्य सन्निधौ ॥२१४॥

श्मशान में, भययुक्त स्थान में वट के मूल में, बगीचे में, धतूरे के मूल में तथा–आम वृक्ष के पास पाठ करने से सिद्धि होती है ॥ २१४॥

पीतासनं मोहने तु, ह्यसितञ्चाभिचारिके ।
ज्ञेयं शुक्लञ्च शान्त्यर्थं,वश्ये रक्तं प्रकीर्तितम् ॥२१५॥
जपं हीनासने कुर्वन्, हीनकर्माऽफलप्रदम् ।
गुरुगीता प्रयाणे वा, संग्रामे रिपुसंकटे ॥२१६॥

पीलाआसन 'मोहन' कार्य में, 'अभिचार' में काला आसन, 'शान्ति' के लिये सफेद आसन, तथा–'वशीकरण' के लिये रक्त (लाल) आसन कहा है ॥११५॥

आसन विना जप करने से खोटे कर्म का फल प्राप्त होता है । विदेश जाते में, संग्राम में, दुश्मन से संकट पाते हुए– ॥२१६॥

जपन् जयमवाप्नोति, मरणे मुक्ति–दायकम् ।
सर्वकर्माणि सिद्ध्यन्ति, गुरु–पुत्रे न संशयः ॥२१७॥

–जो गुरु गीता का पाठ करता है उसे जय की प्राप्ति होती है और मरने पर मोक्ष मिलता है । इसके पाठ से शिष्य को सर्व कार्य में सिद्धि मिलती है–इसमें संशय नहीं ॥२१७॥

गुरुमंत्रो मुखे यस्य, तस्य सिद्ध्यन्ति नान्यथा ।
दीक्षया सर्वकर्माणि, सिद्ध्यन्ति गुरु–पुत्रके ॥२१८॥

जिसके मुख में 'गुरु मंत्र' है उस "गुरु–पुत्र" (शिष्य) से सिद्धि अलग नहीं रहती । उससे दीक्षादि कर्म कराने से सिद्ध ही होते हैं ॥२१८॥

भवमूल-विनाशाय, चाष्टपाश-निवृत्तये ।
गुरुगीताम्भसि स्नानं, तत्त्वज्ञः कुरुते सदा ॥२१९॥

सएव सद्गुरुः साक्षात्, सदसद्ब्रह्मवित्तम ।
तस्य स्थानानि सर्वाणि, पवित्राणि न संशयः ॥२२०॥
सर्वशुद्धः पवित्रोऽसौ, स्वभावाद्यत्र तिष्ठति ।
तत्र देवगणाः सर्वे, क्षेत्रपीठे चरन्ति च ॥२२१॥

तस्मात् पुरुष भवरूपी मूल के नाश करने के लिये, तथा आठों प्रकार के बन्धनों से छूटने के लिये नित्य 'गुरु-गीता रूपी गंगा' में स्नान किया करते हैं—

ऐसे जो "सद्गुरु हैं," उन्हें ही "परब्रह्म" (सगुण-निर्गुण) के ज्ञाता समझो। वे जिन स्थानों में निवास करते हैं, वे सब "पवित्र" हैं इसमें संशय नहीं।—

वहाँ स्वभावतः ही सर्व प्रकार से शुद्धि और पवित्रता रहती है। वहां सर्व देवतागण और क्षेत्रपालादि निवास करते हैं ॥२१९॥—॥२२०॥—॥२२१॥

आसनस्थो शयानो वा, गच्छंस्तिष्ठन्वदन्नपि वा ।
अश्वारूढो गजारूढः सुषुप्तो जाग्रतोऽपि वा ॥२२२॥
शुचिर्भूतो ज्ञानवन्तो, गुरुगीतां जपान्तये ।
तस्य दर्शन-संस्पर्शात्, पुनर्जन्म न विद्यते ॥२२३॥

आसन से बैठा हो सोता हो, चलता हो, खड़ा रहता हो, घोड़े पर बैठा हो हाथी पर सवारी किये हो, सुषुप्ति में हो निद्रा में हो अथवा जागता हो ॥—

जो प्राणी 'गुरु-गीता का पाठ"—जप करता है वह पवित्र है वही ज्ञानवान् है। उसके दर्शन, स्पर्शनमात्र से पुनर्जन्म नहीं होता ॥२२२॥—॥२२३॥

समुद्रे वै यथा तोयं, क्षीरे क्षीरं जले जलम् ॥
भिन्ने कुंभे यथाऽकाशं, तथात्मा परमात्मनि ॥२२४॥

जैसे समुद्र मे नदी मिलती है, जल में जल, दूध में दूध, घटाकाश मे महाकाश मिल जाता है, उसी प्रकार ज्ञानी परमात्मा में मिल जाता है ॥२२४॥

तथैव ज्ञानवान् जीवः, परमात्मनि सर्वदा ।
ऐक्येन रमते ज्ञानी, यत्र कुत्र दिवानिशम् ॥२२५॥

ऐसे ही जीव परमात्मा मे संलग्न–ज्ञानी–एकत्व को प्राप्त, अकेले रात्रि दिन इधर उधर विचरते रहते हैं ॥२२५॥

एवं विधो महायुक्तः, सर्वत्र वर्तते सदा ।
तस्मात्सर्वप्रकारेण, गुरु-भक्तिं समाचरेत् ॥२२६॥

इस विधि से "महामुक्त" सर्वत्र सदा वर्तते रहते हैं। इस लिये सर्व प्रकार से गुरु–भक्ति आचरण करना चाहिए ॥२२६॥

गुरुसंतोषणादेव, मुक्तो भवति पार्वति !
अणिमादिषु भोक्तृत्वं, कृपया देवि जायते ॥२२७॥

हे देवी पार्वती ! गुरु को सन्तुष्ट करने से शिष्य मुक्त होता है और अणिमादि (अणिमा, महिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व) सिद्धिया जो–दुर्लभ हैं, वह भी शिष्य को सुलभता से प्राप्त हो–भोगती हैं ॥२२७॥

साम्येन रमते ज्ञानी, दिवा वा यदि वा निशि ।
एवं विधो महामौनी, त्रैलोक्येऽसमतां व्रजेत ॥२२८॥

दिन हो या रात्रि, ज्ञानी समभाव में विचरते रहते हैं। इस प्रकार "महामौनी" अर्थात्-"ब्रह्मनिष्ठ महात्मा" श्रेष्ठेभ्य में समानभाव से विराजते हैं ॥२२८॥

अथ संसारिणः सर्वे, गुरु-गीताजपेन तु ।
सर्वान् कामांस्तु भुञ्जन्ति, त्रिसत्यं मम भाषितम्।२२९

सर्व संसारी-पुरुष "गुरु-गीता-जप" से सब प्रकार की कामनाओं की सिद्धि पासके हैं-यह मेरा भाषण सत्य है,-सत्य है, सत्य है ॥२२९॥

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं, धर्मसाख्यं मयोदितम्॥
गुरु-गीता सम स्तोत्रं, नास्ति तत्त्वं गुरोः परम् २३०॥

सत्य है, सत्य है, नित्य सत्य है कि-मैंने जो यह तुम्हें धर्मरूप साख्य (ज्ञान) कहा है। "गुरुगीता के समान दूसरा स्तोत्र-नहीं, और गुरु से बढ़कर दूसरा श्रेष्ठ तत्त्व नहीं है" ॥२३०॥

गुरुर्देवो गुरुर्धर्मो गुरुर्निष्ठा परं तपः ।
गुरोः परतरं नास्ति, त्रिवारं कथयामि ते ॥२३१॥

गुरु ही 'देव' है, तथा-गुरु ही 'धर्म' है, गुरु में जो 'आस्था' है वह ही "परम तप" है। "गुरु से बड़ा और कोई नहीं-' यह बात मैं तीन बार तुम्हें कहता हूँ ॥२३१॥

धन्या माता पिता धन्यो, गोत्रं धन्यं कुलोद्भवः ।
धन्या च वसुधा देवि, यत्र स्याद्गुरुभक्तता ॥२३२॥

हे देवी ! जिस मनुष्य में गुरु-भक्ति-धन होता है उसकी

माता धन्य है, उसके पिता धन्य हैं, उसका गोत्र धन्य है, तथा– वह पृथ्वी भी धन्य है ॥२३२॥

आकल्पं जन्मकोटीनां, यज्ञव्रततपःक्रियाः ।
ताः सर्वाःसफलादेवि, गुरुसंतोषमात्रतः ॥२३३॥

हे देवी ! कल्प पर्यन्त के वा करोडों जन्म के यज्ञ, व्रत, तप, और दूसरी शास्त्रोक्त किया, यह सब मात्र एक गुरु को सन्तोष प्राप्त कराने से सफल होती हैं ॥२३३॥

शरीरमिन्द्रियं प्राणमर्थं, स्वजनबंधुता ।
मातुःकुलं पितृकुलं, गुरुमेव परं स्मरेत् ॥२३४॥

शरीर, इन्द्रिय, प्राण, अर्थ, स्वय के स्वजन कुटुम्बी, माता का कुल और पिता का कुल, यह सब रूप "श्रेष्ठ गुरु" ही को समझना–(ऐसे सर्व श्रेष्ठ श्रीगुरु का ही ध्यान करना) ॥२२४॥

मन्दभाग्याह्यशक्ताश्च, ये जना नानुमन्वते ।
गुरुसेवासु विमुखाः, पच्यन्ते नरकेऽशुचौ ॥२३५॥

मन्द–भागी अशक्त तथा गुरु-सेवा से विमुख, जो मनुष्य इस उपदेश पर ध्य न नहीं देता–वह अपवित्र नर्क में रंधता रहता है– दुखी होता है ॥२३५॥

विद्याधनं बलञ्चैव, तेषां भाग्यं निरर्थकम् ।
येषां गुरुकृपा नास्ति, अधो गच्छन्ति पार्वति ॥२३६॥

हे पार्वती ! जिस पर गुरु कृपा नहीं है उसके विद्या धन बल, भाग्य सर्व निरर्थक हैं । उसकी अधोगति होती है ॥२३६॥

ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च, देवाश्च पितृकिन्नरा ।
सिद्धचारणयक्षाश्च, अन्ये च मुनयो जना ॥२३७।
गुरुभाव' परं तीर्थं,-मन्यतीर्थं निरर्थकम् ।
सर्वतीर्थमयं देवि ! श्रीगुरोश्चरणाम्बुजम् ॥२३८॥

ब्रह्मा, विष्णु रुद्र, देवता, पितृ, किन्नर, सिद्ध, चारण, यक्ष और अन्य जो मुनि आदि हैं (उन सब में) –

'गुरु–भाव' यह श्रेष्ठ-तीर्थ' है अन्य तीर्थ निरर्थक हैं। हे देवी ! श्रीगुरु के चरण कमल 'सर्व तीर्थ मय' हैं ॥२३७– ३८॥

कन्याभोगरतामन्दा:, स्वकान्तायाः पराङ्मुखा' ।
अत' परं मया देवि, कथितन्न मम प्रिये ॥२३९॥

हे प्रिये ! मेरा यह आत्म प्रिय परमभाव, कन्या से भोग करनेवाले, स्वस्त्री से विमुख तथा–परस्त्रीगामी मनुष्य को कभी मत कहना ॥२३९॥

इदं रहस्यमस्पष्टं, वक्तव्यं च वरानने ।
सुगोप्यं च तवाग्रेतु, ममात्मप्रीतये सति ॥२४०॥

हे सती ! मैंने अपना गुप्त से गुप्त रहस्यमय-ज्ञान' तुमसे कहा है। क्योंकि–तू मेरी प्रियतमा है; इससे आत्म–प्रीति के अर्थ कहा है ॥२४०॥

स्वामिमुख्यगणेशाद्यान्वैष्णवादींश्च पार्वति ।
न वक्तव्यं महामाये, पादं स्पर्शं कुरुष्वमे ॥२४१

हे महामाये ! स्वामी कार्तिक गणेशादि मुख्य–गण, तथा

वैष्णवादि जो हमारे चरणो मे पड़ते हैं उनसे भी मैंने प्रकट नहीं किया वह गुप्त रहस्य तुमसे कहा है ॥२४१॥

अभक्ते वञ्चके धूर्ते, पाखण्डे नास्तिकादिषु ।
मनसाऽपि न वक्तव्या, गुरु-गीता कदाचन ॥२४२॥

अभक्त, ठग, नीच, पाखण्डो तथा, नास्तिक आदि को मन से भी कोई दिन इस गुरु–गीता के कहने की इच्छा रखना नहीं ॥२४२॥

गुरवो बहवः सन्ति, शिष्यवित्तापहारकाः ।
तमेकं दुर्लभं मन्ये, शिष्यहृत्तापहारकम् ॥२४३॥

शिष्य के द्रव्य को हरण करनेवाले तो गुरु बहुत होते हैं, पर शिष्य के हृदय के ताप को हरने वाले–(वास्तविक शान्ति देने वाले) तो एकादही (दुर्लभ) होते हैं–ऐसा मैं मानता हूँ ॥२४३॥

चातुर्यवान् विवेकी च, अध्यात्मज्ञानवान् शुचिः ।
मानसं निर्मलं यस्य, गुरुत्वं तस्य शोभते ॥२४४॥

जो चतुर हों, विवेकी हों, अध्यात्मज्ञान के ज्ञानी हों, पवित्र हों–निर्मल–चित्तवाले हों उन्हीं को गुरुत्व शोभा देता है ॥२४४॥

गुरवो निर्मलाः शांताः, साधवो मितभाषिणः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः, सदाचाराजितेन्द्रियाः ॥२४५

'सद्गुरु'–निर्मल शात, दैवीसपत्तिवाले, मितभाषी कामक्रोध से अत्यन्त रहित, सदाचारी और इन्द्रिय–जीत होते हैं ॥२४५॥

कृताया गुरुभक्तेस्तु, वेदशास्त्रानुसारत ।
मुच्यते पातकाद्घोरा,-गुरुभक्तो विशेषत ॥२४६॥

जिसने वेदशास्त्रानुसार गुरुभक्ति की हो, वो वह गुरु-भक्त सब प्रकार से घोर पापों से मुक्त होता है ॥२४६॥

दुःसंगं च परित्यज्य, पापकर्म परित्यजेत् ।
चित्त-चिन्हमिदं यस्य, तस्य दीक्षा विधीयते ॥२४७॥

खोटे संग को जिन्होंने त्याग किया है, पापकर्मों को जिन्होंने छोड़ा और जिनके चित्त का चिन्तन-"यह गुरुगीता ज्ञान" है- वही "दीक्षा-योग्य हैं" ॥२४७॥

चित्तत्याग-नियुक्तश्च, क्रोध-गर्व-विवर्जित ।
द्वैत भावपरित्यागी, तस्य दीक्षा विधीयते ॥२४८॥

जिसका त्याग में चित्त नियुक्त है, जो गर्व क्रोधादि से रहित है, जो द्वैतभाव का परित्यागी है, वही दीक्षा-योग्य है ॥२४८॥

एतल्लक्षणयुक्तस्यं, सर्वभूतहिते रतम् ।
निर्मल जीवितं यस्य, तस्य दीक्षा विधीयते ॥२४९॥

जो इन लक्षणों से युक्त है प्राणीमात्र के हित में रत है, और जिसका जीवन निर्मल है, वही दीक्षा-योग्य है ॥ ४९॥

।क्रयया चान्वितं पूर्व, दीक्षाजालं निरूपितम् ।
मन्त्र-दीक्षाऽभिध साङ्गोपाङ्गं सर्वं शिवोदितम्। २५०॥

शास्त्रानुसार निष्काम-कर्म करके जो शुद्धचित्त होचुका है-उसी को 'मंत्र दीक्षा' साङ्गो पाङ्ग कल्याणप्रद' होसक्ती है॥२५०॥

क्रियायासादिरहितां, गुरु-सायुज्य दायिनीम् ॥
गुरु-दीक्षां विना को वा, गुरुत्वाचार-पालकः॥२५१

यह क्रिया गुरु-सायुज्य दायिनी है। विना गुरु-दीक्षा के गुरु के आचार को कौन पालन कर सक्ता है ? अर्थात्-कोई नहीं ॥२५१॥

शक्तो न चापि शक्तो वा, दैशकाङ्घ्रि समाश्रयेत् ।
तस्य जन्मास्ति सफलं, भोगमोक्षफलप्रदम् ॥२५२॥

शक्त हो अथवा अशक्त हो, तो भी जो श्रीसद्गुरु के चरणों का आश्रय करता है-उसका जन्म सफल है, इसमें तुम्हें किसी प्रकार का संशय नहीं करना ॥२५२॥

अत्यन्तचित्तपक्वस्य, श्रद्धाभक्तियुतस्य च ।
प्रवक्तव्यमिदं देवि, ममात्मप्रीतये सदा ॥२५३॥

हे देवी। जिसका चित्त अत्यन्त शुद्ध होगया है, जो श्रद्धा-भक्ति से युक्त है, उसको यह मेरा प्रियज्ञान-जो तुझसे कहा है-कहना ॥२५३॥

सच्चिदानन्दरूपाय, व्यापिने परमात्मने ।
नमः श्रीगुरुनाथाय, प्रकाशानन्द-मूर्तये ॥२५४॥

सच्चिदानन्दरूप, व्यापक परमात्मा, प्रकाशानन्द-मूर्ति श्री गुरुनाथ को नमस्कार हो ॥२५४॥

सत्यानन्दस्वरूपाय, बोधैकसुखकारिणे ।
नमो वेदान्तवेद्याय, गुरवे बुद्धिसाक्षिणे ॥२५५॥

सच्चिदानन्द–स्वरूप, तत्वज्ञानरूप, अद्वितीय रूप, सुखदाता वेदान्तद्वारा जानने योग्य तथा–बुद्धि के साक्षी ऐसे श्री गुरुदेव को नमस्कार हो ॥२५५॥

नमस्ते नाथ भगवन्, शिवाय गुरुरूपिणे ।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै, स्वीकृतानेकविग्रह ॥२५६॥

गुरुरूप में कल्याण कर्ता स्वामी भगवान को नमस्कार है। जो विद्या के अवतार–ज्ञान स्वरूप, भक्तों के उद्धार करने के लिये अनेक रूप धारण करते हैं ॥२५६॥

नवाय नवरूपाय, परमार्थैक–रूपिणे ।
सर्वाज्ञान–तमोभेद–भानवे चिद्घनाय ते ॥२५७॥

स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय शिवात्मने ।
परतन्त्राय भक्तानां, भव्यानां भव्यरूपिणे ॥२५८॥

विवेकिनां विवेकाय, विमर्शाय विमर्शिनाम् ।
प्रकाशिनां प्रकाशाय, ज्ञानिनां ज्ञानरूपिणे ॥२५९॥

पुरस्तात्पार्श्वयोः पृष्ठे, नमस्कुर्यामुपर्यधः ।
सदा मच्चित्तरूपेण, विधेहि भवदासनम् ॥२६०॥

परमार्थ में एक रूप होते हुए भी जो अनेक रूपों में व्यापक हैं और सर्व प्रकार के ज्ञान का प्रकट करने वाले 'सूर्य रूप' तथा "चिद्–रूपी घन' के घन वाले हैं।—

कल्याण करने मे जो दया करने के लिये पूर्ण रूप से स्वतंत्र हैं भक्तो के जो आधीन हैं, और तेजस्वियों के तेज हैं।—
विवेकियों मे विवेक रूप हैं, विमर्शियों में 'विमर्श रूप' तथा प्रकाशियों में 'प्रकाशरूप' और ज्ञानियों मे 'ज्ञान रूप' हैं—

हे गुरुदेव! आगे से, पीछे से दोनो बाजुओं से, ऊपर—नीचे सब ओर आपको नमस्कार। सदा मेरे चित्तरूप आपका आसन स्थापो, अर्थात् मेरे चित्त में आप नित्य विराजिये॥२५७॥२५८॥ ॥२५९॥२६०॥

श्रीगुरुं परमानन्दं, वन्दे आनन्दविग्रहम्।
यस्य सन्निधिमात्रेण, चिदानन्दायते मनः॥२६१॥

परम आनन्द रूप, तथा—आनन्दरूप देह वाले श्रीगुरु को मैं प्रणाम करता हूँ, कि—जिनके केवल सान्निध्यमात्र ही से मन "चैतन्य-रूप" तथा "आनन्द—रूप" हो जाता है॥२६१॥

नमोऽस्तु गुरवे तुभ्यं, सहजानन्दरूपिणे।
यस्य वागमृतं हन्ति, विषं संसारसंज्ञकम्॥२६२॥

जिनका वचनामृत ससार संज्ञावाले (जन्म-मरण परपरा रूप, ससारात्मक) विष को नाश करता है ऐसे सहजानंद—स्वरूप (स्वभावसिद्ध, आनन्दस्वरूप) आप श्री गुरुदेव को नमस्कार हो॥२६२॥

नानायुक्तोपदेशेन, तारिता शिष्य-सन्ततिः।
तत्कृपासारवेदेन, गुरुचित्पदमच्युतम्॥२६३॥

जो गुरुदेव—शिष्यगणों को नाना प्रकार से उपदेश देकर संसार

से पार करते हैं, उन कृपासार श्री गुरु को मेघ ने "आनन्द अव-अविनाशी" पद से कथन किया है ॥२६३॥

अच्युताय नमस्तस्मै, गुरवे परमात्मने ।
स्वारामोक्तपदेच्छूनां, दत्तं येनाऽच्युतंपदम् ॥२६४॥

'आत्मविभान्तिरूप' कहे-पद की इच्छा वालों न जिन्हें "अच्युत-अविनाशी" पद दिया है, ऐसे अविचल-स्वरूप, परमात्मा स्वरूप, श्री गुरु को नमस्कार है ॥२६४॥

नमोऽच्युताय गुरवेऽज्ञानध्वान्तैकभानवे ।
शिष्य-सन्मार्ग पटवे, कृपा-पीयूष सिन्धवे ॥२६५॥

अच्युत 'अविनाशी-स्वरूप' अज्ञानरूपी अंधकार के लिये-'एक सूर्यरूप', शिष्य को सन्मार्ग बताने में कुशल, 'कृपा रूप' 'अमृत के सागर' ऐसे श्री सद्गुरु को नमस्कार है । २६५॥

ओमच्युताय गुरवे, शिष्याऽसंसारहेतवे ।
भक्तकार्यैकसिंहाय, नमस्ते चित्सुखात्मने ॥२६६॥

'ॐ कार स्वरूप' अविनाशी स्वरूप शिष्यों के उद्धार कर्ता, भक्त के कार्य करने में एक- 'अद्वितीय सिंह रूप' अमोघ शक्ति वाले सच्चिदानन्द परमब्रह्मरूप' ऐसे श्री गुरु को नमस्कार है ॥ ६६॥

गुरुनाम समं दैवं, न पिता न च बांधवाः ।
गुरुनाम समः स्वामी, नदृशं परमं पदम् ॥२६७॥

गुरु के समान कोई देवता नहीं उनके समान पिता ...

बान्धव नहीं, गुरु के समान स्वामी नहीं, और उनके सरीखा दूसरा परम-पद नहीं है ।।२६७।।

एकाक्षरप्रदातारं, यो गुरुं नैव मन्यते ।
श्वानयोनिशतं गत्वा, चाण्डालेष्वभिजायते ।।२६८।।

एकाक्षर बताने वाले गुरु को जो नहीं मानता है, वह सौ मर्तबा श्वान योनि को प्राप्त होता है और फिर अन्त मे भंगी के यहाँ पैदा होता है ।।२६८।।

गुरुत्यागाद्भवेन्मृत्यु, र्मन्त्रत्यागाद्दरिद्रता ।
गुरु-मन्त्रपरित्यागी, रौरवं नरकं व्रजेत् ।।२६९।।

गुरु के त्यागने से मृत्यु और गुरु मत्र के त्यागने से दरिद्रता आती है । गुरु, मत्र (दोनों) के त्याग करने वाले को रौरव नर्क में पड़ना पड़ता है ।।२६९।।

शिवक्रोधाद्गुरुस्त्राता, गुरुक्रोधाच्छिवोनहि ।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन,गुरोराज्ञां न लङ्घयेत् ।।२७०।।

शिव के क्रोध से गुरु रक्षा करते हैं, पर-गुरु के क्रोध से शिव रक्षा नहीं कर सकते, इसलिये शिष्य को चाहिये कि-सर्व यत्नों करके गुरु को आज्ञा का उल्लघन न करे-आज्ञा का पालन करे ।।२७०।।

संसारसागर-समुद्धरणैकमन्त्रं,
ब्रह्मादिदेव-मुनि-पूजितसिद्धमन्त्रम् ।।
दारिद्र्य दुःख-भवरोगविनाशमन्त्रं ,
वन्दे महाभयहरं गुरुराजमन्त्रम् ।।२७१।।

संसार रूपी सागर से पार करने वाला एक मंत्र है, जो सिद्ध मंत्र महर्षि देवों तथा मुनियों द्वारा पूजित है, तथा जो मंत्र दरिद्रता दुःख-तथा संसार रोग को नाश करने वाला है, उस महाभय के हरण करने वाले 'गुरु-राज-मंत्र' को नमस्कार है ॥२७१॥

सप्तकोटिमहामन्त्राश्चित्तविभ्रमकारकाः ।
एक एव परो मन्त्रो,-गुरुरित्यक्षरद्वयम् ॥२७२॥

संसार में सप्त कोटि महामंत्र प्रचलित हैं, पर वे सब चित्त को भ्रम उत्पन्न करने वाले हैं। सर्व श्रेष्ठ तो यह दो अक्षर वाला 'गुरु' मंत्र ही है ॥ ७२॥

यस्य प्रसादादहमेव सर्वं,
मय्येव सर्वं परिकल्पितञ्च ।
इत्थं विजानामि सदात्मरूपं,
तस्याङ्घ्रिपद्मं प्रणतोऽस्मि नित्यम् ॥२७३॥

जिसके कृपा प्रसाद से "मैं सर्व हूँ" और "सर्व दृश्यमान मुझी में मेरी कल्पना मात्र है"—इस प्रकार जो मैंने आत्म स्वरूप जाना है, उस श्री सद्गुरुदेव के चरण कमलों में मैं नित्य नमस्कार करता हूँ ॥२७३॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य, विषयाक्रान्तचेतसः ।
ज्ञानप्रभाप्रदानेन, प्रसादं कुरु मे प्रभो ॥२७४॥

'इत्योम् तत्सत्'

हे प्रभो ! महातमरूप अन्धकार से अन्धे; तथा विषय (शब्द स्पर्श, रूप रस और गंध) से हार पाये हुए—दुःखित चित्त वाले मुझ पर— ज्ञानरूप-प्रकाश के दान द्वारा कृपा करो ॥४॥

ॐ अवधूत सदानन्द, परब्रह्मस्वरूपिणे ।
विदेहदेहरूपाय (श्री) नित्यानन्द नमोस्तु ते ॥

हे प्रणवस्वरूप श्री सद्गुरुदेव !!! आप सदा सर्वदा आनन्दित रहने वाले–'परम–अवधूत' (महायोगेश्वर) परब्रह्म स्वरूप हैं। आप' विदेही' होते हुए भी देह रूप मे भगवान् नित्यानन्द हैं–आपको हम प्रणाम करते हैं ॥ ॐ तत्सत् ॥

॥ ॐ गुरु ॐ ॥

॥ तत्सत् ॥

—:—

❀ ॐ ❀

यद्ब्रह्मेति विनिश्चितं मुनिवरैः स्वज्योतिषां कारणं,
सत्यं ज्ञानमनन्तमेवममृतं यत्सर्वविद्याफलम् ॥
साकारंसवितुर्मंहस्त्वमसि तत्तत्त्वावबोधप्रदं,
नित्यानन्द ! विभुं चराचरपतिं वन्दामहे श्रेयसे ॥

॥ अथ श्रीगुर्वष्टक स्तोत्रम् ॥

कलत्रं धनं पुत्रपौत्रादि सर्वं,
गृहं बान्धवाः सर्वमेतद्धि जातम् ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥१॥

स्त्री, धन, पुत्र–पौत्रादिसब, गृह, बंधुवर्ग [और इसके सिवाय 'शरीरं सुरूपम्'– सुन्दर–रूपवान–शरीर' आदिक समान] प्राप्त हों परन्तु–श्रीगुरु के चरण कमलों के विषैं मन को न लगा तो फिर, इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ? [यह सब किस काम के ?–अरे ! कुछ भी नहीं] ॥१॥

षडङ्गादिवेदो मुखे शास्त्रविद्या,
कवित्वादि गद्यं सुपद्यं करोति ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥२॥

छः अंगों (शिक्षा कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंदस् और ज्योतिष) सहित वेद और दूसरे शास्त्रों की विद्या कंठाग्र हो, आदि में कवित्व हो उत्तम गद्य अथवा उत्तम पद्य रचे, परन्तु–श्रीगुरु के चरण कमलों में जो मन न लगा हो, तो फिर इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ॥२॥

विदेशेषु मान्यः स्वदेशेषु धन्यः,
सदाचारनित्यः सुवृत्तिर्न चान्यः ।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्नलग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥३॥

विदेश में मान-सन्मान पाया होय, अपने देश में धन्य-समझा जाता हो, नित्य सदाचार पालन करता हो, सुवृत्ति-(शुद्ध आजीविका वाला) हो, परन्तु-श्रीगुरु के चरण कमलों में मन न लगा हो, तो फिर इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ॥३॥

क्षमामण्डले भूपभूपालवृन्दं,
सदा सेवते यस्य पादारविन्दम् ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥४॥

पृथ्वी मंडल में बड़े बड़े राजे रजवाड़ोंके समूह जिनके चरण-कमल सदा सेवन करते हों, तो भी जो मन श्रीगुरु-चरण कमल में नहीं लगा, तो फिर इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ? इनसे क्या ॥४॥

न भोगे न योगे न वा राज्यभोगे,
न कान्तासुखे नैव वित्तेषु चित्तम् ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्नलग्नं ।
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥५॥

चित्त न विषयों के उपभोग में न विषय पदार्थ की प्राप्तिरूप योग में, न राज्य के उपभोग में, न स्त्री सुख में, तथा दीन सम्पत्ति आदि किसी में लगता हो। अर्थात् भारी विरक्त होने लगा भी—जो मन श्रीगुरु के चरण कमलों में नहीं लगा, तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या ॥ ॥

यशोमे गतं दिक्षु दानप्रतापा—
ज्जगद्वस्तु सर्वं करे यत्प्रसादात्।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥६॥

दान के प्रताप करके मेरा यश दिशाओं में फैल गया है, तथा—जिसकी कृपा से जगत् की सब वस्तुएं करतल गत हैं, उस श्रीगुरु के चरण कमलों विषे मन न लगा; तो फिर इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या? इनसे क्या ॥६॥

अरण्ये निवासः स्वगेहे च कार्या,
न देहे मनो वर्तते मे त्वनार्ये।
गुरोरङ्घ्रिपद्मे मनश्चेन्न लग्नं।
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥७॥

मेरा मन जो—'अनार्य' ऐसे 'देह' के विषे (देह, तथा—कलत्र भी—स्त्री, पुत्र द्रव्यादि मे) न ठहरे तो फिर चाहे वन में जाऊं, घर—घर ही में रहूँ सदा मुक्त ही हूँ—ऐसी मान्यता है। तो भी जो श्री गुरु के चरण कमलों में मन नहीं लगा तो फिर इन से क्या? इन से क्या? इन से क्या? इन से क्या? ॥७॥

अनर्घ्याणि रत्नानि युक्तानि सम्यक्,
समालिङ्गिता कामिनी यामिनीषु ।
गुरोरंघ्रिपद्मे मनश्चेन्नलग्नं,
ततः किं ततः किं ततः किं ततः किम् ॥८॥

महा मूल्य वान् रत्न प्राप्त हों, रात्रियों मे कामिनियों से अच्छी प्रकार आलिङ्गन किया हो-अर्थात् ऐहिक सुख-वैभव संपूर्ण तया हों, परन्तु-श्रीगुरु के चरण कमलों में मन न लगा, तो फिर इन सव से क्या ? इन सव से क्या ? इन सव से क्या ? इन सव से क्या ? ॥८॥

गुरोरष्टकं यः पठेत्पुण्यदेही,
यतिर्भूपतिर्ब्रह्मचारी च गेही,
लभेद्वाञ्छितार्थं परब्रह्मसौख्यं,
गुरोरुक्तमार्गे मनोयस्य लग्नम् ॥९॥

इस गुरु अष्टक का जो पुण्यवान् मनुष्य पाठ करे, और गुरु के वताए हुए मार्ग में जिसका मन संलग्न-(लगा) हो, वह यति, भूपति, ब्रह्मचारी अथवा-गृहस्थी इच्छित अर्थ-फल, तथा-"परब्रह्म-सुख" (परमानद "नित्यानन्द") पाता है ॥९॥

ॐ

तत्सत्

इति श्रीमत्परमहस परिव्राजकाचार्य-
श्रीमच्छंकराचार्य विरचितं श्रीगुरोरष्टकं
॥ समाप्तम् ॥
ॐ गुरु ॐ

ॐ

गुरु-महिमा [पद-राग भैरवी]

गुरु की महिमा अपरंपार ।

आपै कृपा करे जब जो जन, पावै रूप अपार ॥

॥टेक॥

जैसे मृत प्राणी पुनि जग में, बे जिनके आधार ।

यह सब हम निश्चय कर जानो तुम दीनो श्री मनुष अवतार ॥१॥

जैसे मणिका बने काष्ठ के, भिन्न भिन्न आकार ।

सूत मामये सबहि फिरत हैं, तैसहि तुम विस्तार ॥२॥

कोइक जानत मर्म तुम्हारो सो जन नाहिं गंवार ।

भव सागर से वह तिर जावत आपहि सेवोजी उधार ॥३॥

पार अपार नहीं कोइ पावे अर्थ धर्म विस्तार ।

ऐसो रूप अनूपो नित्यानन्द गुरुजी मिले दिलदार ॥४॥

—o—

दोहा ।

गुरु कुम्भार शिष कुंभ है, घुन घुन काढ़त खोट ।

अन्तर हाथ सहाय दे, बाहिर मारत चोट ॥१॥

श्रीगुरु-शरण [रागपद सोहिनी]

—·०:—

श्री गुप्तानन्द गुरु आपकी, मैं शरण मे अब आ चुका ॥

॥टेक॥

अब आपकी मैं ले शरण, फिर कौन की लेऊँ शरण ।
बहुतेरा इत उत जगत में पुनि तात भटका खा चुका ॥१॥
जिस वस्तु को मैं चाहता था, आज उसको पा चुका ।
कर दरश दिल से शोक नासे, चित्त अब सुख पाचुका ॥२॥
मोपे दयालु कर दया निज अग से लिपटा लिया ॥
वो ब्रह्म आतम बोध मुझको, युक्ति से समझा चुका ॥३॥
अब नाहिं चितालेश चित्त को, चित्त निज निर्मल भया ।
यह कहत नित्यानन्द, नित्यानन्द मति रस छा चुका ॥४॥

—०—

दोहा ।

कविता सज्जन जन पढ़ें, पढ़कर करें विचार ।
रसिक विहारी रसिक में, गयो जमारो हार ॥

झूँठे धन के कारने रे भटकि भटकि के मुयो ।
साँची दौलत सतगुरुदीनी, जन्म सफल मारो हुयो ।।२।।
मैं निर्धन कंगाल को रे, प्रेम प्रीति से लियो ।
खरचा खाया वहुत लुटाया, पानी के ज्यो पियो ।।३।।
गुप्त आत्मा लाल मिला जव, सुख के साथी सोयो ।
आवन जावन खेद मिट्यो सव, जीव आनन्दित हुयो ।।४।।

—०—

ब्रह्मपद की प्राप्ति ।

मेरो रूप मैं पायो गुरुजी शरण आपकी आके ।।
।।टेक।।

लख चौरासी योनि भुगत के मनुष देह अव पाके ।
लख चौरासी सव ही छूटी श्रीगुरु श्रीमुख फाखे ।।१।।
इस संसार मे सार नहीं है पामर होय सो भटके ।
हम इसकी सव जान पोल अव विषयुत विष जो फाके ।।२।।
तीन ही लोक अरु चौदा भुवन को राज करे दे डके ।
ऐसो राज दियो सत् गुरुजी, ताहि पाय हम छाके ।।३।।
मोह ममता अरु मान बढ़ाई अंत किये निज तन के ।
नित्यानन्द ब्रह्म पद पायो श्री गुप्त गुरू पद ध्याके ।।४।।

—०—

ॐ

ॐ नमोऽस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्तये ,
सहस्रपादाक्षिशिरोरुबाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते
सहस्रकोटीयुगधारिणे नमः ॥१॥

ॐ असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे ,
सुरतरुवरशाखा लेखनी पत्रमुर्वी ॥
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं ।
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥२॥

ॐ त्वमेव माता च पिता त्वमेव ,
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव ,
त्वमेव सर्वं मम देव देव ॥३॥

ॐ कायेन वाचा मनसेन्द्रियैर्वा
बुद्ध्यात्मना वा प्रकृतिस्वभावात् ।
करोमि यद्यत्सकलं परस्मै ,
नारायणायेति समर्पयामि ॥४॥

ॐ

तत्सत्

* ॐ *

श्री प्रश्नोत्तरी
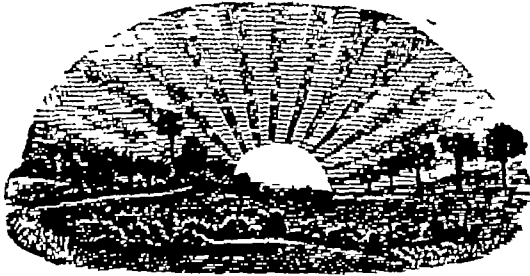
प्रकाशक—

भाईलाल भाई डी. त्रिवेदी

वकील हाईकोर्ट

कैम्बे (Cambay)

प्राप्तिस्थान—

पं० कान्तिचन्द्र श्रीनिवासजी पाठक

रतलाम ।

सन् १९३७ ई०

प्रथमवार २०००] [मूल्य ।)

॥ ॐ ॥

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
यस्तु सम्बुध्यते तत्त्वं, विरक्तो भवसागरात् ॥

—(अवधूत गीता)

❋ परिचय ❋

— o —

समय समय पर प्रेमी जिज्ञासु-भक्तजनों ने अनन्त श्री अवधूत महाप्रभु (सद्गुरुदेव श्रीनित्यानन्दजी महाराज) बापजी से जो प्रश्न किये, और उनका विनोद पूर्वक-शास्त्रीय प्रमाण-(श्लोक) देते हुवे, आपश्री (श्रीमहाप्रभु बापजी) ने जो उत्तर दिये-उन्हीं का "प्रश्नोत्तर" रूप यह संग्रह है।

यद्यपि-"प्रश्नोत्तरी" नाम से कई पुस्तकें प्रख्यात है। परन्तु-हमारे आपके हृदयों में समय २ पर उठने वाले प्रश्नों का यथार्थ 'प्रतिरूप', एवं उनका 'समाधान' पूर्वक 'आनन्द का मार्ग' दिखाने वाली-यह "प्रश्नोत्तरी" कितनी उच्च श्रेणी की है? यह इसके पाठ करने से ही स्पष्ट प्रतीत होजायेगा इसमें सन्देह नहीं। अस्तु—

—: क्षमा-याचना :—

तत्काल ही नोट कर लेने पर भी, श्री महाप्रभु के कथन का पूरा २ भाव इन सङ्कीर्ण- छोटे छोटे शीर्षकों में आ नहीं सका है, तथापि-जितना भी है, इतने से ही—

"प्रीयतां मे हरिर्गुरुः"

संग्रहकर्त्ता—

शिशु।

॰ ॐ ॰

अथ मंगल-स्तुति ।

मनोमयेन कोषेणाऽभिधायाः परमाद्भुतम् ।
विज्ञानमयकोषेण, धियायाश्च निकेतनम् ॥
षष्ठाऽऽनन्दमय कोषे, "नित्यानन्दो" विराजसे ।
सृष्टि-शोभादि-नैपुण्य, कलागेह ! नमोस्तु ते ॥

ॐ

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवोमहेश्वरः ।

गुरुः साक्षात्परब्रह्म
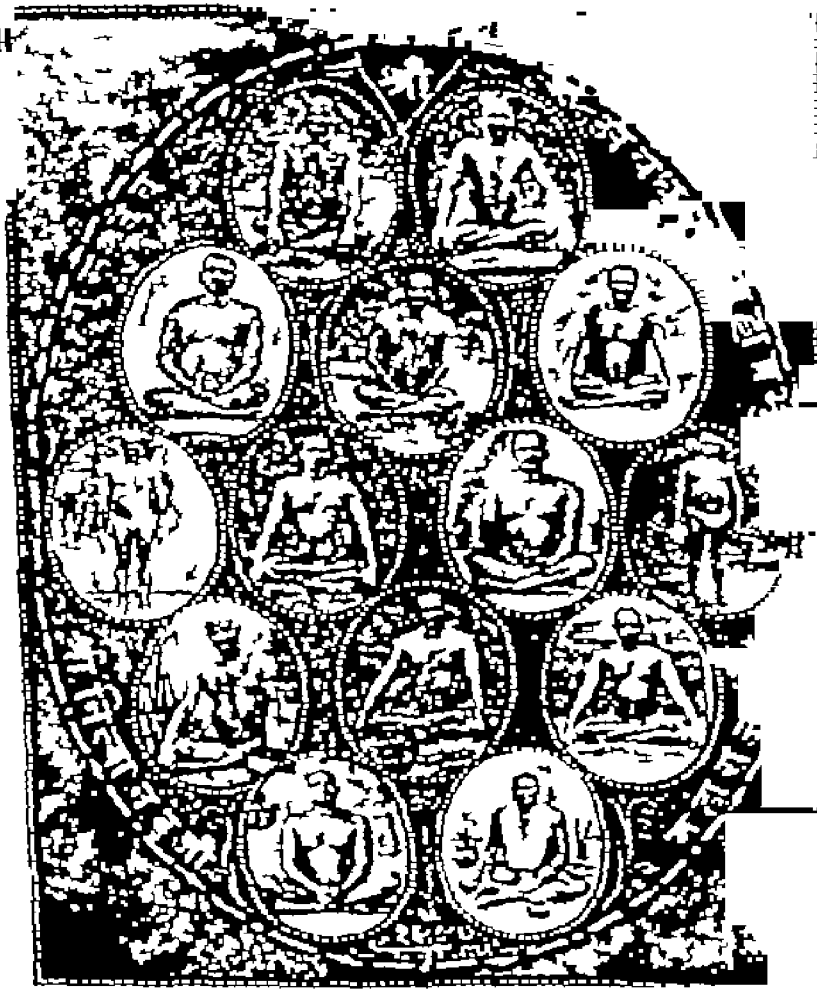
प्रश्नोत्तरी
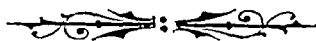
गुरु-शिष्य-संवाद

—— ० ——

(शब्द-गुरु, चित्त-चेला)

१ प्रश्नः— <u>संसार का बीज क्या है ?</u>

उत्तरः— मम योनिर्महद्ब्रह्म, तस्मिन्गर्भं दधाम्यहम् ।
संभवः सर्व भूतानां, ततो भवति भारत ॥

अर्थः—मेरी महत् ब्रह्मरूप 'प्रकृति' अर्थात्—त्रिगुणमयी माया, सम्पूर्ण भूतों की योनि है, अर्थात्—गर्भाधान का स्थान है, और मैं उस योनि में 'चेतनरूप बीज' को स्थापन करता हूँ। उस जड-चेतन के सयोग से सब भूतों की उत्पत्ति होती है।

—(गीता १४–३)

—— ० ——

२ प्रश्न—संसार का अधिष्ठान कौन है ?

उत्तर—स्वप्रकाशमधिष्ठानं, स्वयंभूय सदात्मना ।
ब्रह्माण्डमपि पिण्डाण्डं, त्यज्यतां मलभाण्डवत् ॥

अर्थ—स्वयं प्रकाशरूप जो जगत् का अधिष्ठान परब्रह्म है, तद्रूप स्वयं होकर, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को मल से भरे भांडे की तरह त्याग करें ।

—(योगवाशिष्ठ)

—०—

३ प्रश्न— संसार का अधिष्ठाता कौन है ?

उत्तर— मयाध्यक्षेण प्रकृतिः, सूयते सचराचरम् ।
हेतुनानेन कौन्तेय, जगद्विपरिवर्तते ॥

अर्थ—मुझ अधिष्ठाता के सकाश से यह मेरी माया, चराचर सहित सब जगत् को रचती है । और ऊपर कहे हुए हेतु से ही, यह संसार आवागमन रूप चक्र में घूमता है ।

—(गीता ९-१०)

—:०:—

४ प्रश्न— संसार में आकर क्या करना चाहिये ?

उत्तर— महता पुण्यपुञ्जेन, क्रीतेयं कायनौस्त्वया ।
पारं दुःखोदधेर्गन्तुं, तर यावन्न भिद्यते ॥

अर्थ—हे जीव ! यह मानव देह रूपी नौका पैसे धेले (साधारण) पुण्यरूपी मूल्य से नहीं मिली है, अपितु—महान्

पुण्यरूपी मूल्य देने के पश्चात् ही प्राप्त हुई है। यह नौका टूट जाय, उसके पहिले, इस ससार-सागर के उस पार जाने का खंत (लगन) से प्रयत्न कर। तथाः—

यथा विशुद्ध आदर्शे, विस्पष्टं दृश्यते मुखम्।
अधिकारिशरीरेऽस्मिन्, बुद्धावात्मा तथैव हि॥

अर्थः—शुद्ध, साफ दर्पण में जैसे मुख स्पष्ट दिखाई देता है, वैसे ही अधिकारी मुमुक्षु के शरीर मे बुद्धि के विषय आत्मा दिखाई देता है।

भावार्थः—इस ससार सागर से तरने के लिये आत्म दर्शन करना चाहिये। —(आत्मपुराण)

—— ० ——

५ प्रश्नः— संसार सार है, या असार?

उत्तरः— अनित्यं सर्वमेवेदं, तापत्रितयदूषितम्।
असारं निन्दितं हेयमिति निश्चित्य शाम्यति॥

अर्थः—यह सम्पूर्ण जगत् अनित्य है, चैतन्य स्वरूप आत्मा की सत्ता से ही स्फुरित होता है — वास्तव में कल्पना मात्र है और आध्यात्मिक, आधिदैविक एव आधिभौतिक इन तीनों दुःखों से दूषित हो रहा है, अर्थात्— तुच्छ है, झूठा है, तथा असार, निन्दित और त्याज्य है, ऐसा निश्चय करके ज्ञानी पुरुष उदासीनता को प्राप्त होता है। — (अष्टा० १–३)

—— ० ——

६ प्रश्न— जीव ब्रह्म एक है, या – क्या ?

उत्तर— तार्किकाणांच जीवेशौ, वाच्यावेतौ विदुर्बुधा ।
सांख्ययोगाभ्यां योगाभ्यां वेदान्तैरेकता तयोः ॥

अर्थः—तार्किकों के 'जीव' और 'ईश्वर' यह 'वाच्य' हैं-ऐसा ज्ञानीजन जानते हैं सांख्य और योग से यह दो 'लक्ष्य' हैं, और उपनिषदों से इन दोनों की 'एकता' है तथाः—

"जीवो ब्रह्मैव नापरः"

भावार्थः—जीव और ब्रह्म एक ही है, दो नहीं । —(श्रुतिः)

——०——

७ प्रश्न— मनुष्य मात्र का कर्त्तव्य क्या है ?

उत्तर— स्वाधीने निकटस्थितेऽपि विमले
ज्ञानाख्ये मानसे ।
विख्याते मुनिसेवितेऽपि कुधियो-
न स्नान्ति तीर्थे द्विजाः ॥
यत्तत्कष्टमहो विवेकरहिता-
स्तीर्थार्थिनोदुःखिताः ।
यमवश्याप्यगम्भीरमन्वि भक्तयो,
मज्जंति दुःखाकरे ॥
—(भर्तृहरि)

अर्थः—स्व स्वरूप की प्राप्ति करना मनुष्यमात्र का कर्त्तव्य है । यह प्राप्ति "ज्ञान" से होती है । ज्ञान की प्राप्ति "सम्य

समागम" के सिवा नहीं। सन्त-समागमही महान् "तीर्थ" है। इस तीर्थ मे महा विख्यात वसिष्ठ और श्री रामचन्द्र जी ने ज्ञानामृत से भरपूर "योग वासिष्ठरूपी मानसरोवर" में बैठ कर ज्ञानामृत का पान किया। याज्ञवल्क्य और गार्गी ने ज्ञानामृत से भरपूर "उपनिषद् रूपी मानसरोवर" में बैठ कर, ज्ञानामृत का पान किया। महादेव और पार्वती जी ने, श्रीकृष्ण और अर्जुन ने, श्रीकृष्ण और उद्धव ने, वेदव्यास और शुकदेव जी ने, शुकदेव जी और जनक ने, जनक और याज्ञवल्क्य ने, जनक और अष्टावक्र ने, श्री शुकदेव जी और परीक्षित ने, शौनक और सूतपुराणी ने, श्री शंकराचार्य जी और पद्मनाभादि शिष्यों ने, विद्यारण्य स्वामी और मुमुक्षुओं ने, श्रीमद्वल्लभाचार्य जी और कृष्णदास जी आदि शिष्यों ने, श्री रामानुजस्वामी, अद्वैतस्वामी और ऐसे असंख्य आचार्य महान् महात्मा, मुमुक्षु-भक्तों ने "सत-समागम" रूपी तीर्थ मे स्नान कर, (वास्तविक कर्तव्य कर) "मोक्ष लाभ" किया और दिया, वैसा ही करना-कराना इष्ट-कर्तव्य है।

—— ० ——

८ प्रश्नः— संसार में दान कौन सा देना योग्य है ?

उत्तरः— सर्वेषामेव दानानां, ब्रह्मदानं विशिष्यते।
वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषाम् ॥

अर्थः—जल, अन्न, गाय, भूमि, वास, तिल, सुवर्ण और घी इन सब दानों से वेद-विद्या—"ब्रह्मविद्या का दान" श्रेष्ठ है।

—— ० ——

९ प्रश्न— संसार में आकर कौन वस्तु की प्राप्ति करना योग्य है ?

उत्तर— आदौ मध्ये तथान्ते, जनिमृतिफलदं,
कर्ममूलं विशालं,
ज्ञात्वा संसारवृक्षं भ्रममदमुदिता-
शोकतानेकपर्णम् ॥
कामक्रोधादिशाखं, सुतपशुवनिता
कन्यकापक्षिसंघं
छित्त्वाऽसङ्गासिनैनं, पटुमतिरभितः
श्चिन्तयेद्वासुदेवम् ॥ (वैराग्यकेसरी)

अर्थः—आदि में मध्य में और अन्त में सत्यरूप होते हुए, जन्ममरण रूप फल को देने वाले कर्मरूप मूल वाले विस्तार

शान्त्यादिः परिचीयतां दृढ़तरं
कर्माशु सन्त्यज्यताम् ॥
सद्विद्वानुपसर्पतां प्रतिदिनं
तत्पादुके सेव्यतां ।
ब्रह्मैकाक्षरमर्थ्यतां श्रुतिशिरो-
वाक्यं समाकर्ण्यताम् ॥१॥

अर्थः—'सत्पुरुषों का संग' करना, भगवान् में 'दृढ़ भक्ति' धारण करना, 'शान्ति' आदि गुणों को 'धारण' करना, अत्यन्त दृढ़ 'कर्मों' का जल्दी 'त्याग' करना, उत्तम 'विद्वान्'-(श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ) की 'शरण' मे जाना, उनकी 'पादुका' का नित्य 'सेवन' करना, एक अक्षर रूप 'ॐकार' के ज्ञान की याचना करना, तथा श्रुति मुख-"वेदान्त" वाक्यों का भली प्रकार 'श्रवण' करना। —(श्रीशङ्कराचार्यः)

— o —

११ प्रश्नः— ब्राह्मण किसको कहते है ?

उत्तरः— शमोदमस्तपः शौचं,क्षान्तिरार्जव मेवच ।
ज्ञानं विज्ञान मास्तिक्यं, ब्रह्मकर्म स्वभाजम् ॥

अर्थः—अन्तः करण का 'निग्रह', इन्द्रियों का 'दमन' बाहर भीतर की 'शुद्धि', धर्म के लिए 'कष्ट सहन' करना और 'क्षमा' भाव, एवं-मन, इन्द्रियों और शरीर की 'सरलता' 'आस्तिक बुद्धि',शास्त्र विषयक 'ज्ञान' और "परमात्मत्तत्व का अनुभव" ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म है।

— o —

१२ प्रश्नः— क्षत्रिय किस को कहते हैं ?

उत्तरः— शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं, युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च, क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

अर्थः—जिसमें शूरवीरता तेज धैर्य चतुरता और युद्ध में से न भागने का स्वभाव, एवं दान और स्वामी भाव (अर्थात् निःस्वार्थ भाव से सब का हित सोच कर, शास्त्राज्ञानुसार शासन द्वारा प्रेम के सहित, पुत्र के तुल्य-प्रजा को पालन करने का भाव) स्वभाव ही से हो, वह क्षत्रिय कहाता है।

—o—

१३ प्रश्नः— वैश्य किसको कहते हैं ?

उत्तरः— कृषिगोरक्ष्यवाणिज्य, वैश्यकर्म स्वभावजम्।

अर्थः—खेती गोपालन, और क्रय विक्रयरूप सत्य व्यवहार, ये स्वभाव ही से जिसमें होते हैं वह वैश्य है।

—o—

१४ प्रश्नः— शूद्र किसको कहते हैं ?

उत्तरः— परिचर्यात्मकं कर्म, शूद्रस्यापि स्वभावजम्।

अर्थः—सब वर्णों की सेवा करना शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

—o—

१५ प्रश्नः— पुरुष किसको कहते हैं ?

उत्तरः—पुमान्पुंसोऽधिके शुक्रे, स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः।
समेपुमान्पुंस्त्रियौ वा, क्षीणेऽल्पे च विपर्ययः ॥
(मनुः ३-४९)

अर्थः—ऋतुदान में पुरुष का वीर्य अधिक हो, तो पुत्र और स्त्री का आर्तव (रज) अधिक होय, तो कन्या होती है, और जो स्त्री पुरुष के रज-वीर्य समान हों तो नपुंसक पुत्र अथवा बध्या दोष वाली कन्या उत्पन्न होती है। जो पुरुष अल्प वा क्षीण-वीर्य हो, अथवा—स्त्री क्षीण, वा अशुद्ध आर्तव वाली हो, तो गर्भ रहता नहीं।

—— o ——

१६ प्रश्नः— लडका (पुत्र) किसको कहते है ?

उत्तरः— एकेनापि सुवृक्षेण, पुष्पितेन सुगंधिना।
वासितं तद्वनं सर्वं, सुपुत्रेण कुलं यथा ॥
(चाणक्यः)

अर्थः—जैसे-एक सुगन्धि वाला, पुष्प वाला वृक्ष सारे वन को सुगधमय बना देता है, वैसे ही-एक ही "सुपुत्र" सारे कुल को शोभायमान करता है।

पुन्नाम्नो नरकाद्यस्तु, त्रायतः पुत्र उच्यते।

भावार्थः—'पु' नाम नरक का है, उस (नरक) से जो 'त्र' बचाता है अतः उसको 'पुत्र' कहते है।

—— o ——

१७ प्रश्न—परमहंस किसे कहते हैं और कर्क प्रकार है ?

उत्तर— भेदः परमहंसस्य, मुख्यथा स द्विकोऽपि न ।
अहमेवाऽस्मि ब्रह्मेति, भावस्याऽनुभवं विना ॥
कश्चित्परमहंसस्य, पदवीं लभते न हि ।
द्वैतभावं दशायामाप्यस्यां नैवाभिभावव ।
सच्चिदानन्दरूपायाऽप्यद्वैतस्थितिरुत्तमा ।
अस्यामेवदशायांसात्मन्विमायामवर्तते ॥
तदानीं जायते चाऽऽत्मारामः सन्यासिसत्तम ।
आत्मारामस्यऽसम्भवासामपि द्वैविध्यमुच्यताम् ॥
परमहंसस्य प्रारब्धकर्म वैभिन्यदर्शनात् ।
ईशकोटिर्ब्रह्मकोटिरिति द्वे नामनी श्रुते ॥
परहंसो ब्रह्मकोटेर्मुक्तस्तथो भवस्तथा ।
जन्मतो बालपेतम, न जगचेन क्षामवत् ॥
परहंसस्त्वीशकोटेः, पराकाष्ठां गतोऽनिशम् ।
निष्कामस्य मतस्याम, जगज्जन्मादि शक्तिमत् ॥
जगदीशमतिनिधिर्भूत्वा तत्कर्मसंरत ।
जगद्धितार्थ विमर्षे । एवं विद्धीशरूपिणम् ॥
परहंसस्त्वीशकोटे ब्रह्मरूपपरोऽपि सन् ।
दर्शनशक्तियुक्तम, भवतीति विनिश्चयः ॥
ज्ञानदाता ब्रह्माता, स एव भगवदेष्यतः ॥

अर्थ.—परमहंस का ब्रह्म के साथ कोई भेद नहीं है। 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं ब्रह्म हूं इस भाव के अनुभव विना कोई परमहंस पदवी को नहीं प्राप्त कर सकता। इस दशा में द्वैत भाव का भान ही नहीं रहता। सच्चिदानंदरूप उत्तम अद्वैत स्थिति इसी अन्तिम दशा मे प्राप्त होती है। और तभी वह सन्यासी "आत्माराम" हो जाता है। आत्माराम की प्राप्ति के दो प्रकार हैं:—

प्रारब्ध कर्म के वैचित्र्य से "ईशकोटि" और "ब्रह्मकोटि" इस प्रकार से दो प्रकार की परमहंस दशा होती है। ब्रह्मकोटि का परमहंस मूक, स्तब्ध, जड, उन्मत्त और वालकों की तरह चेष्टा करने वाला होता है। उससे जगत् को कोई लाभ नहीं पहुँचता।

ईशकोटि की पराकाष्ठा तक पहुंचा हुआ परमहंस दिन रात जगज्जन्मादि शक्तिशाली भगवान् का प्रतिनिधि होकर निष्काम-व्रत ग्रहण कर भगवान् के कार्यों में लगा रहता है। ऐसे ईशस्वरूप परमहंस की उत्पत्ति जगत् के कल्याणार्थ ही हुआ करती है, ऐसा समझना चाहिये। ईश कोटि का परमहंस ब्रह्मस्वरूप और देवता तथा-ऋषियों की शक्ति से युक्त होता है, इसमें सन्देह नहीं। वही संसार का ज्ञानदाता और भयत्राता है।

—— o ——

१८ प्रश्नः—सन्यासी किसको कहते हैं और वे कितने प्रकार के होते हैं?

उत्तरः-(१) वनेषु तु विहृत्यैवं, तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषोभागे, त्यक्त्वा संगान् परिव्रजेत्॥

अध्यात्मरतिरासीनो, निरपेक्षोनिरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन, सुखार्थी विचरेदिह ॥२॥

अर्थः—वन में आयुष्य का तीसरा भाग व्यतीत कर आयुष्य के चौथे भाग में सब संग का त्याग कर संन्यासी होवे ॥१॥ ब्रह्म-ध्यान में ही प्रीति रखे, कोई की अपेक्षा (जरूरत) न रखे विषयों की अभिलाषा रहित रह, और स्वयं की सहायता द्वारा सुख की इच्छा कर संसार में फिरे ॥२॥

(२) कुटीचकस्तु प्रथमो द्वितीयस्तु बहूदकः ।
हंसः परमहंसश्च, द्वाविमावन्तिमौ स्मृतौ ॥१॥
सन्न्यासदीक्षामादाय, कामिन्यादीन् विहाय च ।
कुटीचकः स सन्न्यासी, नगरप्रान्तवसीयति ॥२॥
कश्चिन्मनोरमे स्थाने, कुटीं निर्म्माय सम्वसेत् ।
योगोपनिषदध्यायैः, कुर्य्याद्ध्यात्मिकोन्नतिम् ॥३॥
बहूदकस्तु सन्न्यासी, न वसेदधिकं क्वचित् ।
दिनत्रय प्रतिस्थान, स्थित्वाऽन्यत्र सुखं व्रजेत् ॥४॥
तीर्थादिकं परिभ्रम्य, यथावद् साधनादिभिः ।
आत्मोपलब्धौ सततं, यतेताऽयं महात्मनाः ॥
सन्न्यासी ज्ञानवान् हंसो विधाय भ्रमणं मुदा ।
संसारे ज्ञानविस्तारं, कुर्य्यादिति प्रयत्नतः ॥६॥
पूज्यः परमहंसः स, सन्न्यासी विगताम्बरः ।
कुर्म्मभकुर्म्मं वा किञ्चिदसौ नारायणः स्मृतः ॥७॥

अर्थः—सन्यासाश्रम के चार भेद हैं:—

(१) कुटीचक्र (२) बहूदक (३) हंस और (४) परमहंस।

(१) सन्न्यास दीक्षा ग्रहण कर स्त्री पुत्रों को छोड़ नगर प्रान्त की सीमा पर कहीं मनोहर स्थान में कुटी बनाकर जो रहताहै, उसे कुटीचक कहतेहैं। उसे योगाभ्यास और उपनिषदादि अध्ययन द्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये।

(२) बहूदक—सन्यासी को कहीं अधिक नहीं ठहरना चाहिये, हर एक स्थान मे तीन दिन रह कर अन्य स्थान में आनन्द के साथ चले जाना चाहिये, इस उदार चेता को तीर्थादि मे परिभ्रमण कर यथावत् साधनादि आत्मा की उपलब्धि के लिये निरन्तर चेष्टा करना चोहिये।

(३) ज्ञानीहंस—सन्यासी को प्रसन्नता के साथ भ्रमण कर बडे प्रयत्न से संसार मे ज्ञान का विस्तार करना चाहिये।

(४) परमहंस—जिसके सब प्रकार के ताप छूट गये हैं, ऐसा परमहंस सन्यासी कुछ करे या न करे, वह साक्षात् नारायण-स्वरूप होने के कारण पूज्य कहा गया है।

—— ० ——

१६ प्रश्नः— <u>अवधूत किसे कहते हैं ?</u>

उत्तर — आशापाश विनिर्मुक्त, आदिमध्यान्तनिर्मलः।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम् ॥१॥
वासना वर्जिता येन, वक्तव्यश्च निरामयम्।
वर्तमानेषु वर्तेत, वकारं तस्य लक्षणम् ॥२॥
धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तोनिरामयः।
धारणाध्याननिर्मुक्तो, धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥३॥

अध्यात्मरतिरासीनो, निरपेक्षोनिरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन, सुखार्थी विचरदिह ॥२॥

अर्थः—वन में आयुष्य का तीसरा भाग व्यतीत कर आयुष्य के चौथे भाग में सब संग का त्याग कर संन्यासी होवे ॥१॥ ब्रह्म-ध्यान में ही प्रीति रखे, कोई की अपेक्षा (अरूरत) न रखे विषयों की अभिलाषा रहित रहे और स्वयं की सहायता द्वारा सुख की इच्छा कर संसार में फिरे ॥२॥

(२) कुटीचकस्तु प्रथमो द्वितीयस्तु बहूदकः ।
हंसः परमहंसश्च, ज्ञाविमायन्विमी स्मृतौ ॥१॥
सन्न्यासदीक्षामादाय, कामिन्यादीन् विहाय च ।
कुटीचक' स सन्न्यासी, नगरग्रान्तसीमनि ॥२॥
कश्चिन्मनोरमे स्थाने, कुटीं निर्म्माय सम्वसत् ।
योगोपनिषदध्यायैः, कुर्य्यादाध्यात्मिकोन्नतिम् ॥३॥
बहूदकस्तु सन्न्यासी, न वसेदपिक कश्चित् ।
दिनत्रय मतिस्थान, स्थित्वाऽन्यत्र सुख व्रजेत् ॥४॥
तीर्थादिकं परिभ्रम्य, यथावत् साधनादिभिः ।
आत्मोपलब्धौ सतत, यतेताऽयं महामनाः ॥
सन्न्यासी ज्ञानवान् हंसो विधाय श्रमथा मुदा ।
संसारे ज्ञानविस्तार, कुर्य्यादेव प्रयत्नतः ॥६॥
पूज्यः परमहंसः स, सन्न्यासी विगतज्वरः ।
कुर्य्वन्नकुर्य्वन् वा किञ्चिदसौ नारायणः स्मृतः ॥७॥

अर्थः—संन्यासाश्रम के चार भेद हैं:—

(१) कुटीचक्र (२) बहूदक (३) हंस और (४) परमहंस।

(१) सन्यास दीक्षा ग्रहण कर स्त्री पुत्रों को छोड नगर प्रान्त की सीमा पर कहीं मनोहर स्थान में कुटी बनाकर जो रहताहै, उसे कुटीचक कहतेहैं। उसे योगाभ्यास और उपनिषदादि अध्ययन द्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये।

(२) बहूदक—सन्यासी को कहीं अधिक नहीं ठहरना चाहिये, हर एक स्थान मे तीन दिन रह कर अन्य स्थान में आनन्द के साथ चले जाना चाहिये, इस उदार चेता को तीर्थादि मे परिभ्रमण कर यथावत् साधनादि आत्मा की उपलब्धि के लिये निरन्तर चेष्टा करना चाहिये।

(३) ज्ञानीहंस—सन्यासी को प्रसन्नता के साथ भ्रमण कर बड़े प्रयत्न से संसार में ज्ञान का विस्तार करना चाहिये।

(४) परमहंस—जिसके सब प्रकार के ताप छूट गये हैं, ऐसा परमहंस सन्यासी कुछ करे या न करे, वह साक्षात् नारायण-स्वरूप होने के कारण पूज्य कहा गया है।

—— o ——

१९ प्रश्नः—अवधूत किसे कहते हैं?

उत्तर — आशापाश विनिर्मुक्त, आदिमध्यान्तनिर्मलः।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम् ॥१॥
वासना वर्जिता येन, वक्तव्यश्च निरामयम्।
वर्तमानेषु वर्तेत, वकारं तस्य लक्षणम् ॥२॥
धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तोनिरामयः।
धारणाध्याननिर्मुक्तो, धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥३॥

अध्यात्मरतिरासीनो, निरपेक्षोनिरामिषः ।
आत्मनैव सहायेन, सुखार्थी विचरेदिह ॥२॥

अर्थः—वन में आयुष्य का तीसरा भाग व्यतीत कर आयुष्य के चौथे भाग में सर्व संग का त्याग कर संन्यासी होवे ॥१॥ ब्रह्म ध्यान में ही प्रीति रखे, कोई की अपेक्षा (जरूरत) न रखे विषयों की अभिलाषा रहित रहे और स्वय की सहायता द्वारा सुख की इच्छा कर संसार में फिरे ॥२॥

(२) कुटीचकस्तु प्रथमो द्वितीयस्तु बहूदकः ।
हंस' परमहंसश्च, द्वाविमावन्तिमौ स्मृतौ ॥१॥
सन्न्यासदीक्षामादाय, कामिन्यादीन् विहाय च ।
कुटीचक' स सन्न्यासी, नगरप्रान्तसीमनि ॥२॥
कश्चिन्मनोरमे स्थाने, कुटीं निर्माय सवसेत् ।
योगोपनिषदध्यायैः, कुर्यादाध्यात्मिकोन्नतिम् ॥३॥
बहूदकस्तु सन्न्यासी, न वसेदधिक क्वचित् ।
दिनत्रय प्रतिस्थान, स्थित्वाऽन्यत्र सुख व्रजेत् ॥४॥
तीर्थादिकं परिभ्रम्य, यथावत् साधनादिभिः ।
आत्मोपलब्धी सततं, यतेताऽयं महामनाः ॥
सन्न्यासी ज्ञानवान् हंसो विधाय भ्रमणं मुदा ।
संसारे ज्ञानविस्तार, कुर्यादेष प्रयत्नतः ॥६॥
पूज्यः परमहंसः स, सन्न्यासी विगतज्वरः ।
कुर्म्मन्नकुर्म्मन् वा किञ्चिदसौ नारायणः स्मृतः ॥७॥

अर्थः—संन्यासाश्रम के चार भेद हैः—

(१) कुटीचक्र (२) बहूदक (३) हंस और (४) परमहंस।

(१) सन्न्यास दीक्षा ग्रहण कर स्त्री पुत्रों को छोड नगर प्रान्त की सीमा पर कहीं मनोहर स्थान में कुटी बनाकर जो रहताहै, उसे कुटीचक कहतेहैं। उसे योगाभ्यास और उपनिषदादि अध्ययन द्वारा अपनी आध्यात्मिक उन्नति करनी चाहिये।

(२) बहूदक—सन्न्यासी को कहीं अधिक नहीं ठहरना चाहिये, हर एक स्थान मे तीन दिन रह कर अन्य स्थान मे आनन्द के साथ चले जाना चाहिये, इस उदार चेता को तीर्थादि मे परिभ्रमण कर यथावत् साधनादि आत्मा की उपलब्धि के लिये निरन्तर चेष्टा करना चाहिये।

(३) ज्ञानीहंस—सन्न्यासी को प्रसन्नता के साथ भ्रमण कर बडे प्रयत्न से संसार में ज्ञान का विस्तार करना चाहिये।

(४) परमहंस—जिसके सब प्रकार के ताप छूट गये हैं, ऐसा परमहंस सन्न्यासी कुछ करे या न करे, वह साक्षात् नारायण-स्वरूप होने के कारण पूज्य कहा गया है।

—— ० ——

१६ प्रश्नः—अवधूत किसे कहते हैं?

उत्तर— आशापाश विनिर्मुक्त, आदिमध्यान्तनिर्मलः।
आनन्दे वर्तते नित्यमकारं तस्य लक्षणम् ॥१॥
वासना वर्जिता येन, वक्तव्यश्च निरामयम्।
वर्तमानेषु वर्तेत, वकारं तस्य लक्षणम् ॥२॥
धूलिधूसरगात्राणि, धूतचित्तोनिरामयः।
धारणाध्याननिर्मुक्तो, धूकारस्तस्य लक्षणम् ॥३॥

तत्त्वचिंता धृता येन, चिन्ताचेष्टाविवर्जितः ।
तमोऽहंकारनिर्मुक्तस्तकारस्तस्य लक्षणम् ॥४॥

अर्थ—मायारूपी पाश से जो कि—रहित है, आदि मध्य और अन्त तीनों कालों में जो कि—निर्मल है, तथा—महानन्द में ही नित्य वर्तता है, उसका 'अ' कार लक्षण है ॥१॥

जिस पुरुष ने वासना का त्याग कर दिया है तथा वक्तव्य जिसका रोग रहित है और जो वर्तमान में ही वर्तता है, उसका लक्षण 'व' कार है ॥२॥

धूलि करके धूसर हैं अङ्ग जिसके, धोया गया है पापों से चित्त जिसका रोग से रहित जो धारणा और ध्यान से मुक्त है उसका लक्षण 'धू' कार है ॥३॥

जिसने आत्मतत्त्व के चिन्तन को ही धारण किया है संसार की चिंता और चेष्टा से जो कि—रहित है, तथा—धारणा और अहंकार से जो कि—रहित है, उसके 'त' कार का यह अर्थ है ॥४॥ (अवधूत गीता)

—— o ——

२० प्रश्न—ब्रह्मचारी किसको कहते हैं?

उत्तर—१ "ब्रह्म(वेद)-वेदविद्यापि, चर्यते तद्ब्रह्मचर्यम्" ॥

भावार्थ—ब्रह्म, अर्थात्—वेद विद्या प्राप्त करने के लिये जो 'व्रत' आचरण करने में आते हैं, वह ब्रह्मचर्य कहाता है ॥

—(श्रुति)

(२) कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा ।
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ॥

—(योगी याज्ञवल्क्यः)

भावार्थः—सर्व कार्यों में, सर्व अवस्थाओं में नित्य, निरन्तर, सब जगह 'मैथुन' का त्याग करने वाले को ब्रह्मचारी कहते हैं।

(३) स्मरणं कीर्तनं केलिः, प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्।
संकल्पोऽध्यवसायश्च, क्रियानिष्पत्तिश्चच ॥
एतन्मैथुनमष्टाङ्गम्प्रवदन्ति मनीषिणः ॥

—(दक्ष स्मृतिः)

भावार्थः—(१) विषय का (स्त्री का) स्मरण करना, (२) स्त्री की प्रशंसा करना, (३) उसके साथ रमत गमत करना, (४) विषय की दृष्टि से स्त्री के प्रति देखना, (५) एकान्त में-बातें करना, (६) मन में विषय के संकल्प करना, ७) स्त्री प्राप्ति के लिये-उत्साहित होना, (८) और स्त्री समागम करना। यह आठ प्रकार का मैथुन कहाता है, जो इनसे रहित है-वह ब्रह्मचारी है।

—— o ——

२१ प्रश्नः—गृहस्थ किस को कहते हैं ?

उत्तरः— सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः,
कान्ता मधुरभाषिणी,
सन्मित्रं सुधनं स्वयोषितिरति-
श्चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं प्रभुकीर्तनं प्रतिदिनं,
मिष्टान्नपानंगृहे,

साधो संगमुपासते हि सततं,

धन्योगृहस्थाश्रम ॥१॥

भावार्थ—जिस घर में सदा आनन्द होता हो, बुद्धि शाली पुत्र हों स्त्री मीठा बोलने वाली हो मित्र लोग सदाचारी हों, पति-पत्नी में परस्पर प्रेम हो, नौकर चाकर आज्ञा पालक हों, तथा जिस घर में हमेशा अतिथि का सत्कार, प्रभु की भक्ति, और मीठा मीठा भोजन होता हो, एवं बारम्बार साधु पुरुषों का "सत्समागम" होता हो ऐसा "गृहस्थाश्रम" को धन्य है।

यत्रनास्ति दधिमन्थनघोषो, यत्र नो लघुलघूनि शिशूनि।
यत्रनास्ति गुरुगौरवपूजा,-तानि किं बत! गृहाणि वनानि॥

भावार्थ—जहां-नहीं बिलोवने की ध्वनि होती न हो जहां-छोटे छोटे बालक न हों और जहां-गुरु महिमा का पूजन न होता हो, क्या वह भग, 'घर कहाता है? ऐसे घर को तो "वन' सरीखा समझना। —(सुभाषितम्)

———

२२ प्रश्न—वानप्रस्थ किस को कहते हैं?

उत्तर— गृहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मन।
अपत्यस्यैवचापत्यं, तदारण्यं समाश्रयेत् ॥१॥
स्वाध्याये नित्ययुक्तःस्यात्, दान्तोमित्र समाहित
दाता नित्यमनादाता, सर्वभूतानुकम्पकः ॥२॥

भावार्थ गृहस्थाश्रमी मनुष्य जब अपने बाल सफेद हुए देखे, तथा-अपने पुत्र के यहां भी सन्तानोत्पत्ति हुए देख तब-

उसे वन का आश्रय लेना– अर्थात्—गाम बाहर निवास करना ॥१॥ वहां एकान्त में स्वाध्याय मे लगे रहना, इन्द्रियों का दमन करना, सब के साथ मित्रभाव रखना, और स्वाधीन मन रख दाता बनना, पर किसी का दान लेना नहीं, तथा—सब प्राणियों पर दया रखना, इत्यादि नियमों का पालक वाणप्रस्थ है ॥२॥

—o—

२३ प्रश्नः— गृहस्थ का धर्म क्या है ?

उत्तर —१ देय मार्तस्य शयनं, स्थितश्रान्तस्य चासनम् ।
तृषितस्य च पानीयं, क्षुधितस्य च भोजनम् ॥

भावार्थः—गृहस्थ को चाहिये कि–पीडित मनुष्य को 'सोने का', थके हुये को 'आसन', प्यासे को पानी और भूखे को 'भोजन' देवे ।

२ अराव्यप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां, नोपसंहरते तरुः ॥

भावार्थः—अपने को काटने को आने वाले की ऊपर से वृक्ष अपनी छाया को पीछी नहीं खींच लेता, वैसे ही–शत्रु भी अतिथि होकर घर आवे, तो उसका भी भली प्रकार आतिथ्य सत्कार करना चाहिये ।

—o—

२४ प्रश्नः— पाप का पिता कौन है ?

उत्तर — काम एष क्रोध एष, रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनोमहापाप्मा, विद्धयेनमिह वैरिणम् ॥

भावार्थ—रजोगुण से उत्पन्न हुआ यह काम ही क्रोध है, यह ही महा अशन, अर्थात्—अग्नि के सदृश भोगों से न तृप्त होने वाला और बड़ा भारी पापी—पाप का पिता है। इस विषय में इसको ही तू वैरी जान। —(गीता)

—— ०.——

२५ प्रश्नः—धर्म की उत्पत्ति किस से होती है?

उत्तर— "सत्यादुत्पद्यते धर्मः"

भावार्थ—"सत्य भाषण से धर्म की उत्पत्ति होती है"।

'उपजे धर्म वाक्य सत करि भवि'

——०.——

२६ प्रश्नः—धर्म की स्थिति किस से होती है?

उत्तर— 'क्षमया तिष्ठते धर्मः'।

अर्थात्—'क्षमा' से धर्म की स्थिति होती है।

'इस्थिति धर्म क्षमा के संगा'

——०——

२७ प्रश्नः—धर्म की वृद्धि किससे होती है?

उत्तर— 'दयादानाद्धि वर्द्धते।'

अर्थात्—दया, दान से धर्म की वृद्धि होती है।

'दया दान करि धर्म बढ़े निति'

——०.——

२८ प्रश्नः—धर्म का क्षय किससे होता है ?

उत्तर — 'क्रोधाद्धर्मोविनश्यति ।'

अर्थात्—क्रोध करने से धर्म का नाश होता है।

'धर्म क्रोध करि होत विभंग।'

—— o ——

२९ प्रश्नः—धर्म के लिंग कितने हैं ?

उत्तरः— धर्मस्य तस्य लिङ्गानि, दया क्षान्तिरहिंसनम् ।
तपो दानं च शीलं च, सत्यं शौचं वितृष्णता ॥

अर्थात्—दया, मृदुता, क्षमा, अहिंसा, सत्य वचन, तप, दान, शील, शौच (पवित्रता) निर्लोभता ये धर्म के दस लिंग (चिन्ह) हैं ॥ १ ॥

—— o ——

३० प्रश्नः—पूर्ण मंत्र किस को कहते हैं ?

उत्तरः— सगुणो ब्रह्ममंत्रश्च, द्वौ भेदौ समुदीरितौ ।
मंत्रस्य मंत्रयोगज्ञै, विद्वद्भिः परमर्षिभिः ॥
सगुणोऽऽनाप्यते तूर्णं, समाधिः सविकल्पकः ।
ब्रह्ममन्त्रेण च तथा, निर्विकल्पो हि साधकैः ॥
ब्रह्ममन्त्रेहि प्रणवः, सर्वश्रेष्ठतया मतः ।
अन्येभारमया ब्रह्ममन्त्रा योगविशारदैः ॥
महावाक्यतया प्रोक्ताश्चत्वारस्तत्र मुख्यकाः ।

चतुर्वेदानुसारेण, वेदनिर्णयतो गता ॥
प्रधानानि भवन्त्येव, महावाक्यानि द्वादश ।
वेदशाखाऽनुसारेण, महावाक्यप्रधानता ॥
कल्पे सहस्रैकशताऽशीति मन्त्रा गता इह ।
ब्रह्ममन्त्रेषु मुख्यो हि, गायत्रीमन्त्र ईरित ॥
स्वरूपद्योतका मन्त्राश्चाऽऽत्मज्ञानप्रकाशका ।
ब्रह्ममन्त्रो हि विहितः, केवलं राजयोगिने ॥

—(प्र धा स)

उत्तर — 'सगुण-मंत्र' और 'ब्रह्म-मंत्र' के भेद से दो भेद मन्त्र के योग तत्त्वज्ञ महर्षियों ने किये हैं। सगुण मंत्र द्वारा 'सविकल्प-समाधि' और ब्रह्म मन्त्र के द्वारा 'निर्विकल्प-समाधि' की प्राप्ति होती है। ब्रह्म मंत्र में 'प्रणव ही सर्व-प्रधान-पूर्ण मंत्र' है। और और भाग सब अन्य ब्रह्म मंत्रों को 'महावाक्य' भी कहते हैं। प्रधान महा वाक्य चार हैं। ये चार वेद के अनुसार निर्णीत हुए हैं। प्रधान महावाक्य द्वादश भी हैं। और पुनः—प्रत्येक शाखा के अनुसार इस कल्प में—एक हजार एक सौ अस्सी (११८०) ब्रह्म मंत्र की संख्या राज योगियों ने वर्णन की है। गायत्री मंत्र इन सब ब्रह्म मंत्रों में श्रेष्ठ और वह इन संख्याओं से अतिरिक्त है। सब ब्रह्म मंत्र स्वरूप-द्योतक और आत्मज्ञान-प्रकाशक हैं। केवल राज योगियों ही के लिये ब्रह्म मंत्र की विधि है।

२१ प्रश्नः— तारक मंत्र किस को कहते हैं ?

उत्तर — (क) श्रुतं ब्राह्मं वाक्य श्रुत इह जनैर्यैश्च प्रणवो-
गतं ब्राह्मं धाम प्रणव इह यैः शब्दित इव ।
पदं ब्राह्मं द्रष्टं नयनपथगो यस्य प्रणवः,
इतं ब्राह्मं रूपं मनसि सततं यस्य प्रणवः ॥१॥
शास्त्राणां प्रणवः सेतुर्मंत्राणां प्रणवः स्मृतः ।
स्रवत्यनोङ्कृतः पूर्व्वं—परस्ताच्च विशीर्यते ॥२॥
निःसेतु सलिलं यद्वत्, क्षणान्निम्नं प्रगच्छति ।
मंत्रस्तथैव निःसेतुः, क्षणात् क्षरति यज्विनाम् ३
माङ्गल्यं पावनं धर्म्यं, सर्वकाम प्रसाधनम् ।
ओंकारं परमं ब्रह्म, सर्वमन्त्रेषु नायकम् ॥४॥
यथा पर्णं पलाशस्य, शङ्कुनैकेन धार्य्यते ।
तथा जगदिदंसर्वमोङ्कारेणैव धार्य्यते ॥५॥
सिद्धानां चैव सर्व्वेषां, वेदवेदान्तयोस्तथा ।
अन्येषामपि शास्त्राणां, निष्ठार्थोङ्कार उच्यते ॥६॥
आद्यमंत्राक्षरं ब्रह्म, त्रयी यस्मिन् प्रतिष्ठिता ।
सर्व्वमंत्रप्रयोगेषु, ओमित्यादौ प्रयुज्यते ॥७॥
तेन सम्परिपूर्णानि, यथोक्तानि भवन्ति हि ।
सर्वमंत्राऽधियज्ञेन, ओंकारेण न संशयः ।
तत्तदोंकारयुक्तेन, मंत्रेण सफलं भवेत् ॥८॥
—(मं यो सं)

अर्थः—ॐ का प्रणव, 'महा वाक्य'—श्रवण के सदृश है, ॐ का उच्चारण 'महा धाम' में जाने के सदृश है, ॐ का दर्शन 'स्वरूप दर्शन' के सदृश है, और ॐ का चिन्तन 'ब्रह्म रूप प्राप्ति' के सदृश है। शास्त्र और मंत्रों का प्रणव—'सेतु रूप' है। मंत्र के—पूर्व यह न रहने से मंत्र 'पतित' और पीछे न लगने से मंत्र 'विशीर्ण' हुआ करता है। जैसे—बिना बन्ध के जल क्षण भर में नीची भूमि को प्राप्त होकर निकल जाता है उसी प्रकार बिना प्रणव, अर्थात्—ॐ रहित मन्त्र क्षण भर में जापक को त्याग कर देता है। ॐकार मंगलकारी, पवित्र, धर्म-रक्षक और सम्पूर्ण प्रकार की कामनाओं को सिद्ध करने वाला है। ॐकार 'पर ब्रह्म' स्वरूप है, और सम्पूर्ण मंत्रों का 'स्वामी' है। जैसे पलाश वृक्ष के पत्तों को एक ही डंठल धारण करता है। उसी प्रकार इस सम्पूर्ण जगत् को ॐकार ही धारण कर रहा है। संपूर्ण सिद्धि के अर्थ सर्व वेद और धर्मशास्त्र तथा—अन्यान्य शास्त्रों में भी सिद्धान्तस्थापन के अर्थ ॐकार उच्चारण किया जाता है। आदि मन्त्र रूप प्रणव यत्नपूर्वक द्वारा स्थिर निश्चय किया गया है। सर्व मंत्रों के प्रयोग में "ॐ" इस प्रणव को आदि में सयोजित किया जाता है। उन सब मंत्रों की सिद्धि के अर्थ ही ॐकार कहा गया है। इस से ॐकार ही सब मंत्रों का 'अधिपति' है, इस में सन्देह नहीं।

(ख) ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा।
स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं, पुरस्ताच्च विशीर्यति॥

अर्थात्—वेद पाठ के आदि और अन्त में सदा ओंकार का उच्चारण करे। क्योंकि—पूर्व में ओंकार न कहने से धीरे धीरे और पीछे न कहने से उसी समय पाठ विस्मरण हो जाता है। —(मनु २।७४)

३२ प्रश्नः— अजपा मंत्र किस को कहते है ?

उत्तर — हकारेण वहिर्याति, सकारेण विशेत्पुनः ।
हंस हंसेत्यमुं मन्त्रं, जीवो जपति सर्वदा ॥
षट्शतानि त्वहो रात्रे, सहस्राण्येकविंशतिः ।
एतत्संख्यान्वितं मन्त्र, जीवो जपति सर्वदा ॥
अजपा नाम गायत्री, योगिनां मोक्षदायिनी ।
अस्याः संकल्पमात्रेण, सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

अर्थः—शरीर मे का वायु 'ह'कार से वाहर आता है और 'स'कार से पुनः-शरीर मे प्रवेश करता है । ऐसी क्रिया द्वारा हंस, हस' इस रीति का मत्र यह जीव सर्वदा जपता है । रात्रि दिन में २१६०० स्वास के साथ २ जपता है । 'हंस' का रूप ही ' सोऽह" है । इसमें से सकार ह कारको बिलग करने पर ॐ ही अवशेष रहता है । इसका नाम "अजपा गायत्री" है, जो-योगियों को मोक्ष की देने वाली है, इसके संकल्प मात्र करने से मनुष्य सर्व पापों से मुक्त हो जाता है ।

— ० —

३३ प्रश्नः— प्रणव का जाप किस प्रकार किया जाय ?

उत्तरः— (१) "यस्य शब्दस्योच्चारणे यद्वस्तु स्फुरति तत्तस्य वाच्यमिति प्रसिद्धम् ।
समाहितचित्तस्योंकारोच्चारणे यत्साक्षिचैतन्यं स्फुरति, तदोंकारमवलम्ब्य; तद्वाच्यं ब्रह्माह-

मस्मीतिध्यायेत् । तत्राप्यसमर्थ ॐशब्द एव
ब्रह्मदृष्टिं कुर्यात् ॥"

अर्थः—जिस शब्द का उच्चारण होते जो वस्तु स्फुरती है, वह वस्तु उस शब्द की वाच्य कहाती है, यह प्रसिद्ध है।

अविक्षिप्त (शान्त-एकाग्र) चित्त वाले को ॐकार का उच्चारण करते, जो—"साक्षी चैतन्य" स्फुरता है, उस ॐकार का अवलम्बन कर उसका वाच्य "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा साधक को ध्यान करना चाहिये।

(२) वदन्तु सर्वधर्मेभ्यः, परमोधर्म उच्यते।
अहिंसया च भूतानां, जपयज्ञःप्रवर्तते ॥

अर्थः—सब धर्मों में 'जप' को परमधर्म कहा है, क्योंकि-अहिंसादि सबों से 'जप यज्ञ' सुलभ और विघ्नों से रहित है।

—०—

२५ प्रश्नः—प्रणव का स्वरूप क्या है ?

उत्तर—(क) ॐकारः सर्ववेदानां, सारस्तत्त्वप्रकाशकः ।
तेनचित्तसमाधानं, मुमुक्षूणां प्रकाश्यते ॥

अर्थः—ॐकार सर्व वेदों का सार और तत्त्व का प्रकाशक है। इसके द्वारा मुमुक्षुओं के चित्त का समाधान होता है।
—(सुरेश्वराचार्यः)

(ख) "ॐकारनिर्णय आत्मतत्त्वप्रतिपत्त्युपायत्वं प्रतिपाद्यते"
—(गौडपादीय कारिका)

अर्थ.—ॐकार का निर्णय आत्मतत्व की प्राप्ति के उपाय-रूप प्रतिपादन करने में आता है।

—— o ——

२५ प्रश्नः— प्रणव उपासना किस प्रकार होती है ?

उत्तरः— ॐकारध्वनिनादेन, वायोः संहरणान्तिकम्।
निरालम्बं समुद्दिश्य, यत्रनादो लयं गतः ॥

अर्थात्ः—प्रथम पवित्र और निर्जन प्रदेश मे स्थिर तथा-सुखासन से स्थित हो, 'ॐ' का लम्बे स्वर से उच्चारण कर वेदान्त विचार-ब्रह्मविचार-स्वरूपानुसधान करते 'अहं ब्रह्मास्मि' वृत्ति स्फुर्ती है; और उसके साथ ही "आत्मा परमात्मा है, देह आदि आत्मा नहीं है"–ऐसा भाव स्थिर होता है, जिस करके देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि आदि सब का बाध–लय उसी क्षण होता है। और ऐसा होने पर–अवशिष्ट जो रहता है, वह परब्रह्म है। उस समय (वहां) "मै ब्रह्म हूँ" ऐसी वृत्ति का भी लोप होजाता है,–यह ही समाधि है। ऐसी स्थिति जितने क्षण रहती है, उतनी देर साक्षात्कार समझना। और ऐसी वृत्ति की स्थिरता को पुनः पुनः अभ्यास कर के बढ़ाते जाना। अभ्यास की दृढ़ता बढ़न पर स्वआत्मा मे परमात्मा तादृश होंगे। —(उत्तरगीता)

(ख) शुचिर्वाप्यशुचिर्वापि, यो जपेत्प्रणवं सदा।
न स लिप्यति पापेन, पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥

—(योगचूडामणिः)

अर्थः—पवित्र हो, अथवा–अपवित्र हो, तो भी जो–हमेशा प्रणव ॐ का जप करता है, वह मनुष्य पाप से लिप्यमान नहीं होता, जैसे कि–कमल-पत्र जल में रहते हुए भी जल से नहीं लिपाता।

यस्तु द्वादश साहस्रं, नित्यं प्रणवमभ्यसेत् ।
तस्य द्वादशभिर्मासैः परब्रह्म प्रकाशते ॥

—(यतिधर्मप्रकाश)

अर्थः—जो अधिकारी नित्य बारह हजार प्रणव का जप करता है, उसे बारह महीने में "परब्रह्म का साक्षात्" होता है।

—०—

१६ प्रश्नः— भक्ति किसे कहते हैं और वह कितने प्रकार की है ?

उत्तर— मोक्षकारणसामग्र्यां, भक्तिरेव गरीयसी ।
स्वस्वरूपानुसन्धाने, भक्तिरित्यभिधीयते ॥

अर्थः—मोक्ष के कारणों में जो सामग्रियाँ हैं, उनमें भक्ति सबसे श्रेष्ठ है। जीव के 'निजी रूप के अनुसन्धान को भक्ति' कहते हैं। जीव का निजी जो "ब्रह्म रूप" है, उसका ही अविच्छिन्न श्रवण मनन निदिध्यासन या–धारणा ध्यान समाधि है, उसका नाम भक्ति है। यानी–जीव की अविद्या परिकल्पित भाव कर उसे परमात्म-रूप से निरन्तर याद करने का नाम भक्ति है।

(ख) ईश्वर में अत्यन्त प्रेम करने का नाम भक्ति है:—

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः, स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं, सख्यमात्मनिवेदनम् ॥
—(श्रीमद्भागवत ७।५।२३)

अर्थात्:—श्रवण, कीर्तन, स्मरणनित्त, पदसेवन भगवान् ।
पूजन, वन्दन, दास्य रति, सख्य, समर्पण जान ॥

१ श्रवणः—भगवान् के चरित्र, लीला, महिमा, गुण नाम तथा उनके प्रेम-एवं प्रभाव की बातों का श्रद्धापूर्वक सदा सुनना और उसी के अनुसार आचरण करने की चेष्टा करना, श्रवण-भक्ति है। श्रीमद्भागवत के श्रवण मात्र से धुन्धकारी सरीखा पापी तर गया था। राजा परीक्षित आदि इसी श्रेणी के भक्त माने जाते हैं।

२ कीर्तनः—भगवान् की लीला, कीर्ति, शक्ति, महिमा, चरित्र, गुण, नाम आदि का प्रेमपूर्वक कीर्तन करना कीर्तन-भक्ति है। श्री नारद, व्यास—वाल्मीकि, शुकदेव, चैतन्य आदि इसी श्रेणी के भक्त माने जाते हैं।

३ स्मरणः—सदा अनन्य भाव से भगवान् के गुण प्रभाव-सहित उनके स्वरूप का चिन्तन करना और बारबार उन पर मुग्ध होना स्मरण-भक्ति है। श्री प्रह्लादजी, श्री ध्रुवजी, श्री भरतजी, भीष्मजी, गोपियां आदि इसी श्रेणी के भक्त हैं।

४ पादसेवकः—भगवान् के जिस रूप की उपासना हो, उसी का चरण-सेवन करना, या भूतमात्र में परमात्मा को समझ कर सबका चरण-सेवन करना पाद सेवन भक्ति है। श्री लक्ष्मीजी, श्री रुक्मिणीजी, श्री भरतजी इस श्रेणी के भक्त हैं।

५ पूजन—अपनी रुचि के अनुसार भगवान् की किसी मूर्ति विशेष का, या मानसिक स्वरूप का नित्य भक्तिपूर्वक पूजन करना। विश्व भर में सभी प्राणियों को परमात्मा का स्वरूप समझ कर उनकी सेवा करना भी अव्यक्त भगवान् की पूजा है। राजा पृथु अम्बरीष, आदि इसी श्रेणी के भक्त हैं।

६ वन्दन—भगवान् की मूर्ति को या विश्वभर को भगवान् की मूर्ति समझ कर प्राणीमात्र को नित्य प्रणाम करना वन्दन भक्ति है। श्री अक्रूर आदि वन्दन भक्त गिने जाते हैं।

७ दास्य—श्री परमात्मा को ही अपना एकमात्र स्वामी और अपने को नित्य उनका दास समझ कर किसी भी प्रकार की कामना न रखते हुए महाभक्ति के साथ नित्य नये उत्साह से भगवान् की सेवा करना और उस सेवा के सामने मोक्ष सुख को भी तुच्छ समझना दास्य भक्ति है। श्रीहनूमान् जी, श्रीलक्ष्मण जी आदि इसी श्रेणी के भक्त हैं।

८ सख्य—श्रीभगवान्‌को ही अपना परमहितकारी परम सखा मानकर दिल खोलकर उनसे प्रेम करना। भगवान् अपने सखा-मित्र का छोटे से छोटा काम बड़े हर्ष के साथ करते हैं। श्री अर्जुन उद्धव सुदामा, श्रीदामा आदि इस सख्य भक्ति श्रेणी के भक्त हैं।

९ आत्म निवेदन या समर्पण—अहंकार रहित होकर अपना सर्वस्व श्रीभगवान् के अर्पण कर देना। महाराजा बलि, श्रीगोपियाँ आदि इस श्रेणी के भक्त हैं।

—०—

२७ प्रश्नः—भक्त कै प्रकार के होते है ?

उत्तरः— चतुर्विधा भजन्ते मां, जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी, ज्ञानी च भरतर्षभ ॥

अर्थः—हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन ! उत्तम कर्म वाले अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी, अर्थात्–निष्कामी ऐसे चार प्रकार के भक्त जन मेरे को भजते है ॥ —(गीता ७-१६)

—— ० ——

३८ प्रश्नः—ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति कौन साधनों करके होती है ?

उत्तरः— साधनान्यत्र चत्वारि, कथितानि मनीषिभिः ।
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा, यदभावे न सिध्यति ॥

अर्थः—बुद्धिमान् पुरुषों ने ब्रह्म जिज्ञासा में चार साधन बताये हैं, उन साधनों के होने पर ही, ब्रह्मनिष्ठ हो सकता है, उनके बिना ब्रह्म जिज्ञासा नहीं हो सकती ।—

आदौ नित्यानित्यवस्तु-विवेकः परिगण्यते ।
इहामुत्र फलभोग-विरागस्तदनन्तरम् ॥
शमादिषट् सम्पत्तिर्मुमुक्षुत्वमितिस्फुटम् ॥

अर्थः—'नित्य और अनित्य वस्तु का ज्ञान' पहिला हेतु गिना है, इसके पीछे 'इस लोक और परलोक के फलों के भोगों से परिपूर्ण वैराग्य होना' दूसरा हेतु माना है । 'शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान' इन छओं की भली भाति प्राप्ति होना, तीसरा हेतु है । तथा–'मुक्त होने की

उत्कट इच्छा चौथा हेतु है। ब्रह्मसूत्र शांकर भाष्य में भी ये दिखाये गये हैं।

— ० —

२८ प्रश्नः— मुक्ति क्या है और किस प्रकार होती है?

उत्तरः— देहं धियं चित्प्रतिबिम्बमेव,
　　　　विसृज्य बुद्धौ निहितं गुहायाम्।
द्रष्टारमात्मा नमखण्डबोधं,
　　　　सर्वप्रकाशं सदसद्विलक्षणम्॥
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्म
　　　　मन्तर्बहिः शून्य मनन्यमात्मनः॥
विज्ञाय सम्यङ् निजरूपमेत-
　　　　त्पुमान्विपाप्मा विरजो विमृत्युः॥

अर्थ—देह और बुद्धि तथा बुद्धिरूप-गुहा में पड़े हुए चैतन्य के प्रतिबिम्ब को छोड़ कर सबका सर्वद्रष्टा सबके प्रकाशक, स्थूल सूक्ष्म जगत् से विलक्षण नित्य व्यापक सब के अन्तर्गत सूक्ष्म रूप, अन्तर बाह्य से रहित "अपनी आत्मा से अभिन्न" ऐसे आत्म स्वरूप को अच्छी तरह जान कर मनुष्य पाप से रहित निर्मल होकर जन्म मरण से मुक्त, मृत्यु रहित मुक्त हो जाता है।

४० प्रश्नः— वन्धन किस प्रकार होता है ?

उत्तरः— अत्रानात्मन्यहमिति मतिर्वन्ध एषोऽस्य पुंसः,
प्राप्तोऽज्ञानाज्जननमरणक्लेशसंतापहेतुः ।
येनैवायं वपुरिदमसत्सत्यमित्यात्मबुद्ध्या,
पुष्यत्युक्षत्यवति विषयैस्तन्तुभिःकोशकृद्वत् ॥

अर्थः—आत्मासे भिन्न इस शरीरको अपने अज्ञानसे आत्मा समझना ही वन्ध है । जिस पुरुष को अज्ञान के कारण यह वन्ध प्राप्त है, उस पुरुष के लिये यह जनन मरण आदि क्लेश समूहों को वन्ध ही सदा प्राप्त कराता रहता है, जिस वन्ध के होने से मनुष्य 'अनित्य' इस स्थूल शरीर को आत्म वुद्धि से 'सत्य' समझ के विषयों से पुष्ट करता, सींचता और पालता है । जैसे कि–रेशम का कोडा अपने रेशमी डोरों से 'कोश' वनाता हुआ, उसी में फस जाता है । उसी तरह जीव शरीर में बद्ध है ।

—— o ——

४१ प्रश्नः— सद् गुरु किसको कहते हे ?

उत्तर.— सर्व शास्त्रपरोदक्षः, सर्वशास्त्रार्थवित्सदा ।
सुवचाः सुन्दरः स्वङ्गः, कुलीनः शुभदर्शनः ॥
जितेन्द्रियः सत्यवादी, ब्राह्मणः शान्तमानसः ।
पितृमातृहिते युक्तः, सर्वकर्मपरायणः ।
आश्रमी देशवासी च, गुरुरेवं विधीयते ॥

आचार्य गुरु शब्दौ द्वौ, सदा पर्यायवाचकौ ।
कश्चिदर्थगतो भेदो, भवत्येव तयो कश्चित् ॥
औपपत्तिकमंश तु, धर्मशास्त्रस्य पण्डित ।
व्याचष्टे धर्ममिच्छूनां, स आचार्य प्रकीर्तितः ।
सर्वदर्शी तु यः साधुर्मुमुक्षूणां हिताय वै ॥
व्याख्याय धर्म-शास्त्रांश, क्रियासिद्धिप्रबोधकम् ।
उपासनाविधे सम्यगीश्वरस्य परात्मन ।
भेदा ब्धारिस्त धर्मज्ञः, स गुरुः समुदाहृत ॥
सप्तानां ज्ञानभूमीनां, शास्त्रोक्तानां विशेषत ।
अभेदान्योविजानाति, निगमस्यागमस्य च ॥
ज्ञानस्य चाधिकारांश्चीन्भावतात्पर्यलक्षत ।
तन्त्रेषु च पुराणेषु, भाषायास्त्रिविधां स्थितिम् ॥
सम्यग्भेदैर्विजानाति, भाषातत्त्वविशारदः ।
निपुणो लोकशिक्षायां, श्रेष्ठाचार्य स कथ्यते ॥
पञ्चतत्त्वविभेदज्ञ, पञ्चभेदान्विशेषत ।
सगुणोपासनां यस्तु, सम्यग्जानाति कोविद ॥
चतुष्टयेन भेदेन, ब्रह्मण समुपासनाम् ।
गभीरार्थां विजानीते, सुधी निर्मलमानस ॥
सर्वकार्येषु निपुणो, जीव मुक्तश्चितापहृत् ।
करोति जीवकल्याणं, गुरु श्रेष्ठ स कथ्यते ॥

—(मन्त्रयोग संहिता)

अर्थः— सर्व शास्त्रों मे पारङ्गत, चतुर, सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्व-वेत्ता, और मधुरवाक्य भाषण करने वाले हों, सब अङ्ग जिनके पूर्ण और सुन्दर हों, कुलीन हों, दर्शन करने में मङ्गल मूर्ति हों, इन्द्रियां जिनकी वशीभूत हों, सर्वदा सत्यभाषण करने वाले हों, उत्तम वर्ण, ब्रह्मवेत्ता हों, शान्त मानस अर्थात् जिन का मन कभी चञ्चल नही होता हो, माता-पिता के समान हित करने वाले हों, सम्पूर्ण कर्मों मे अनुष्ठान-शील हों, और गृहस्थ, वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी और सन्यासी इन आश्रमों में से किसी आश्रम के हों, एवं-भारतवर्ष निवासी हों, इस प्रकार के सर्व गुण सम्पन्न महात्मा "गुरु" करने के योग्य कहे गये हैं।

"आचार्य" और "गुरु" ये दोनों पर्यायवाचक शब्द है, तथापि कार्य के वैलक्षण्य से आचार्य और गुरु इन में भेद भी है। सम्पूर्ण 'वेद' और 'शास्त्र' आदि में सुपण्डित हों और उनका औपपत्तिक ज्ञान, शिष्य को करावें वे 'आचार्य" कहाते हे। जो सर्वदर्शी साधु, मुमुक्षुओं के हितार्थ वेद शास्त्रोक्त क्रियासिद्धांश और परमेश्वर की उपासना क भेदों को, यथाधिकार-शिष्यों को बतलावें, उनको "गुरु" कहते हैं। दर्शनशास्त्र की सात भूमिका के अनुसार जो वेद और शास्त्र के सकल भेदों को जानते हों, अध्यात्म, अधिदैव, एव अधिभूत नामक भावत्रय को भली भाति समझते हों, और तन्त्र और पुराणों की-समाधि भाषा, लौकिक भाषा, परकीय भाषा इन से भली भांति परिचित रहकर, लोकशिक्षा में निपुण हों, वे ही श्रेष्ठ "आचार्य" कहे जाते हैं। पञ्चतत्व के अनुसार जो महापुरुष विष्णूपासना, सूर्योपासना, शक्त्युपासना, गणेशोपासना और शिवोपासना रूप पञ्च सगुण

उपासना के गूढ़ रहस्यों का समझते हों और जो योगिराज मन्त्रयोग हठयोग, लययोग, राजयोग इन चारों के अनुसार चतुर्विध निर्गुणोपासना को जानते हों, परम ज्ञानी निर्मल मानस, सर्वकार्य में निपुण हितापरहित, जीवों का कल्याण करने वाले, जीवन्मुक्त महात्मा श्रेष्ठ "गुरु" कहलाते हैं।

———

४२ प्रश्न:— गुरु की सेवा किस प्रकार होता है?

उत्तर— यादृगस्तीह सम्बन्धो ब्रह्माण्डस्येश्वरेण वै।
तथा क्रियाख्ययोगस्य, सम्बन्धोगुरुणा सह॥
दीक्षाविधावीश्वरो वै, कारणाख्यश्चमुच्यते।
गुरु कार्यस्थल याज्यो गुरुत्वम प्रगीयते॥
गुरौ मानुषबुद्धि तु, मन्त्रे चाक्षरभावनाम्।
प्रतिमासु शिलाबुद्धि, कुर्वाणो नरकं व्रजेत्॥
जन्महेतू हि पितरौ, पूजनीयो प्रयत्नत।
गुरुर्विशेषतः पूज्यो धर्माऽधर्मप्रदर्शकः॥
गुरुःपिता गुरुर्माता, गुरुर्देवो गुरुर्गतिः।
शिवे रुष्टे गुरुस्त्राता, गुरौ रुष्टे न कश्चन॥

—(म स)

अर्थ—ईश्वर के साथ जैसा ब्रह्माण्ड का सम्बन्ध है, उसी प्रकार गुरु के साथ क्रिया योग का सम्बन्ध है। दीक्षा विधि में ईश्वर कारण-स्थल और गुरु कार्य-स्थल कहे गये हैं इस

कारण- "गुरु ब्रह्मरूप" है। जो लोग गुरु के सम्बन्ध में- विषय मे "मनुष्य बुद्धि" और मंत्र के विषय में "अक्षर बुद्धि" और देव प्रतिमा मे "पाषाण बुद्धि" रखते हैं, वे नरकगामी होते है। माता और पिता जन्म देने के कारण पूजनीय हैं, किन्तु-गुरु धर्म और अधर्म का ज्ञान कराने वाले हैं, इस कारण-उनका पूजन पितृगणों से भी अधिक यत्न करके करना उचित है।

गुरु ही पिता हैं, गुरु ही माता है, गुरु ही देवता हैं, और गुरु ही सद्गति रूप हैं। परमेश्वर के रुष्ट होने पर तो गुरु बचाने वाले है, परन्तु गुरु के अप्रसन्न होने पर कोई भी त्राण दाता नहीं है।

—— o ——

४३ प्रश्नः— सद्गुरु की पहिचान कौन चक्षु करके होती है ?

उत्तरः— श्रीगुरोः परमं रूपं, विवेकचक्षुरग्रतः।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति, अन्धाः सूर्योदयं यथा॥

अर्थः—जैसे सूर्योदय को अन्धे मनुष्य नहीं देखते, वैसे ही श्रीगुरु का परमरूप (वास्तव स्वरूप) मदभाग्य वाले विवेक चक्षु के अग्रभाग से देखते नहीं।

यस्मात्परतरं नास्ति, नेति नेतीति वै श्रुतिः।
मनसा वचसा चैव, सत्यमाराधयेद् गुरुम्॥

अर्थः—जिन्हों से श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है, श्रुति "नेति-नेति" ऐसा कहती है, ऐसे सत्यस्वरूप श्रीगुरु को ही मन,

चाही द्वारा आराधना चाहिए ।। उनकी कृपा से ही उनके असली स्वरूप की पहिचान हो सकती है ।

---

४४ प्रश्न— सद्गुरु का ज्ञान किसको फलीभूत होता है ?

उत्तर — यथा खनन्खनित्रेण, नरो वार्यधिगच्छति ।
तथा गुरुगतां विद्यां, शुश्रूषुरधिगच्छति ।।

अर्थ—जिस प्रकार कुदाल से जमीन खोदते-खोदते मनुष्य जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार गुरुकी सेवा करते-करते गुरु में रही विद्या-ज्ञान, प्राप्त होता है ।

[२] अधिकारिणमाशास्ते, फलसिद्धिर्विशेषतः ।
उपाया देशकालाद्याः, सन्त्यस्मिन् सहकारिणः ।।

अर्थ—ब्रह्मज्ञानरूप फल की सिद्धि, अधिकारी-पुरुष की अपेक्षा रखती है । देश आदिक उपाय तो—इसके सहायक होते हैं ।

---

४५ प्रश्न— गुरु-भक्त किसको कहते हैं ?

उत्तर— प्रशान्तः स्थिरगात्रश्च, आज्ञाकारी जितेन्द्रियः ।
आस्तिकोऽदृढभक्तश्च, गुरौ मन्त्रे च दैवते ।।
एवंविधोभवेच्छिष्य, इतरोदुःखकृद् गुरोः ।।

अर्थः—लोभ रहित, स्थिरगात्र (अर्थात्- जिसका अङ्ग चञ्चल, न हो) गुरु का आज्ञाकारी, जितेन्द्रिय, आस्तिक, और गुरुमन्त्र एवं देवता मे जिसकी दृढभक्ति हो, ऐसा शिष्य (गुरु-भक्त) दीक्षा का अधिकारी है। और इन गुणों से विरुद्ध गुण रखने वाला शिष्य, गुरु को दुःख देने वाला जानना चाहिये।

—— o ——

४६ प्रश्नः— पण्डित किसको कहते हैं ?

उत्तरः —धनोपयोगः सत्पात्रे, यस्यैवास्ति स पण्डितः।
गुरुशुश्रूषया जन्म, चित्तं सद्ध्यानचिन्तया ॥१॥

द्रव्य खर्चे सत्पात्र में, जन्म जाय गुरु सेव।
हरि सुमिरण महँ चित्त जेहि, वह पण्डित श्रुति भेव॥

अर्थात्:—जिसका द्रव्य सत्पात्रों को दान देने में खर्च होता हो, आयुष्य गुरुदेव की सेवा मे लगता हो और चित्त जिसका हरि-परमात्मा के स्मरण चिंतन मे लगा हो, वह मनुष्य श्रुति के भेद को जानने वाला पण्डित है।

न पण्डितः क्रुद्ध्यति नाभिपद्यते,
नचापि संसीदति न प्रहृष्यति॥
न चातिकृच्छ्रव्यसनेषु शोचते,
स्थितः प्रकृत्या हिमवानिवाचलः ॥१॥

अर्थात्:—पण्डित वह है, जो क्रोध नहीं करता, न कभी विषयों में पड़ता, न दुःख में कभी दुःखी और न सुख में

हर्षित, किम्बहुना- भारी से भारी आपत्ति आने पर भी जो सोच नहीं करके प्रकृत्या हिमाचल की तरह स्थिर रहता है।

—— o ——

५७ प्रश्नः - मूर्ख किसको कहते हैं?

उत्तर.— व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ,
रोद्धुं समुज्जृम्भते,
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुम
प्रान्तेन संनह्यते ॥
माधुर्यं मधुबिन्दुना रचयितुं,
क्षाराम्बुधेरीहते ।
नेतुं वाञ्छति यः खलान् पथि सतां,
सूक्तैःसुधास्यन्दिभिः ॥६॥

• • • •

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक्, छत्रेण सूर्यातपो-
नागेंद्रोनिशिताङ्कुशेन समदो, दंडेन गोगर्दभौ ॥
व्याधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधै-र्मंत्रप्रयोगैर्विषम्,
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं, मूर्खस्यनास्त्यौषधम् ॥

अर्थः—कोई साधक-प्रयत्नशील पुरुष- कोमल कमल के तन्तु से सर्प अथवा-मदोन्मत्त हाथी को 'बांध सके', सरसङ्गा के पुष्पों के सिरे से 'हीरे में छेद' कर सके, और शहद की बूंदों से खारे समुद्र को कदाचित 'मीठा' बना सके (कदाचन

को शक्य कदाचित् कर सके) परन्तु-अमृत जैसे सुन्दर वचनों से वह साधक खल पुरुषों को सन्मार्ग पर नही ला सकता। (अमृत के समान सुन्दर वचन भी उसको खारे जहर के समान लगते हैं)।

जल से अग्नि का निवारण हो सकता है, छत्र से धूप का निवारण हो सकता है, तीक्ष्ण अंकुश द्वारा हाथी को नियम मे लाया जा सके, डंडे से गाय-गधे को सीधा बना दिया जाय, औषधि के सेवन से असाध्य रोग भी मिट सकें, नाना प्रकार के मंत्रों के प्रयोग से सर्पादि का जहर भी निवृत्त किया जा-सके शास्त्रों में इस प्रकार सबों के उपाय बताये हैं, परन्तु-मूर्ख-हठीला-अकल चंडा-के लिये कोई उपाय नहीं है।

इतःकोन्वस्ति मूढात्मा, यस्तुस्वार्थे प्रमाद्यति।
दुर्लभं मानुषं देहं, प्राप्य तत्रापि पौरुषम्॥

—(विवेकचूडामणिः)

अर्थः—इससे अधिक अधिक कौन मूढ़ 'मूर्ख' होगा! जो दुर्लभ मनुष्य शरीर और उसमें भी पुरुषार्थ पाकर अपना प्रयोजन सम्पादन करने में प्रमाद करता हो?

—— o ——

४८ प्रश्नः—सन्त किसको कहते है?

उत्तर.— शान्तोमहान्तोनिवसन्ति सन्तो,
वसन्तवल्लोकहितं चरन्तः।
तीर्णाः स्वयं भीमभवार्णवं जनान-
हेतुनान्यानपि तारयन्तः॥

अर्थः—शान्त स्वभाव सन्त महात्मा लोग बड़े भयानक संसारसमुद्र से स्वयं उत्तीर्ण होकर, बिना कारण-दयाभाव से ही प्रेरित हो, संसार-समुद्र में फंसे हुए जीवों के उद्धार करने के लिये, वसन्त की तरह लोक का 'कल्याण' करते हुए संसार में निवास करते हैं।

—:०—

४९ प्रश्नः—सन्तों का धर्म क्या है?

उत्तर— अयं स्वभावः स्वत एव यत्पर-
श्रमापनोदप्रवणं महात्मनाम्।
सुधांशुरेष स्वयमर्ककर्कश-
प्रभाभितप्तामवति क्षितिं किल ॥१॥

अर्थः—महात्मा लोगों का यह स्वतः स्वभाव ही है जो कि-दूसरे का दुःख दूर करने में तत्पर होते हैं। जैसे—सूर्य के प्रचण्ड-किरणों से तपी हुई पृथ्वी को चन्द्रमा अपने सुधा संयुक्त किरणों से सींच कर उसकी रक्षा करता है।

—०—

५० प्रश्नः—पतिव्रतधर्म किसको कहते हैं?

उत्तर— परुषाण्यपि चोक्ता या दृष्टा क्रुद्धेन चक्षुषा।
सुप्रसन्नमुखी भर्तुर्या नारी सा पतिव्रता॥

अर्थः—पति ने कभी कटु वचन कहे हों, अथवा क्रोध दृष्टि से देखा हो तो भी—उसके प्रति जो स्त्री प्रसन्नमुख रहती है—वह पतिव्रता कहाती है ॥१०

कार्येषु मंत्री करणेषुदासी, भोज्येषु माता शयनेषु रंभा।
धर्मानुकूला क्षमया धरित्री, षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रतानाम्

अर्थः—कार्य करने–सलाह देने–मे 'मन्त्री' के समान, सुपुर्द किया काम करने में 'दासी' के समान, भोजन समय प्रीति रखने वाली 'माता' के समान, शयन के विषे प्रीति उपजाने वाली 'रम्भा' के समान, धर्म कार्यों मे 'अनुकूल' और क्षमा करने में 'पृथ्वी' के समान, यह छहः गुण जिसमे होते हैं, वह पतिव्रता कहाती है।

—— o ——

५१ प्रश्न :—स्वामी किसको कहते हैं ?

उत्तर — (१) छन्नं कार्यमुपक्षिपन्ति पुरुषा–
न्यायेन दूरीकृतं।
स्वान्दोषान्कथयन्ति नाधिकरणे,
रागाभिभूताः स्वयम्
तैः पक्षापरपक्षवर्धितबलै–
र्दोषैर्नृपः स्पृश्यते,
संक्षेपादपवाद एव सुलभो,
द्रष्टुर्गुणोदूरतः ॥

अर्थः—न्याय विरुद्ध होने पर भी पराये छिपे उखाड करके आक्षेप करना, जिन दोषों मे आप स्वयं है, उनको छिपाकर दूसरे के शिर पर दोष लगाना पक्ष की नीति वाले समीपवर्ती लोगों के दोषों से

भिरा रहता है। संक्षेप यह कि—गुणों की अपेक्षा अपगुण अधिक शीघ्र आते हैं। परन्तु—हमने जो यथा हुआ है, वही सच्चा स्वामी है।

(२) दाता क्षमी गुणग्राही, स्वामी दुःखेन लभ्यते।

अर्थः—प्रसंगोपात्त कुछ इनाम देनेवाला क्षमावान्, और केवल गुणको ही ग्रहण करने वाला स्वामी भाग्य ही से मिलता है।

—— ० ——

५२ प्रश्नः—सेवक किसको कहते हैं ?

उत्तर— (क) राजसेवा मनुष्याणामसिधारावलेहनम्।
व्याघ्रीगात्र परिष्वङ्गो व्यालीवदनचुम्बनम्॥

अर्थः—राजाओं की सेवा करना मनुष्यों के लिये तलवार की धारको चाटना सिंहनी के साथ में भेंट करना या सर्पिणी के मुखको चुम्बन करने के समान है—अर्थात् अत्यन्त कठिन है।

(ख) शुचिर्दक्षोऽनुरक्तश्च, जाने भृत्योऽपि दुर्लभः।

पवित्र आचरणवाला व्यवहार चतुर और स्वामी के प्रति भक्ति भाव रखने वाला सेवक भाग्य ही से मिलता है।

——————

५३ प्रश्नः—गुण—ग्राही किसको कहते हैं ?

उत्तर— दुर्भगो विकलो मूर्खो, निर्विवेको नपुंसकः।
नीचकर्मकरो नीचा, गुणद्रूपणकारकः॥

अर्थात्‌:—जो मनुष्य गुरु-देव की निन्दा मे राग रखता है, वह गुरु-द्रोही है। वह नीच कर्म का करने वाला, मन्दभागी विकलचित्त, मूर्ख और नपुसक होगा।

—— ० ——

५४ प्रश्न.— कृतघ्न किसको कहते है ?

उत्तर.— उपकारोऽपि नीचानामपकारो हि जायते।
पयःपानं भुजङ्गानां, केवलं विषवर्धनम्‌ ॥

अर्थः—नीच-कृतघ्न-मनुष्य पर किया हुआ उपकार, अपकार सरीखा फल देता है। जैसे-सर्प को दूध पिलाओ, तो वह केवल विष की ही वृद्धि करता है।

शोकं मा कुरु कुक्कुर सत्वेष्वहमधम इति मुधा साधो।
कष्टादपि कष्टतरं द्रष्ट्वा श्वानं कृतघ्ननामानम्‌ ॥

भावार्थः—हे कुकुर! तुम व्यर्थ ही यह देखकर शोक मत करो कि—"प्राणियों मे मैं अधम (कुत्ता) हू" क्योंकि—अधम से भी अधिक अधम (सच्चा कुत्ता) तो कृतघ्न है। (जो दूसरे के कृत-किये हुये उपकार को नहीं मानता वह कृतघ्न)

—— ० ——

५५ प्रश्नः— आत्मा किसको कहते हैं ?

उत्तर·— आत्माः कः ? स्थूल-सूक्ष्म-कारण-शरीराद्व्यतिरिक्तः पंचकोशातीतः सन्‌ अवस्थात्रयसाक्षी सच्चिदानंदस्वरूपःसन्‌ यस्तिष्ठति स आत्मा।

अर्थ—आत्मा क्या है ? स्थूल शरीर, सूक्ष्म शरीर, और कारणशरीर से भिन्न, पञ्चकोशों से पर होकर तीनों अवस्थाओं का साक्षी और सच्चिदानन्द-स्वरूप वाला होकर जो रहता है, वह आत्मा है।

— ० —

५६ प्रश्न— परमात्मा किसको कहते हैं ?

उत्तर— प्रकृतिविकृतिभिन्नं शुद्धसत्त्वस्वभावं,
सदसदिदमशेषं भासयन्निर्विशेषः ।
विलसति परमात्मा जाग्रदादिष्ववस्था—
स्वहमहमिति साक्षात्साक्षिरूपेण बुद्धेः ॥

अर्थ—परमात्मा अव्यक्त-माया और उसके कार्यों से भिन्न है, शुद्ध-सत्व स्वभाव है जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में "मैं सोया मैंने देखा" ऐसा "अहं" इस ज्ञान का विषय होने से साक्षात् बुद्धि का साक्षी होकर सारे स्थूल सूक्ष्म जगत् को जो निर्विशेष रूप से प्रकाश करता हुआ स्वयं प्रकाशित हो रहा है।

५७ प्रश्न— जीव किसको कहते हैं ?

उत्तर—चिदाभास युक्त अन्तःकरण सहित कूटस्थ चैतन्य को जीव है ।

स्थूलशरीराभिमानी जीवनामकं ब्रह्म प्रतिबिम्बं भवति ।
स एव जीवः प्रकृत्या स्वस्मात् ईश्वरं भिन्नत्वेन जानाति ।
"अविद्योपाधिः सन् आत्मा जीव" इत्युच्यते ॥

अर्थः—स्थूल शरीर में "हूं" पन का अभिमान रखने वाला जीव नाम का ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होता है। वही जीव अविद्या के कारण ईश्वर को अपने से भिन्न जानता है। अविद्या रूप उपाधि वाला होने से आत्मा जीव ऐसा कहाता है।

—— o ——

५८ प्रश्नः— साक्षी किसको कहते हैं ?

उत्तरः— विज्ञाते साक्षिपुरुषे, परमात्मनि चेश्वरे।
नैराश्यै वन्धमोक्षे च, न चिन्ता मुक्तये मम॥

अर्थः—देह इन्द्रिय और अन्तःकरण के साक्षी, सर्व शक्तिमान् परमात्मा का ज्ञान होने पर पुरुष को वन्ध तथा-मोक्ष की आशा नहीं होती है और मुक्ति के लिये भी चिन्ता नहीं होती है।

—— o ——

५९ प्रश्नः— कूटस्थ किसको कहते हैं ?

उत्तरः— घटं जलं तद्गतमर्क विम्बं,
विहाय सर्वं विनिरीक्ष्यतेऽर्कः।

कूटस्थ एतत्त्रितयावभासकः,
स्वयं प्रकाशोविदुषा यथातथा॥

अर्थः—जैसे घट, जल और जलमें पडा हुआ सूर्य्य का प्रतिविम्व–इन सबों को छोड देने से, इन तीनों के प्रकाशक,

दर्ग—इन तीनों से निर्लेप स्वयं प्रकाश-स्वरूप सूर्य्य को विद्वान् लोग पृथक् देख लेते हैं। इसी तरह "कूटस्थ-सच्चिदानन्द" चिदाभास जीव, देहरूप और बुद्धि इन तीनों का अवभासक 'स्व प्रकाश' है।

—— o ——

५० प्रश्नः— प्रत्यग् आत्मा किसको कहते हैं।

उत्तरः— अहं पदार्थस्त्वहमादिसाक्षी,
निस्य सुषुप्तावपि भावदर्शनात्।
ब्रूते ह्यजोनित्य इति श्रुतिः स्वयं,
तत्प्रत्यगात्मा सदसद्विलक्षणः॥

अर्थः—अहंकार आदि का 'साक्षी' व 'नित्य' जो सुषुप्ति काल में भी वर्तमान रहता है, वह स्वयं जीवात्मा—सत् असत् से विलक्षण, सर्वव्यापी "प्रत्यगात्मा" है। क्योंकि—कठ २।१।१८ की श्रुतिः— "अजो नित्यः शाश्वतः"—जीवात्मा को अजन्मा अमर और उत्पादकता से रहित कह रही है।

—— o ——

५१ प्रश्नः— सच्चिदानन्द किसको कहते हैं?

उत्तरः— सत्किम्? कालत्रयेऽपि तिष्ठति इति सत्।
चित्किम्? ज्ञानस्वरूपः।
आनन्दः कः? सुखस्वरूपः।

अर्थः—सत् क्या ? तीनों कालों में जो एक समान रहता है वह 'सत्'

चित् क्या ? ज्ञान स्वरूप है—वह 'चित्'।

आनंद क्या ? सुख स्वरूप है—वह 'आनन्द'।

—(वि. चू)

—— o ——

६२ प्रश्नः— चैतन्य किसको कहते हैं ?

उत्तरः— स वेत्ति वेद्यं तत्सर्वं, नान्यस्तस्यास्ति वेदिता।
विदिता विदिताभ्यां तत्पृथग्बोध स्वरूपकम् ॥

अर्थः—जो ज्ञान रूप है और सर्व घटादिक प्रपंच को जानता है, और जिसको अन्य मन इन्द्रिय आदिक कोई जान सक्के नहीं सो चैतन्य है।

—(पं दं)

—— o ——

६३ प्रश्नः— शिव किसको कहते हैं ?

उत्तरः— लक्ष्यालक्ष्य गतिं त्यक्त्वा, यस्तिष्ठेत्केवलात्मना।
शिव एव स्वयं साक्षादयं ब्रह्मविदुत्तमः ॥

अर्थः—जो लक्ष्य अलक्ष्य वस्तुओं की गति को त्याग कर केवल एक आत्म स्वरूप से सदा स्थिर होते है, वे साक्षात् "शिव स्वरूप हैं" वे ही ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम हैं।

—— o ——

५४ प्रश्न— जड़ किसको कहते हैं ?

अर्थः—जो आपको न जाने और दूसरे को भी न जाने, ऐसा-अज्ञान ('नहीं जानता हूँ' ऐसे व्यवहार का हेतु आवरण विक्षेप-शक्तिवाला, अनादि भावरूप अज्ञान पदार्थ है) और उसके-कार्य 'भूत' (आकाशादिक पांचभूत) 'भौतिक' (भूतों के कार्य-पिंड ब्रह्माण्डादिक) "पदार्थ जड़ हैं।"

—o—

५५ प्रश्नः—मैं कौन हूँ ?

उत्तरः— निर्विकल्पकमनल्पमक्षरं,

यत् क्षराक्षरविलक्षणं परम् ।

नित्यमव्ययसुखं निरञ्जनं,

ब्रह्म तत्त्वमसि भावयात्मनि ॥

अर्थः—नाम रूप के विकल्प से रहित सब व्यापक, नाश-रहित, क्षर और माया से परम विलक्षण नित्य, अव्यय, सुख स्वरूप, निर्मल जो पर ब्रह्म है, वो तुम्हीं हो।

—o—

५६ प्रश्नः—आप कौन हैं ?

उत्तरः—सर्वाधारं सर्ववस्तुप्रकाशं,

सर्वाकारं सर्वगं सर्वशून्यम् ।

नित्यं शुद्धं निश्चलं निर्विकल्पं

ब्रह्माद्वैतं यत्तदेवाहमस्मि ॥

अर्थः—सबका आधार, सब वस्तुओं का प्रकाशक, सबका आकार, सबमें रहने वाला, सबसे शून्य, शुद्ध, निश्चल, विकल्प से रहित, अद्वितीय ब्रह्म मैं हूँ।

—— o ——

६७ प्रश्नः—यह सब क्या है ?

उत्तरः— सदिदं परमाद्वैतं स्वस्मादन्यस्य वस्तुनोऽभावात् ।
न ह्यन्यदस्ति किञ्चित्सम्यक् परमार्थ-
तत्वबोधदशायाम् ॥

अर्थः—आत्मतत्व बोध की दशा में ब्रह्म से भिन्न सब वस्तुओं के अभाव होने के बाद अद्वितीय पर-ब्रह्म ही सम्यक दीखता है। ब्रह्म से भिन्न कुछ नहीं दीखता क्योंकि, —जैसे सृष्टि के पहिले नहीं, अन्त में नहीं, तब अबही कैसे होगा ? आदि अन्त की तरह "यह सब ब्रह्म ही है"।

—— o ——

६८ प्रश्न —मनुष्य कितने प्रकार के होते हैं ?

उत्तरः— पामरो विषयी चैव, जिज्ञासुर्मुक्त एव च ।
चतुर्विधा नरा लोके, विद्वद्भिः सम्प्रकीर्तिताः ॥

पुरुष चतुर्विध होत जग, पामर विषयी जान ।
त्रतिय जिज्ञासु चतुर्थ को, मुक्त सुखद पहिचान ॥

अर्थः—संसार में ४ प्रकार के पुरुष होते हैं—१ पामर २ विषयी ३ जिज्ञासु ४ मुक्त ।

६९ प्रश्न:— विषयी किसको कहते हैं ?

उत्तर— इन्द्रियार्थेष्वभिरतस्तत्प्राप्त्यै प्रायुषोऽव्यय ।
अहोरात्रम्प्रकुरुते, विषयी स प्रकीर्तितः ॥

रूप रसादि विषय मह जिनमें रहे लपटाय ।
आयु बिगोवत ताहि में सो नर विषयी कहाय ॥

अर्थः—शब्द स्पर्श रूप, रस और गन्ध ये जो पांच इन्द्रियों के विषय हैं इनमें जो मनुष्य रात्रि दिन लिपटा रहता है और इन्हीं की प्राप्ति और सेवन के उद्यम में आयु को खोता रहता है वह पुरुष विषयी कहाता है।

[२] शास्त्रमार्गस्थविषयान्भुञ्जानः कर्मलौकिकान् ।
आमुष्मिकांश्चाचरते, विषयी स प्रकीर्तितः ॥

भावार्थः—जो पुरुष शास्त्र विहीन विषयों को भोगता हुआ इस लोक के तथा—स्वर्गादिक भोगों की प्राप्ति के लिये कर्म करता है, वह विषयी कहाता है ।

—— ०——

७० प्रश्न:— पामर किसको कहते हैं।

उत्तर— पापपुण्ये न जानाति, धर्माधर्मौ तथैव च ।
स नरः पामरो लोके, मन्त्रज्ञैः कथितः स्फुटम् ॥

पाप पुण्य जाने नहीं नहिं धर्माधर्म विचार ।
सो नर पामर जगत में कहते शास्त्र पुकार ॥

अर्थः—जो मनुष्य पाप और पुण्य को नहीं जानता तथा धर्म क्या है और अधर्म क्या है इसका विचार जिसमें नहीं है वह मनुष्य पामर है ऐसा शास्त्र पुकार करके कहते हैं।

(२) निषिद्धेष्विहभोगेषु, लौकिकेषु हि ये रताः।
शास्त्रसंस्कार रहिताः, पामरास्ते प्रकीर्तिताः॥

अर्थः—जो मनुष्य इस लोक के निषिद्ध भोगों में आशक्त शास्त्रीय संस्कारों से रहित हैं वे पामर कहे जाते हैं।

—— o ——

७१ प्रश्नः—जिज्ञासु किसे कहते हैं?

उत्तरः— चतुर्भिःसाधनैर्युक्तः, श्रद्धालुर्गुरुसेवकः।
अकुतर्कोह्यात्मरुचिर्जिज्ञासुः सप्रकीर्तितः॥

विवेकादि साधन चतुर, गुरु-सेवक श्रद्धालु।
करे कुतर्क न नेक जो, इष्ट-निष्ट जिज्ञासु॥

अर्थः—विवेक, वैराग्य, षट्सपत्ति और मुमुक्षुता, इन चारों साधन सहित हो, ब्रह्म वित्-गुरु और वेदान्त-शास्त्र के बचनों में परमविश्वासी हो, कुतर्क कदाचित् करे नहीं, ऐसा जो- स्वस्वरूप के जानने की तीव्र इच्छा वाला अधिकारी सो उत्तम जिज्ञासु है।

—— o ——

७२ प्रश्नः—मुमुक्षु किसको कहते है?

उत्तर — आत्माम्भोधेस्तरङ्गोऽस्म्यहमिति गमने,
भावयन्नासनस्थः,

सेवित्वात्मानुविद्धोमयिहरहमितिवा-
स्वीन्द्रियार्थप्रतीतौ ।
दृष्टोऽस्म्यात्मावलोकादिति शयन विधौ,
मग्न आनन्दसिन्धा-
वन्तर्निष्ठो मुमुक्षुः स खलु तनुभृतां,
यो नयत्येवमायुः ॥
—(शतश्लोकी ११)

अर्थः—जो मनुष्य चलते समय ऐसी भावना करता है कि—"मैं आत्मारूपी समुद्र की ही एक तरंग हूँ" आसन पर स्थित होते समय सोचता है कि—"मैं ज्ञानरूपी धागे में पिरोया हुआ एक मनका हूँ" तथा-इन्द्रियों के विषयों की प्रतीति होने पर, अकस्मात् यह समझने लगता है कि—"अहा! मैं तो आत्मा का ही दर्शन करके आनन्दित हो रहा हूँ" और जब सो जाता है, तो अपने को "आनन्द समुद्र में ही डूबा हुआ" जानता है। देह धारियों में जो पुरुष इस प्रकार अपनी जीवन यात्रा का निर्वाह करता है वह निश्चय ही एक अन्तर्निष्ठ "मुमुक्षु" है।

—०—

७१ प्रश्नः— मुक्त किसको कहते हैं ?

उत्तर— अन्तर्बहिः सर्व स्थिरजङ्गमेषु,
ज्ञानात्मनाधारतया विलोक्य ।
त्यक्ताऽखिलोपाधिरखण्डरूपः,
पूर्णात्मना यः स्थित एव मुक्तः ॥

अर्थ—वृक्ष आदि जितने स्थावर जीव है और मनुष्य आदि जितने जगम है, उन सब मे बाहर और भीतर अपने आत्मा को जान, एव—सबकी कल्पना का आधार भूत अपने आत्मा को देखकर, सम्पूर्ण उपाधियों को छोडकर, अखण्ड रूप से परिपूर्ण होकर— जो मनुष्य स्थित है, वही मनुष्य 'मुक्त' कहा जासकता है। —(वि. चू ३३९)

—— o ——

७४ प्रश्नः— वाचाल किसको कहते है ?

उत्तर— विचारितमलं शास्त्र, चिरमुदग्राहितं मिथः ।
संत्यक्त वासनान् मौना दृते नास्त्युत्तमं पदम् ॥

अर्थात्ः—शास्त्र बहुत विचारे, परस्पर में उसका बोध भी भली प्रकार किया-कराया, परन्तु—वासना से अत्यन्त मुक्त ऐसे "मौन" विना—उत्तमपद की प्राप्ति कहाँ ? —(यो. वा.)

(२) वाग्वैश्वरी शब्दझरी, शास्त्रव्याख्यानकौशलम् ।
वैदुष्यं विदुषां तद्वद्भुक्तये न तु मुक्तये ॥

अर्थः—विद्वानों की शब्द की झड़ी, एवम्—शास्त्र के व्याख्यान की कुशलता, विद्वत्ता मात्र है। यह सब पहिलों की तरह भुक्ति के लिये ही है, मुक्ति का सामान नहीं है।

(वि चू ६०)

—— o ——

७४ प्रश्नः— वाचक ज्ञानी किसको कहते हैं ?

उत्तरः—सर्वे ब्रह्म वदिष्यन्ति, संप्राप्ते तु कलौयुगे ।
नानुतिष्ठन्ति मैत्रेय, शिश्नोदर परायणाः ॥

अर्थः—ऋषि याज्ञवल्क्य कहते हैं कि—हे मैत्रेय ! कलि युग में सब लोग "ब्रह्म ब्रह्म" बोलेंगे, परन्तु—उनकी वृत्तियाँ मैथुन और खानपान में आसक्त होने से वे ब्रह्मरूप बनने को तो चाहते, परन्तु साधनों के लिए परिश्रम करने के नहीं ।

(२) कुशला ब्रह्मवार्तायां, वृत्तिहीना सुरागिणः ।
तेऽप्यज्ञानितयानूनं, पुनरा यान्ति यान्ति च ॥
—(अपरोक्षानुभूति)

अर्थः—ब्रह्मज्ञान की बातें करने में कुशल वाचाल परन्तु—उसमें वृत्ति नहीं करके विषयों में राग रखने वाले अज्ञानी पुरुष निश्चय आवागमन के चक्र में पड़े रहते हैं ।

(३) अहत्वा शत्रुसंहारमगत्वाखिलभूश्रियम् ।
राजाहमिति शब्दान्नो, राजा भवितुमर्हति ॥

अर्थः—जैसे कि—सब शत्रुओं के नाश किये बिना और अखिल भूमण्डल की श्री को पाये बिना "हम राजा हैं" ऐसा कहने मात्र से कोई राजा नहीं हो सकता । वैसे ही—आत्म तत्व के बिना ज्ञान "मैं ब्रह्म हूं" ऐसा कहने से ब्रह्म नहीं होता ।
—(वि चू ६५)

—— o ——

७६ प्रश्नः — संसार का पराजय किस प्रकार होता है ?

उत्तरः— हरो यद्युपदेष्टा ते, हरिः कमलजोऽपि वा ।
तथापि न तव स्वास्थ्यं, सर्व विस्मरणादृते ॥

अर्थः—हे शिष्य ! साक्षात् सदाशिव तथा-विष्णु भगवान् और ब्रह्माजी ये तीनों महासमर्थ भी तुझे उपदेश करें, तो भी संपूर्ण प्राकृत, अनित्य-वस्तुओं की विस्मृति विना, तेरा चित्त शान्ति को प्राप्त नहीं होगा, और जीवन्मुक्त दशा का सुख प्राप्त नहीं होगा । जीवन्मुक्ति होने ही से संसार का पराजय हो सकता है ।

—— ०,——

७७ प्रश्नः— इस संसार से आज तक कोई हाथ धोचुका है या नहीं ?

उत्तर — तमाराजेवा (आप सरीखे)

अर्थः—संसार में जीव प्रायः आत्म विमुख ही देखे जाते हैं, उनमें "विरले ही जीवन्मुक्त ज्ञानवान् होते हैं" सो हे शिष्य ! (राम जी !) श्रवण करो, ऐसा कह वशिष्ठ जी कहते हैं:—देवता विषे ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सदा आत्मानन्द में मग्न हैं । चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, इन्द्र, धर्मराजा, वरुण, कुबेर, बृहस्पति शुक्र, नारद, कचते आदि लेकर जीवन्मुक्त पुरुष हैं । सप्तऋषि और दक्षप्रजापति से आदि लेकर जीवन्मुक्त हैं । सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार चारों जीवन्मुक्त हैं । अपर भी बहुत मुक्त हैं । सिद्धों में-कपिलमुनि आदिक

जीवन्मुक्त हैं। यक्षों में विद्याधरों में योगिनी में विषे जीव न्मुक्त हैं। और दैत्योंमें हिरण्यकशिपु, प्रह्लाद बलि, विभीषण, इन्द्रजित सारमेय, मिश्राप्तुर, नमुचि आदिक जीवन्मुक्त हैं। मनुष्य विषे-राजर्षि, ब्रह्मर्षि। नाग विषे शषनाग वासुकि आदिक जीवन्मुक्त हैं। ब्रह्मलोक विष्णुलोक शिवलोक है। कोई २ विरले जीवन्मुक्त हैं। हे राम जी! जाति २ विषे संक्षेप से जीवन्मुक्त हुये हैं, सो कहे हैं और जहाँ २ देखा है, वहाँ २ अज्ञानी बहुत हैं, ज्ञानवान् कोइक विरला दृष्टि आता है। जैसे—जहाँ २ दूसर वृक्ष बहुत हैं, परन्तु—कल्पवृक्ष कोई विरला होता है। तैसे ही-संसार विषे अज्ञानी बहुत दृष्टि आते हैं, ज्ञानी कोई विरला है। हे रामजी! ऐसा दूसरा कोई नहीं जिसको आत्मपद विषे स्थिति हुई है सोई धन्य है और संसार-समुद्र तरना तिनही का सुगम है।

—(यो वा नि प्र २८७)

—o—

८८ प्रश्न—सत् शास्त्र क्या है?

उत्तर—या वेदबाह्याः स्मृतयो, याश्चकाश्च कुदृष्टयः।
सर्वास्ता निष्फलाः प्रेत्य, तमोनिष्ठाहि ताःस्मृता॥

अर्थ—जो वेद-मत से विरुद्ध मत दर्शाने वाली स्मृतियां तथा-कुदृष्टियां (कुविचार) हों, उन सब पुस्तकों को वृथा जानना क्योंकि—वे अज्ञानरूप अन्धकार में लेजाती हैं।

—(मनु. १२-९५)

(२) शास्त्राण्यधीत्य मेधावी, अभ्यस्य च पुनः पुनः।
परमं ब्रह्म विज्ञाय, उल्कावत्तान्यथोत्सृजेत्॥

अर्थात्‌ः—जिन ग्रन्थों में आत्मा-परमात्मा का विवेक हो, जिसमें स्वस्वरूप की प्राप्ति का मार्ग बताया गया हो वे ही सत्शास्त्र हैं- धारणा बुद्धि वाले अधिकारी पुरुष को चाहिये कि-स्वात्मकल्याण के लिये ऐसे ही शास्त्रों को पढकर और उनका वारवार अभ्यास करके परब्रह्म को जान लेने के पश्चात्-उल्का अर्थात् जले हुए काष्ठ की तरह उनका त्याग कर दे। —(प द ४-४५)

—— o ——

७९ प्रश्नः— सत्-शास्त्र के अध्ययन करने वाले अधिकारी का लक्षण क्या ?

उत्तरः— मेधावी पुरुषो विद्वानूहापोहविचक्षणः ।
अधिकार्यात्म-विद्यायामुक्तलक्षणलक्षितः ॥

अर्थः— आत्म-विद्या का अधिकारी वही है, जिसकी बुद्धि धारणा वाली है, तर्क में चतुर है, गुरु के उपदेश में और वेद वेदान्त में विश्वास तथा—बाह्य विषयों में वैराग्ययुक्त और लोभ रहित है। अर्थात्—विषयाभिलाषी लोभी पुरुष आत्म-विद्या के कभी अधिकारी नहीं होते।

———

८० प्रश्नः— माया किसे कहते है और उसके दूसरे दूसरे नाम क्या हैं ?

उत्तर.— अव्यक्तनाम्नी परमेशशक्ति-
रनाद्यविद्या त्रिगुणात्मिका परा ।

कार्य्यानुमेया सुधियैव माया,
यया जगत्सर्व मिदं प्रसूयते ॥

अर्थ— ईश्वर की जो 'अव्यक्त' नाम की शक्ति है, उसी को 'माया' कहते हैं। यह 'अनादि' है, इसी को 'अविद्या' कहते हैं। यह 'त्रिगुणात्मिका' यानी—रज, तम, और सत्वमय है। माया का अनुमान कार्य्य से होता है। इसी से सम्पूर्ण दृश्य जगत् उत्पन्न हुआ है।

माया अविद्या प्रकृति शक्ति, अव्यक्त, अव्याकृत अजा, अज्ञान, तम तुच्छा अनिर्वचनीया सत्या, मूला, तूला और योनि ये सब माया के नाम हैं।

—— ० ——

८१ प्रश्न:— अन्वय व्यतिरेक किसे कहते हैं?

उत्तर— अन्वय-व्यतिरेकाभ्यां, पंचकोश-विवेकतः।
स्वात्मानं तत उद्धृत्य, परं ब्रह्म प्रपद्यते ॥

अर्थ 'अन्वय' और 'व्यतिरेक करके पंचकोष के विवेक से इनसे (पंचकोषों से) आत्मा का उद्धार कर (अधिकारी जीव) परब्रह्म को प्राप्त होता है। —(पं द १०)

"यत्सत्त्वे यत्सत्त्वमन्वयः, यदसत्त्वे यदसत्त्वे व्यतिरेकः"

सर्प में अनुवृत्ति होना यह 'अन्वय और व्यावृत्ति होना यह 'व्यतिरेक' कहलाता है। इस अन्वय—व्यतिरेक करके "अन्न मयादिक पंचकोषों से प्रत्यगात्मा भिन्न है", ऐसा जानकर मुमुक्षु-पुरुष अन्नमयादि-कोषों से आत्मा को अलग निकालते

है। अर्थात्—'आत्मा इन कोषों से भिन्न है' ऐसा जानते है, ऐसा ज्ञान होने के पश्चात् ही, वे सच्चिदानन्दरूप परब्रह्म को प्राप्त होते है।

—— o ——

८२ प्रश्नः— पंचकोष किसे कहते है ?

उत्तरः— देहादभ्यंतरः प्राणः, प्राणादभ्यंतरं मनः।
ततः कर्ता ततो भोक्ता, गुहा सेयं परंपरा ॥

अर्थः—देह से (अन्न से) अभ्यन्तर (दुर्ज्ञेय) प्राण, प्राण से अभ्यन्तर मन, उस (मन) से अभ्यन्तर-कर्ता (विज्ञान), विज्ञान से अभ्यन्तर भोक्ता (आनंद) है वे इस परम्परा गुहा के नाम से कहे जाते हैं। अन्नमय-कोष, प्राणमय-कोष, मनोमय-कोष, विज्ञानमय-कोष, और पांचवा आनन्दमय-कोष, है।

—— o ——

८३ प्रश्नः— बाबा बनने ही से क्या कल्याण होता है या गृहस्थ भी कल्याण पा सकता है ?

उत्तरः— हातुमिच्छति संसारं, रागी दुःखजिहासया।
वीतरागो हि निर्मुक्तस्तस्मिन्नपि न खिद्यति ॥

अर्थः— जो विषयासक्त पुरुष है, वह अत्यन्त दुःख भोगने के अनन्तर दुःखों के दूर होने की इच्छा करके ससार को त्याग करने की इच्छा करता है और जो वैराग्यवान् पुरुष है वह दुःखों से रहित हुआ ससार (गृहस्थी) में रह कर भी खेद को नहीं प्राप्त होना है।

८४ प्रश्न— कल्याण भीख माँग कर खाने से है या कमा कर खाने से ?

उत्तर— अशक्तो भिक्षयाऽऽदद्यात् शक्तश्च पौरुषं चरेत् ।
श्रेयस्तु श्रीभगवतो श्रीगुरोश्च प्रसादतः ॥

अर्थ— असमर्थ भीख माँग कर और समर्थ पुरुषार्थ द्वारा जीवन निर्वाह करे। परन्तु—"कल्याण" तो भगवद्-भजन और श्रीगुरु की कृपा से ही होता है।

— ० —

८५ प्रश्न— कर्म करने से कल्याण होता है या उपासना करने या ज्ञान प्राप्त करने से ?

उत्तर— वदन्तु शास्त्राणि यजन्तु देवान्,
कुर्वन्तु कर्माणि भजन्तु देवताः ।
आत्मस्वबोधेन विनापि मुक्ति-
र्न सिध्यति ब्रह्मशतान्तरेऽपि ॥

अर्थ— भले ही शास्त्रों को पढ़ो-पढ़ाओ, यज्ञ करो-कराओ, देवताओं को पूजो चाहे और भी अनेकों काम्य-कर्म करो, इस तरह करने से सैकड़ों ब्रह्माओं के बीतने पर भी आत्म-ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती, किन्तु—"आत्म-ज्ञान होने ही से मोक्ष होता है"।

चित्तस्य शुद्धये कर्म, न तु वस्तूपलब्धये ।
वस्तुसिद्धिर्विचारेण, न किञ्चित्कर्मकोटिभिः ॥

अर्थः— मोक्षकामी को केवल चित्त शुद्ध होने के लिये ही कर्मों का विधान है, यही उन कर्मों का फल है। और आत्म-साक्षात्कार तो केवल ज्ञान ही से होता है, सिवा इसके करोड़ों कर्मों से भी नहीं हो सकता।

— o —

८६ प्रश्नः— हनुमान, देवी आदि की उपासना करने का क्या फल है ?

उत्तरः— येऽप्यन्यदेवताभक्ता, यजन्ते श्रद्धयान्विताः।
तेऽपि मामेव कौन्तेय, यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥
यान्ति देवव्रतादेवा न्पितॄन्यान्ति पितृव्रताः।
भूतानि यान्ति भूतेज्या, यान्ति मद्याजिनोऽपिमाम्

अर्थः—यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुये जो सकामी भक्त, दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मेरे को ही पूजते हैं, किन्तु-उनका वह पूजना अविधि-पूर्वक है, अर्थात्–अज्ञान पूर्वक है। कारण, यह नियम है कि–"देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं" इस लिये मेरे भक्त का पुनर्जन्म नहीं होता। —(गीता ७-२३-२५)

— o —

८७ प्रश्नः— हे कृपालो ! मुझे कौन कर्तव्य करना योग्य है ? समय बहुत अल्प रह गया है, प्रश्न करते करते मुँह का थूक सूख गया है, आप कृपा करके ऐसी सरल रीति से कहिये जो मेरी बुद्धि में अनायास ठस जाय।

उत्तरः— पश्य भूतविकारांस्त्व, भूतमात्रान्यथार्थतः ।
तत्क्षयाद् बन्धनिर्मुक्त, स्वरूपस्थोभविष्यसि ॥

अर्थः— हे शिष्य ! भूत विकार, अर्थात्-देह, इन्द्रिय आदि को वास्तव में-'भूत' जो पञ्च महाभूत, उनका 'विकार' जान, आत्मस्वरूप मत जान ! यदि 'गुरु', श्रुति और 'अनुभव' से ऐसा निश्चय कर लेगा ! तो तत्काल ही संसार बन्धन से मुक्त होकर शरीर आदि से विलक्षण जो आत्मा, उस आत्मस्वरूप के विषे स्थिति को प्राप्त होगा । क्योंकि-शरीर आदि के विषे आत्मभिन्न 'अनात्म' आदि का ज्ञान होने पर, इन शरीर आदि का 'साक्षी' जो 'आत्मा' सो शीघ्र ही जाना जाता है ।

—— ०.——

८८ प्रश्नः— पंच ज्ञानेन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उत्तरः— बुद्धीन्द्रियाणिश्रवणं त्वगक्षि,
घ्राणं च जिह्वा विषयावबोधनात् ।

अर्थः—श्रोत्र, त्वग्, अक्षि, जिह्वा, घ्राण ये पांच इन्द्रियाँ शब्द, स्पर्श, रूप गन्ध इन पांचों विषयों के अवबोध कराने वाली होने के कारण ज्ञानेन्द्रिय कहाती हैं ।

—— ०——

८९ प्रश्नः— पंच कर्मेन्द्रिय किसको कहते हैं ?

उत्तरः— वाक्पाणि पादा गुदमप्युपस्थः,
कर्म्मेन्द्रियाणि प्रवणेन कर्मसु ॥

अर्थः—वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ इन पांचों को, वचन, आहरण, गमन, विसर्ग, आनन्द आदि कर्मों मे प्रवृत्त होने के कारण-कर्मेन्द्रिय कहते हैं।

९० प्रश्नः— अन्तःकरण किसको कहते हैं ?

उत्तरः— निगद्यतेऽन्तःकरणं मनोधीरहं-
कृतिश्चित्तमितिश्चवृत्तिभिः ।
मनस्तु संकल्पविकल्पनादिभि-
र्बुद्धिः पदार्थाध्यवसायधर्मतः ॥
अत्राभिमानादहमित्यहंकृतिः,
स्वार्थानुसन्धानगुणेन चित्तम् ॥

अर्थः—अन्तःकरण के वृत्ति भेद से मन, बुद्धि, अहकार चित्त ये चार भेद होते हैं। संकल्प विकल्प करना, मनकी वृत्ति हैं।' पदार्थों का निश्चय करना, 'बुद्धि का धर्म है।' अभिमान होना, यह 'अहकार का धर्म है।' विषयों पर अनुधावन करना, यानी-जाना, 'चित्त का धर्म है।'

९१ प्रश्नः— इनके देव, कार्य और उत्पत्ति स्थान क्या है ?

उत्तरः—बुद्धिश्चास्य विनिर्भिन्नां, वागीशोधिष्ण्य माविशत्
बोधेनांशेनबोद्धव्यं, प्रतिपत्तिर्यतोभवेत् ॥१॥

हृदयञ्चास्य निर्भिन्नं, चन्द्रमाधिष्ण्यम् माविशत् ।
मनसांशेनयेनासौ, विक्रियां प्रतिपद्यते ॥२॥
आत्मानं चास्य निर्भिन्नमभिमानोऽविशत्पदम् ।
कर्मणांशेन येनासौ, कर्तव्यं प्रतिपद्यते ॥३॥
सत्त्वं चास्य विनिर्भिन्नं, महाधिष्ण्यमुपाविशत् ।
चित्तेनांशेन येनासौ, विज्ञानं प्रतिपद्यते ॥४॥
—(भा स्क. ३ अ ६ श्लो २६, २४ २५, २६)

१ बुद्धि: धारे हुये काम का निश्चय करना यह बुद्धि इसके देवता ब्रह्मा ।

२ मन:—जो काम करने का स्फुरण हुआ है वह काम निश्चय करके करना अथवा नहीं करना, ऐसा जो संकल्प विकल्प होना है यह मन इसके देवता चन्द्रमा ।

३ अहंकार:—यह काम मैं करूंगा ऐसा जो अभिमान वह अहंकार इसके देवता रुद्र ।

४ चित्त:—किसी काम को कैसे करें तो अच्छा होय ऐसा जो चिन्तन करना है चित्त इसके देवता नारायण ।

— ० —

६९ प्रश्न— पंच प्राण किसको कहते हैं ?

उत्तर—प्राणापान व्यानोदान-समाना भवस्पर्शी प्राण ।
व्यपमथ इभिमदादिकानिमदात्मुखणं सलिलवत् ॥

अर्थः— प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, इन पाँच भेदों से पाँच प्रकार का होता है। यद्यपि–प्राण रूप एक ही है, तथापि–हृदय, गुदा, नाभि, कंठ, सर्व देह इन स्थानों पर रहने रूप वृत्तिभेद होने से पांच भेद हो जाते हैं। जैसे कि–विकार के भेद से सुवर्ण कटक, कुंडल आदि अनेक संज्ञाओं को प्राप्त होता है- जैसे कि–एक ही पानी भिन्न भिन्न स्थलों के सयोग से कड़ुआ, मीठा हो जाता है।

—— o ——

९३ प्रश्नः—'पच उपप्राण' किसको कहते ?

उत्तरः— नागः कूर्मोऽथ कृकलो, देवदत्तो धनञ्जयः ॥

अर्थः—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, और धनंजय यह पांच उपप्राण है।

'नाग' से उद्गार–(ओड़कार) होता है।

'कूर्म' से आँख मिचती है और खुलती है।

'कृकल' से छींक होती है।

'देवदत्त' से बगासी आती है।

'धनजय'–वायु सारे शरीर में रहकर शरीर को पुष्ट करता है।

—— o ——

९४ प्रश्न.—पच महाभूत किसको कहते है ?

उत्तर.— ब्रह्माश्रया सत्वरजस्तमोगुणात्मिका माया अस्ति तन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोस्तेजः। तेजस आपः। अद्भ्यः पृथिवी।

अर्थ—ब्रह्म के आश्रय से रही सत्वगुण रजोगुण और तमोगुण रूप 'माया' है इससे आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश से वायु, वायु से तेज, तेज से जल और जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई है, यह पंचभूत कहाते हैं। तथा—

तमः प्रधानप्रकृतेस्तद्भोगायेश्वराज्ञया।
वियत्पवनतेजोऽम्बुभुवो भूतानि जज्ञिरे॥

अर्थ—तमप्रधाना प्रकृति से उसीके भोगके लिये ईश्वराज्ञा से आकाश वायु तेज जल पृथ्वी ये पंचभूत उत्पन्न हुए हैं।

—— ० ——

६५ प्रश्न— सत्रह तत्व किसको कहते हैं?

उत्तर— बुद्धिकर्मेन्द्रियप्राणपञ्चकैर्मनसा धिया।
शरीरं सप्तदशभिः, सूक्ष्मं तल्लिङ्गमुच्यते॥

अर्थ—अपंचीकृत पंचमहाभूत के सत्रह तत्व का सूक्ष्म देह है। पांच ज्ञान इन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण मन और बुद्धि ये सत्रह तत्व हैं। यह लिंग शरीर कहाता है।

(पंच दशी)

—— ० ——

६६ प्रश्न— पचीस तत्व और उनके कार्य क्या हैं?

उत्तर— तद्भोगाय पुनर्भोग्य भोगाय तनुजन्मने।
पञ्चीकरोति भगवान्, प्रत्येकं वियदादिकम्॥

द्विधा विधाय चैकेकं, चतुर्धा प्रथमं पुनः ।
स्वस्वेतरद्वितीयांशै, र्योजनात्पंच पंच ते ॥

अर्थः—पंचीकृत पंच महाभूत के पच्चीस तत्व का स्थूल देह है ।

१ आकाश २ वायु ३ तेज ४ जल ५ और पृथ्वी ये पंच महाभूत है । पच महाभूत के २५ तत्व नीचे लिखे अनुसार हैं ।

१ आकाश के पांच तत्वः—काम, क्रोध, शोक, मोह और भय ।
२ तेज के पांच तत्वः—क्षुधा, तृषा, आलस्य, निद्रा और कान्ति ।
३ वायु के पांच तत्व—चलन, बलन, धावन, प्रसारण, और आकुचन ।
४ जल के पांच तत्वः—वीर्य, रुधिर, लाल, मूत्र और पसीना ।
५ पृथ्वी के पांच तत्वः—हाड, मांस, नाडी, त्वचा और रोम । —(पं द)

—— o,——

९७ प्रश्नः— मल की निवृत्ति किस करके होती है ?

उत्तरः— उद्दिष्टमिन्द्रियाणां हि, सत्यसम्भाषणादिकम् ।
कर्मकाण्डमथैतेन, मलदोषो निवार्यते ॥

यज्ञोदानं जपो होमः, सन्ध्यादि देहसत्क्रियाः ।
कर्मकाण्डमिदंज्ञेयं, पावनं मलनाशनम् ॥

भावार्थ —मल नाम पाप का है। मल दोष के दूर करने वास्ते सब शास्त्रों में 'सद् संभाषण' आदि वाक्यादि इन्द्रियों का कर्तव्यरूप कर्मकाण्ड लिखा है।

यज्ञ, दान तीर्थ, व्रत जप तप, होम तड़ाग आदि बनाना तथा संध्या तर्पणादिक साधनमात्र शारीरिक श्रम क्रिया है, सो सब कर्मकाण्ड कोटि में है।

—— o ——

६८ प्रश्नः— विक्षेप निवृत्ति काहे से होती है?

उत्तरः— उपासना बहुविधा-ध्यानयोगादिकीक्रिया।
जिज्ञासुभिरनुष्ठेया-विक्षेपस्य निवृत्तये॥

भावार्थः—विक्षेप (मन की चंचलता के) दूर करने के वास्ते अनेक प्रकार की सगुण वा—निर्गुण, सच्चिदानन्द परमेश्वर की प्राप्ति के वास्ते सब शास्त्रोंमें उपासना लिखी है। वा चित्त का किसी सूक्ष्म वा—स्थूल या त्रिपुटी में वा इष्ट दिव्य ज्योति इत्यादि वस्तु में बाहर वा अन्दर जोड़ना रूपी ध्यान लिखा है— ध्यान योगादि साधनमात्र मानसी क्रिया है, सो उपासनाकांड कोटि में है।

—— o ——

६९ प्रश्नः— आवरण की निवृत्ति क्या करने से होती है?

उत्तरः— एकमसमर्थ ज्ञानं, तदावरणहानये।

अर्थः—अज्ञान—आवरण की निवृत्ति वास्ते सब शास्त्रों विषे ज्ञान कांड ही लिखा है। जिस अन्तःकरण में पूर्व जन्म

के प्रयत्न से वा इस जन्म के प्रयत्न से पूर्वोक्त दोष नहीं, तिस पर शास्त्र का उपदेश भी नहीं, जिसमें मल विक्षेप दो दोष नहीं केवल अपने स्वरूप का न जानना–रूपी आवरण ही दोष है, तिसको केवल ज्ञानकांड का ही अधिकार है।

—केवल आत्मा को ब्रह्म रूप कथन करने वाले शास्त्र ज्ञानकांड है। ऐसे शास्त्रों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना कर्तव्य है।

—— ० ——

१०० प्रश्नः— तत्व पदार्थ–शोधन क्या है?

उत्तरः— तत्त्वंपदाभ्यामनधीयमानयो–
ब्रह्मात्मनोः शोधितयोर्यदीत्थम्।
श्रुत्वा तयोस्तत्त्वमसीति सम्य–
गेकत्वमेव प्रतिपाद्यते मुहुः॥

अर्थात्‌ः—"जीव ब्रह्मकी एकता" तथा "तत्वमसि" का विवेचन—छान्दोग्य छठे प्रपाठक में आठवें खण्ड से लेकर सोलहवें खण्ड तक ९ जगह "तत्वमसि" यह आया है। इस वाक्य को वेदोपनिषदों के चार महावाक्यों में सर्वप्रधान मानकर रखा है। इन श्लोकों में श्री शंकराचार्यजी भी इसे–कहते हैं। इसमें तीन पद है एक 'तत्' दूसरा 'त्वम्' और तीसरा 'असि'। तत्–जो तामसो–"माया" को उपाधिरूप से स्वीकार करके निमित्त कारण बना है, यह तत् पद का अर्थ है। त्वम्—"काम कर्म आदि से दूषित, मलिन—सत्व वाली

'अविद्या" को उपाधिरूप में स्वीकार करने वाला प्रश्न" यह इस 'त्वम्' पदका अर्थ है। असि—"दोनों की एकता का ग्रहण कराने वाला है" क्योंकि—विना एकता के त्वम् पद वाच्य जीव, तत् पद वाच्य ब्रह्म, नहीं बन सकता। इस कारण इन दोनों की एकता होनी अवश्य है, जो विना "भाग त्याग लक्षणा" के नहीं हो सकती।

यानी—'तामसी 'शुद्ध सत्वा और मलिन सत्वा' इन दोनों प्रकारों की माया के त्याग कर देने पर दोनों ही एक हैं। दोनों का एक ही स्वरूप है। अर्थात्—'परब्रह्म और 'जीव' दोनों की माया और अविद्यारूप उपाधि को छोड़ने पर अखण्ड सच्चिदानन्द ही लक्षित होता है। जैसे जो सृष्टि से पहिले पीछे एक दीखता है, उसी तरह सृष्टि दशा में भी वो एक है। अतः जीव और ब्रह्म दोनों एक हैं। ऐसा विचार करते रहने का नाम तत्व शोधन है।

श्लोकार्थ—तत् और त्वम् पदसे वाच्य रूप से नहीं कहे गये जो शोधित जीव और परमेश्वर हैं, उन दोनों का अभी दिखाई गई रीति के अनुसार भाग त्याग लक्षणा से "तत्वमसि" इस श्रुति से भली भांति बारम्बार एकत्व प्रतिपादन किया गया है।

——o——

१०१ प्रश्न—महावाक्य की प्राप्ति का अधिकार किस प्रकार प्राप्त होता है? और इसकी प्राप्ति से क्या होता है?

उत्तर — विवेकिनोविरक्तस्य, शमादिगुणशालिनः ।
मुमुक्षोरेव हि ब्रह्म-जिज्ञासा योग्यता मता ॥

अर्थ·—आत्म-अनात्म के विचार करने वाले विरक्त, शम, दम, उपरति, तितिक्षा, समाधान, श्रद्धा इन छः गुणों से सयुक्त और मोक्ष की इच्छा करने वाले पुरुष को ही, ब्रह्म जानने की इच्छा से विचार करने की योग्यता होती है, या ऐसा ही पुरुष ब्रह्म की उपासना कर सकता है।

(२) साधनान्यत्र चत्वारि, कथितानि मनीषिभिः ।
येषु सत्स्वेव सन्निष्ठा, यदभावे न सिध्यति ॥

अर्थः— बुद्धिमान पुरुषों ने ब्रह्म-जिज्ञासा मे चार साधन बताये है उन साधनों के होने पर ब्रह्म-निष्ठ होसकता है, उसके बिना ब्रह्म-जिज्ञासा नहीं हो सकती, साधन सम्पन्न पुरुष को ही महावाक्य की प्रप्ति का अधिकार प्राप्त होता है और महा-वाक्य की प्राप्ति से अपरोक्ष ज्ञान होता है जो मोक्ष का कारण है।

(३) आत्मानं सततं ब्रह्म, संभाव्य विहरेत्सुखम् ।
संसारे गतसारे यस्तस्य दुखं न जायते ॥

अर्थः— जो पुरुष आत्मा को निरन्तर ब्रह्मरूप निश्चय करके, सुखपूर्वक विचरता है, उसे असार-संसार में दुःख उत्पन्न होता नही।

—— ० ——

१०८ प्रश्न:— श्रवण मनन निदिध्यासन क्या है ?

उत्तर— श्रुत शतगुणं विद्यान्मननं मननादपि ।
निदिध्यासं लक्षगुणमनन्तं निर्विकल्पकम् ॥

अर्थ:— सब कर्मों को त्याग करके गुरु-मुख से "आत्म-वस्तु का श्रवण" करना अत्यन्त उत्तम है। श्रवण से भी सौगुना अधिक मनन अर्थात्– गुरु-मुख से सुनकर 'अपने मन में विचार करना' उत्तम है। मनन से भी लाखगुना निदिध्यासन अर्थात्–आत्म-वस्तु का विचार करके सदा चित्त में स्थिर करना उत्तम है। निदिध्यासन से भी अनन्तगुण 'निर्विकल्पक' उत्तम है।

[२] निर्विकल्प समाधिना स्फुटं, ब्रह्मतत्त्वमवगम्यते ध्रुवम् ।
नान्यथा चलतया मनोगते, प्रत्ययान्तरविमिश्रितं भवेत् ॥

अर्थ:—निर्विकल्प समाधि सिद्ध होने से निश्चय ही ब्रह्म-तत्त्व का "स्पष्ट-बोध" होता है। जब तक निर्विकल्प न हो तब तक मनकी गति के चंचल होने से बाह्य-वस्तुओं की प्रतीति से मिला हुआ ही आत्मतत्त्व रहेगा।

—o—

१०९ प्रश्न ?:— योगाभ्यास क्या है ? और उससे क्या प्राप्त होता है ?

उत्तर— भक्तामक्तिज्ञानयोगान्मुमुक्षो-
र्मुक्तेर्हेतुर्नाक साक्षात्पवेगी ।

योो वा एतेष्ववतिष्ठत्यमुष्य,
मोक्षोऽविद्याकल्पिताद्देहबन्धात् ॥

अर्थः—(श्रुति के कहे हुए मोक्ष के चार कारण)—मोक्ष के विषय मे साक्षात् श्रुति कहती है कि, श्रद्धा, भक्ति ज्ञान और "योग" ये सब मोक्ष के कारण हैं। जो मनुष्य इन सब का अनुष्ठान करता है, वह अज्ञान कल्पित देह-बन्धन से मुक्त होकर "मोक्ष पद" को पाजाता है। (वि चू. ४८)

(२) सर्वात्म सिद्धये भिक्षोः, कृतश्रवणकर्मणः ।
समाधिं विदधात्येषा, शान्तो दान्त इतिश्रुतिः ॥

(समाधि में श्रुति प्रमाण)–श्रोत्रिय, ब्रह्म-निष्ठ गुरुसे आत्म अनात्म के विवेक आदि के श्रवण किये हुए के लिये–सर्वात्म सिद्धि के लिये–श्रुति कहती है कि, "एव विच्छान्तो दान्त उपरतस्तितिक्षुः समाहितो भूत्वाऽऽत्मन्येवात्मान पश्यति" शास्त्र का श्रवण किया हुआ, इन्द्रिय और अन्तःकरण की वृत्तियों को रोके हुये, विरक्त और तितिक्षा से युक्त हो निर्वि-कल्प समाधि मे स्थिर होकर इसी शरीर में अपने आत्मा को देख लेता है तथा सबको अपना आत्मा देखता है ।

(३) आरूढ़-शक्तेरहमो विनाशः,
कर्तुं न शक्यः सहसापि पण्डितैः ।
ये निर्विकल्पाख्यसमाधिनिश्चला–
स्तानन्तरानन्तभवा हि वासनाः ॥

अहकार की पूर्वोक्त शक्ति जब तक बढी रहती है, तब तक उसका बल पूर्वक नाश करने में कोई भी पण्डित नही

समर्थ हो सकता। जो विद्वान् "निर्विकल्प समाधि" से चित्त को स्थिर करते हैं, उन्हें किसी जन्म की भी अनन्तानन्त वासनायें आत्मलाभ होने में प्रतिबन्धक नहीं होतीं।

[निर्विकल्प समाधि, तथा—उसका उपयोग]

'समाधि' सम्, आङ् उपसर्गपूर्वक 'धा' (धातु) से 'कि' प्रत्यय होकर "समाधि" शब्द बनता है, जिसका अर्थ-"योग" है। इसका विधान "श्वेताश्वतर उपनिषद्" के द्वितीयाध्याय में विस्तार के साथ आता है, जिसमें कि—कई एक यजुर्वेद के मंत्र दिये हुये हैं। 'अमृतनादोपनिषद्' में इसका विधान विस्तार के साथ मिलता है। तथा—"ध्यानबिन्दु" आदि कई उपनिषदों में इसका विधान है। वेदांत पंचदशीकार ने १-५५ में कहा है कि 'निदिध्यासन की परिपाक दशा ही समाधि है" निदिध्यासन में ध्याता ध्यान और ध्येय ये तीन पदार्थ रहते हैं। जब चित्त अभ्यास के बलसे ध्याता और ध्यान इन दोनों को छोड़कर केवल एक 'ध्येय' को ही अपना अवलम्ब विषय बनाये रहता है, इस प्रकार की उसकी धारा बनी रहती है, जैसे कि, 'तथा में तेल की अखण्डधार' बनी रहती है। इसके प्रतिपादन करने वाला योगशास्त्र अलग ही है।

(४) समाहिता ये प्रविलाप्य बाह्यं,
श्रोत्रादिचेतः स्वमहं चिदात्मनि।
त एव मुक्ता भवपाशबन्धै-
र्नान्ये तु पारोक्ष्यकथाभिधायिनः॥

अर्थः—जो मनुष्य चित्त वृत्ति का निरोध करके बाह्य वस्तुओं की ओर गये श्रोत्र आदि इन्द्रियों और चित्त को

चैतन्य, आत्मा मे लय कर देते हैं, वे ही मनुष्य ससार रूप-पाश से मुक्त होते हैं। दूसरे केवल परोक्ष ब्रह्म की कथा के अभिधान करने वाले कभी मुक्त नहीं होते।

[५] क्रियान्तराऽऽशक्तिमपास्य कीटको,
ध्यायन्नलित्वंह्यलिभावमृच्छति।
तथैव योगी परमात्मतत्वं,
ध्यात्वा ममायाति तदैकनिष्ठया॥

अर्थः—जेसे दूसरी क्रियाओं की आसक्ति छोडकर केवल भ्रमर का ध्यान करने से कीडा भ्रमर के रूप को प्राप्त होजाता है, तैसे ही एकचित्त करके केवल परमात्मतत्व का ध्यान करने से योगी ब्रह्मस्वरूप को प्राप्त होजाता है।

—(विवेकचूडामणि)

—— ० ——

१०४ प्रश्नः— ब्रह्मविद्या के पढ़ने से क्या होता है?

उत्तर.— वेदान्तार्थविचारेण, जायते ज्ञानमुत्तमम्।
तेनात्यन्तिकसंसार-दुःखनाशोभवत्यनु॥

अर्थः—वेदान्त-शास्त्र का अर्थ विचार करने से, उत्तम आत्मज्ञान उत्पन्न होता है। इसी ज्ञान से दुःख, सदा के लिये नष्ट होता है, यही एक दुःख नाश होने का परम उपाय है।

(वि चू ४०)

—— ० ——

१०५ प्रश्न ? :— जीव ब्रह्म के एकत्व के दृढ़ निश्चय करने का क्या फल है ?

उत्तर:— अस्ति ब्रह्मेति चेद्वेद, परोक्षज्ञानमेवतत् ।
अहं ब्रह्मेति चेद्वेद, साक्षात्कारः स उच्यते ॥

उत्तर—ब्रह्मज्ञान (अर्थात् ब्रह्म का एकत्व बोध) 'परोक्ष' और 'अपरोक्ष' भेद से दो प्रकार का है। "सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म है ऐसा जानना परोक्ष ब्रह्मज्ञान है। इससे असत्वापादक ? आवरण की निवृत्ति होती है। परोक्षज्ञान—गुरु और शास्त्र (वेदान्त) के अनुसार ब्रह्मस्वरूप के निर्धार करने से पूर्ण होता है।

"सच्चिदानन्दस्वरूप ब्रह्म मैं हूँ" ऐसा जानना 'अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है। यह ज्ञान गुरुमुख से "तत्त्वमसि" आदिक महावाक्य के श्रवण से होता है। यह अपरोक्ष-ब्रह्मज्ञान 'अदृढ़' और 'दृढ़' इस भेद से दो प्रकार का है।

असम्भावना और विपरीत भावना सहित जो होय, सो-'अदृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है।" इस ज्ञानसे उत्तम लोक की प्राप्ति और पवित्र श्रीमान् कुलमें अथवा ज्ञानी पुरुष के कुलमें जन्म होता है। असम्भावना और विपरीत भावना से रहित जो होवे सो "दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है यह ज्ञान गुरुमुख से महावाक्य—(जीव ब्रह्म की एकता के बोधक वाक्य) के अर्थ का श्रवण मनन और निदिध्यासन रूप विचार के किए से होता है। इस ज्ञान से अभानापादक २ आवरण और विक्षेप रूप कार्य सहित 'अविद्या' की निवृत्ति होय कर, ब्रह्म की

प्राप्ति रूप "मोक्ष" होवे है। देह विषे अह पने के ज्ञान की न्याईं इस ज्ञान का बाध करके ब्रह्म से अभिन्न–आत्मा–विषे जब ज्ञान होवे, तब दृढ अपरोक्ष ज्ञान पूर्ण होता है।

—— o ——

१०६ प्रश्न.— विचार क्या है ? कैसे होता है ? और उसके किये का फल क्या ?

उत्तरः - आत्मा और अनात्मा को भिन्न करके जानना, विचार है। यह विचार ईश्वर, वेद, गुरु और अपना अन्तः-करण इन चारों की कृपा से होता है। इस विचार से दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान होता है।

"मैं कौन हूँ, ब्रह्म कौन है, और प्रपच क्या है ?"—इन तीन वस्तु की वास्तिकता जानने का नाम विचार है।

—— o ——

१०७ प्रश्नः—कुछ मेहनत करना न पड़े और झट "ब्रह्मज्ञान" हो जावे, ऐसी कौनसी युक्ति है ?

उत्तर.— अनेनैव प्रकारेण बुद्धि भेदो न सर्वगः।
दाता च धीरतामेति गीयते नाम कोटिभिः॥

उत्तर.—इसके लिये तो बस एकही मार्ग है और वह है:–

"गुरुकृपाहि केवल" अर्थात्–"केवल गुरु कृपा"

क्योंकि—भगवान् श्रीचन्द्र महाराज ने भी स्वामी कार्तिकेय को यही आज्ञा की है कि—

गुरुमहासप्रसादेन मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
यस्तु संबुध्यते तत्वं, विरक्तो भवसागरात् ॥

सार यही कि "मूर्ख हो, वा—पण्डित जिस पर श्री गुरु महाराज कृपा करदें उसका बेड़ा पार ही है" ।

—— ० ——

१०८ प्रश्न :—"ब्रह्म विचार" करने का क्या फल है ?

उत्तर— स्नातं तेन समस्ततीर्थसलिले दत्तापि सर्वावनि
यज्ञानाञ्च कृत सहस्रमखिला देवाश्च संपूजिताः ।
संसाराच्च समुद्धृता स्वपितरस्त्रैलोक्यपूज्योप्यसौ
यस्य ब्रह्मविचारणे क्षणमपि स्थैर्यं मन प्राप्नुयात्

अर्थः—ब्रह्म विचार के लिये जिस पुरुष का मन क्षणमात्र भी स्थिरता को प्राप्त होता है, तो उस पुरुष ने "गंगादि समस्त तीर्थों के जलमें स्नान किया ऐसा जानना । और "समग्र पृथ्वी का दान किया तथा—'हजारों यज्ञ किये" और 'जितने देवता हैं उन सबों की पूजा करी' तथा—"अपने समस्त पुरुखाओं का उद्धार किया," ऐसा जानना और वह "स्वयं भी त्रैलोक्य में पूज्य होता है ।"

—— ० ——

● हरिः ॐ तत्सत् ●

॥
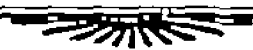
बाबू जगदीश नारायन कपूर के प्रबन्ध से
ईस्टर्न प्रेस बरली में मुद्रित।

* प्रार्थना *

* ॐ *

ॐ विश्वतश्चक्षुरुतविश्वतोमुखो—
विश्वतोवाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै—
र्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ १ ॥

॥ ॐ ॥

नमोस्त्वनन्ताय सहस्रमूर्त्तये,
सहस्रपादाक्षिशिरोरुवाहवे ।
सहस्रनाम्ने पुरुषाय शाश्वते,
सहस्रकोटीयुगधारिणेनमः ॥ २ ॥

* ॐ *

सत्य मानविवर्जितं श्रुतिगिरामाद्य जगत्कारणं,
व्याप्त-स्थावरजङ्गमं मुनिवरैर्ध्यातं निरुद्धेन्द्रियैः ।
अर्काग्नीन्दुमयं शताक्षरवपुस्तारात्मकं सन्ततं,
नित्यानन्दगुणालय गुणपर बन्दामहे तन्महः ॥३॥

* ॐ *

तुह चेतन भरपूर, दृश्य मन जगत जाले बन्धे ।
जब होय अविद्यानाश खिलें तब विद्या के चन्दे ॥
ॐ भज शिव० ॥ ॐ हर शिव० ॥ ६ ॥

करै शुभाशुभ कर्म, भोगता फल सुख-दुख द्वन्दे ।
शिव को कहते जीव, शीव कछु करे नहीं धन्दे ॥
ॐ भज शिव० ॥ ॐ हर शिव० ॥ ७ ॥

'तत्वं' पद में 'असि' जो चेतन, दोनों का सन्धे ।
त्रिगुणात्मक मिथ्या माया, गुणातम सत चित आनन्दे ॥
ॐ भज शिव० ॥ ॐ हर शिव० ॥ ८ ॥

* दोहा *

पढ़े जो अष्टक आरती, सांझ समय चित लाय ।
कोई काल अभ्यास ते, समुझे सहज सुभाय ॥९॥

[२]

वन्दे गुरुदेव ।

ॐ वन्दे गुरुदेव, बोधमयं गुरुदेव
बोधमय गुरुदेव, श्री नित्यानन्दम् ॥
ॐ जय जय गुरुदेव ॥ टेक ॥

विद्वद्वृन्द-विवन्द्य-सुवन्दित-मञ्जपदद्वन्द्वम् ,
ओंमञ्ज पदद्वन्द्वम् ॥ स्वच्छन्दं, निर्द्वन्द्वम् ,
स्वच्छन्द, निर्द्वन्द्व द्वैताद्वैतपरम,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे० ॥ १ ॥

अद्वय-ममित-ममेय-मनादिं, ननु जगतामादिम्
ॐ ननु जगतामादिम् ॥ सर्वाद्यन्त विहीनं,

❋ श्री सद्गुरुदेव की आरती ❋

[१]

ॐ भज शिव शुद्धानन्दे, ॐ हर शिव शुद्धानन्दे।
(नित्यानन्दे)

जो कोई भजन कर मनलाके कटि जाय यमफन्दे।
ॐ भज शिव शुद्धानन्दे ॐ हर शिव नित्यानन्दे ॥टेक॥

भारत जन की सुनो आरती, हे कृपासिन्धे।
मोह आस की फाँसी माँही जीव फिरे बन्धे॥
ॐ भज शिव० । ॐ हर शिव० ॥ १ ॥

तुम्हीं कहो समझाय कौन मैं को यह जग बन्धे।
कब छूटे अविद्या-माया तभी हम होवें आनन्दे॥
ॐ भज शिव० । ॐ हर शिव० ॥ २ ॥

को ईश्वर को जीव कौन रहता किसके सम्बन्धे।
क्या माया का रूप कहो अब सत चित आनन्दे॥
ॐ भज शिव० । ॐ हर शिव० ॥ ३ ॥

आरति कैसे करूँ तुम्हारी तुम व्यापक जिन्दे।
जो कोई तुम्हरी करै आरती वह बुधि का अन्धे॥
ॐ भज शिव० । ॐ हर शिव० ॥ ४ ॥

(आरती का उत्तर)

'मैं' 'मेरा' यदि मोह हुआ अर्जुन को रण मध्ये।
कहा आत्म-गीता का सुन तब समधानी सन्धे॥
ॐ भज शिव० । ॐ हर शिव० ॥ ५ ॥

तुह चेतन भरपूर, दृश्य मन जगत जाल बन्धे ।
जब होय अविद्यानाश खिलें तब विद्या के चन्दे ॥
ॐ भज शिव० ॥ ॐ हर शिव० ॥ ६ ॥

करै शुभाशुभ कर्म, भोगता फल सुख-दुख द्वन्दे ।
शिव को कहते जीव, शीव कछु करे नहीं धन्दे ॥
ॐ भज शिव० ॥ ॐ हर शिव० ॥ ७ ॥

'तत्वं' पद में 'असि' जो चेतन, दोनों का सन्धे ।
त्रिगुणात्मक मिथ्या माया, गुप्तातम सत चित आनन्दे ॥
ॐ भज शिव० ॥ ॐ हर शिव० ॥ ८ ॥

* दोहा *

पढ़े जो अष्टक आरती, सांझ समय चित लाय ।
कोई काल अभ्यास ते, समुझे सहज सुभाय ॥९॥

[२]

वन्दे गुरुदेव ।

ॐ वन्दे गुरुदेव, बोधमयं गुरुदेव
बोधमयं गुरुदेव, श्री नित्यानन्दम् ॥
ॐ जय जय गुरुदेव ॥ टेक ॥

विद्वद्वृन्द-विवन्द्य-सुवन्दित-मञ्जपदद्वन्द्वम् ,
ओंमञ्ज पदद्वन्द्वम् ॥ स्वच्छन्दं, निद्वन्द्वम् ,
स्वच्छन्द, निर्द्वन्द्व द्वैताद्वैतपरम्,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे० ॥ १ ॥

अद्वय-ममित-ममेय-मनादिं, ननु जगतामादिम्
ॐ ननु जगतामादिम् ॥ सर्वाद्यन्त विहीनं,

सर्वावस्थातीतं, धीनं भ्रमवादिम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे ॥ २ ॥
शान्त कुसुमनिकेतमशेष कामैरहितधियम्।
ॐ कामैरहितधियं ॥ करुणासागरमाकर,
करुणासागरमाकर–भगवन्मायाप्यभियम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे ॥ ३ ॥
आशापाशविमुक्तं विमलं वासनया रहितम्।
ॐ वासनया रहितम्। धूल्या धूसरगात्रम्।
धूल्या धूसरगात्रं, विमलैरपपूतम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ वन्दे ॥ ४ ॥

(एक गुरु भक्त)

—— o:——

सद्गुरुदेव अवधूत महाप्रभु
श्री १०८ श्रीनित्यानन्द जी महाराज की
❁ आरती ❁

[२]

ओं विमल गुरुवर्य।

ॐ विमलं गुरुवर्य अखिल सच्चिदानन्दं,
अखिल सच्चिदानन्दं, श्री नित्यानन्दम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ टेक ॥
ॐ सत्य त्रिकालाबाधित चित्त प्रमुख प्रकाशं,

ओं चित्त अलुप्त प्रकाशं। आनन्दघन निज आतम,
ओं आनंदघन निजआतम, श्री नित्यानन्दम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ १ ॥

ओं अखण्ड एकरस आप, निकट नहीं दूरं,
ओं निकट नहीं दूर। रूप चराचर विभुवर,
ओं रूप चराचर विभुवर, श्री नित्यानन्दम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ २ ॥

ओं गुरु-दर्शन गुरु-भक्त, अनायास करता,
ओं अनायास करता। जय विश्वनाथ अविनाशी,
ओं जय विश्वनाथ अविनाशी, श्री नित्यानन्दम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ ३ ॥

ओं त्रिलोकी के नाथ, गुरु कूटस्थ स्वामी,
ओं गुरु कूटस्थ स्वामी। गुणातीत चेतन अज,
ओं गुणातीत चेतन अज, श्री नित्यानन्दम् ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ ४ ॥

* दोहा *

चार वेद सन्तत करे, श्री गुरु का गुणगान
अधिष्ठान द्रष्टा अचल, नर नारायण जान ॥

(४)

ओं अचल गुरुदेवं।

ओं अचलं गुरुदेवं, गुप्त प्रगट परिपूरण।
गुप्त प्रगट परिपूरण, श्री नित्यानन्द ॥

ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ टेक ॥

ओं मुनि वसिष्ठ सनकादिक, याज्ञवल्क्य आदि
ओं याज्ञवल्क्य आदि श्रेयपथ लख निज गुरु ।
ओं श्रेयपथ लख निज गुरु, जिज्ञासित हुए ज्ञानी ॥

ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ १ ॥

ओं गुरु से बढ़कर शिष्य, नहिं कोई जगमाहीं
ओं नहिं कोई जगमाहीं । गुरु बिन मोक्ष न होय
ओं गुरु बिन मोक्ष न होय, निगमागम गाई ॥

ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ २ ॥

ओं गुरु कीरति अमोघ, मुमुक्षुजन करता
ओं मुमुक्षुजन करता । नुगरा कुत्सक करके,
ओं नुगरा कुत्सक करके, भ्रम्य साबत होता ॥

ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ ३ ॥

ओं गुरु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ लक्षण श्रुति कहती,
ओं लक्षण श्रुति कहती । अभयदान के दाता,
ओं अभयदान के दाता गुरु सम नहिं कोई ॥

ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ ४ ॥

(५)

ओं केवल गुरुदेवं ।

ओं केवल गुरुदेव भवसागर से कर ग्रहि ।
भवसागर से कर ग्रहि कर परलो पारे ॥

ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ टेक ॥

ओं गुरु गुरु मे शिष भेद, अल्पमति तोरी,
ओं अल्प मति तोरी । चारों वर्ण समान,
ओं चारों वर्ण समान, सम पर उपकारी ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ १ ॥

ओं वेद व्यास खुद आप, गुण गुरु का गावे,
ओं गुण गुरु का गावे । ब्रह्म-विद्या ब्रह्म-ज्ञान,
ओं ब्रह्म-विद्या ब्रह्म-ज्ञान, गुरु बिन नहिं आवे ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ २ ॥

ओं विषम दृष्टि होय अङ्ग, शून्य गुरु गुरु पद से,
ओं शून्य गुरु गुरु पद से । दम्भि सकामी जान,
ओं दम्भि सकामी जान, तजकर दृढ सत्-संग,
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ ३ ॥

ओं गुरु देवन के देव, हैं राजनपति राजा,
ओं हैं राजन पति राजा । अधिकारी जनों बोध,
ओं अधिकारी जनों बोध, खरो निज मति धारो ॥
ओं जय जय जय गुरुदेव ॥ ४ ॥

॥ ॐ ॥

—— ० ——

अथ सद्गुरुदेव स्तुति ।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु र्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म, तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ १ ॥
अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्त येन चराचरम् ।
तत्पदंदर्शितो (तं) येन, तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ २ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवेनमः ॥ ३ ॥

ब्रह्मानन्दं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिम् ।
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्वमस्यादिलक्ष्यम् ॥
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं ।
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरु त्वां नमामि ॥ ४ ॥

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोः पदम् ।
मन्त्रमूलं गुरोर्वाक्यं मोक्षमूलं गुरोः कृपा ॥ ५ ॥

नित्यशुद्धं निराभासं निराकारं निरञ्जनम् ।
नित्यबोधं चिदानन्दं तस्मै श्री गुरवेनमः ॥ ६ ॥

ॐ अवधूत सदानन्द, परब्रह्मस्वरूपिणे ।
विदेहदेहरूपाय श्रीनित्यानन्द नमोऽस्तुते ॥ ७ ॥

(गुरुचरण सेवक)

—— o ——

ॐ

स्तोत्राष्टक ।

मनुष्यो न देवो नहीं दैत्ययक्ष ।
पण्डित न मूर्खो कविर्यो न दक्ष ॥
ज्ञाता न ज्ञाता कोपी न पापा ।
शिवः केवलोऽहं निरमेल माया ॥१॥

आश्रम न वर्णो न कुल जाति धर्मो ।
नहीं नाम गोत्रं शर्मा न वर्मा ॥
आमय रूप नहीं मात्र कापा ।
शिवः केवलोऽहं निरमेल माया ॥२॥

देशो न कालो वृद्धो न बालो ।
तुरिया वितुरिया नहिं काल जालो ॥
जन्म्या न मूया जाता न आया ।
शिवः केवलोऽह निरमैल माया ॥३॥
जीवो न शीवो न अज्ञान मूलं ।
सुखं न दुःखं नहिं पाप शूलं ॥
कर्ता अकर्ता नही बिम्ब छाया ।
शिवः केवलोऽहं निरमैल माया ॥४॥
मौनी न वक्ता बन्धो न मुक्ता ।
राग विरागं नहिं लक्ष लखता ॥
सब वाच्य अवाच्य का महल ढाया ।
शिवः केवलोऽहं निरमैल माया ॥५॥
सादी अनादी न च मे समादी ।
स्वास्ता न शास्त्रं नहिं वाद वादी ॥
नहीं पक्षपातं जन्मी न जाया ।
शिवः केवलोऽह निरमैल माया ॥६॥
योगं वियोग नचमे समाधी ।
माया अविद्या नच मे उपाधी ॥
शुद्धो स्वरूप निरञ्जनं राया ।
शिवः केवलोऽह निरमैल माया ॥७॥
गुप्ता न मुक्ता लिपता न छिपता ।
लोका न वेदा तपता अतपता ॥
एको चिदातम् सब में समाया ।
शिवः केवलोऽहं निरमैल माया ॥८॥
पढ़ै प्रातकाले कटे यम जाले ।
तजै आश तृष्णा सन्तोष पाले ॥

* ॐ *

सन्ध्या आरती ।

दोहा ।

जेती सन्ध्या आरती, लिखते सबका सार ।
सांझ समय याकों पढ़े, समुझे सार असार ॥१
पढ़ै सुनै अति प्रीतियुत, अरु पुनि करै विचार ।
ज्ञान भानु छिन २ उदय, ह्वै आतम दीदार ॥२

* चौपाई *

ऐसी आरती तोहि सुनाऊँ ।
जन्म मरण को धोय बहाऊँ ॥
ऐसी आरती कीजे हँसा ।
छूटे जाति वरण कुल वंशा ॥१॥
काया माहिं देव है ऐसा ।
दूजा और नहीं कोई तैसा
काया देवल आतम देवा,
बिन सतगुरु नहिं पावे भेवा ॥२॥
पहिले गुरु-सेवा चितलावे,
ता से सकल विधि को पावे ।
जो युक्ति गुरुदेव बतावे,
तामे अपना मन ठहरावे ॥३॥
माया का सब झूठ पसारा,
सत है चेतन रूप तुम्हारा ।
पांच अंश सब ही में जानों,
अस्ति, भाति, प्रिय, सत्य बखानों ॥४॥

नाम रूप झूठे व्यभिचारी,
तिन से-भूल न कीजे यारी।
तीन सच्चिदानन्द पिछानों
तिनको ब्रह्मरूप करि मानों ॥४॥
सोई ब्रह्म आपना रूपा
ऐसे वेद कहत मुनि भूपा।
दो झूठे मायाकृत देखे
तिनको सत्य कबहुँ नहिं पेखे॥
माया नाम कहत मुनि जसका
परमात्म से रूप न जिसका ॥५॥
अचिन्त्यशक्ति कर ताहि बतावे,
युक्ति आगे रहन न पावे ॥७॥
सो युक्ति अब कहूँ बताई,
जाते माया रहन न पाई।
सत्य असत्य नहीं कछु भाई,
नहिं दोनों पद मिलिकर पाई ॥८॥
नहिं वह कहिये भिन्न विभिन्न,
नहिं दोनों पद मिलि उत्पन्न।
नहिं सावव नहीं निरवेवा,
दोनों मिलि नहिं होय अवेवा ॥६॥
यह नययुक्ति जिसने जानी
तिनके माया मरती पानी।
यह सब युक्ति गुरु से जाने
फिर कीजे निज आतम ध्याने ॥१०॥
आतम पूजा बहु विधि कीजे
जाते सकल अविद्या छीजे।

सोऽहं थाल बहुत विधि साजे,
श्वास श्वास पर घण्टी बाजे ॥११॥
सयम ओट करे दिन राती,
ज्ञान दीप बाले बिन बाती।
जस दीपक का होय उजाला,
अन्धकार नसिजा तत्काला ॥१२॥
झांझ झनक चेतन की झनकी,
मूल अविद्या सारी छिनकी।
मन मिरदङ्ग तानकर कूटा,
धृक धृक कहन लगा मैं झूठा ॥१३॥
चित का चन्दन घिसकर लाया,
तब ही देव निरञ्जन पाया।
बुद्धि ताल बजावन लागी,
क्रोड़ जन्म की सूती जागी ॥१४॥
अहंकार का बाजा घण्टा,
बहुत काल का टूटा टटा।
चिदाभासने शङ्ख बजाया,
अपना रूप हमें अब पाया ॥१५॥
चिदाभास का कीना त्याग,
कूटस्थ रूप में कीना राग।
आभास रूप को त्यागा जबही,
रूप अक्रिय पाया तब ही ॥१६॥
ता साक्षी कर सदा अभेदा,
ब्रह्मरूप यह गावत वेदा।
जिमि जलाकाश अरु घटाकाशा,
महाकाश में सब का वासा ॥१७॥

यह एकान्त विचार मन में
प्रभुरूप पावे या तन में।
ऐसी कीजे आतम सन्ध्या
पावे जीव छुटे भव सन्ध्या ॥१८॥
ऐसी सन्ध्या आरती कीजे
आत देव निरञ्जन रीझे।
इन्द्रिय मनु जिनके सब देवा
करन लगे हैं आतम सेवा ॥१९॥
भय मुदित सब करैं विचारा
आतम अपना रूप निहारा।
कोई नाचे कोई गावे
कोई मौन गहे रहि जावे ॥२०॥
कोई ताल बजावन लागे,
आतम माहिं हुये अनुरागे।
प्रीतिपुष्प चढ़ावन लागे,
ध्यानधूप को लावन लागे ॥२१॥
बुधि करे प्रभु का गाना
और नहीं कछु भावत आना।
ऐसे कहिके प्रभु समाई
भेद भरम सब दिया कढ़ाई ॥२२॥
लोभ पूतनी आवे नीरा
उलट बात कुछ कहे न बीरा।
आप रूप सब दिया गँवाई,
होय एक एक माहिं समाई ॥२३॥
जो कुछ सूक्षम या स्थूला
सो कारण या तिनका मूला।

सब ही चेतन है परकाशा,
द्वैत अद्वैत सभी जहँ नाशा ॥२४॥

सन्ध्या आरती करो विचारा,
छूटे भरम करम ससारा।
लोक वेद की छोड़ो आशा,
तब देखोगे ब्रह्म तमासा ॥२५॥

ऐसी सन्ध्या आरती गावे,
बहुर यो जगत जन्म नहि पावे।
टूटे बन्धन होय खलासा,
जन्म मरण का मिटिजा सासा ॥२६॥

बन्धमुक्त याते सब जाने,
दोनों भ्रम कर मिथ्या माने।
बन्धविहीन एके नहिं दोई,
ताकी मुक्ति कौन विधि होई ॥२७॥

बन्ध मुक्त मायाकृत जाने,
आतम शुद्ध रूप पहिचाने।
ध्यान अरु ज्ञान नहीं कोई जामें,
साधन साध्य नहीं कोई तामें ॥२८॥

द्वैत अद्वैत नहीं कुछ झगडा,
ना कछु बन्या नहीं कुछ बिगडा।
अजर अमर आतम अविनाशी,
चेतन शुद्ध रूप परकाशी ॥२९॥

सजाती विजाती न ता में कोई,
स्वगत भेद फिर कैसे होई।
नहिं वह वृद्ध नहीं वह बाला,
स्वेत पीत हरता नहिं काला ॥३०॥

नहिं वह पुरुष नहीं यह नारी,
नहिं सन्यासी नहिं ब्रह्मचारी।
लघु अलघु नहीं कछु ता में,
वाच्य अवाच्य बने नहिं जा में ॥११॥
सब कुछ है अरु कुछ भी नाहिं,
सब विकार कुछ परसत नाहिं।
नहिं यह हलका नहिं वह भारा
ना कछु मधुर नहीं कुछ खारा ॥१२॥
रूप एक जा में कुछ नाहीं
ऐसा आतम सबके माहीं।
समरस रहे गगन की नाईं,
काल कर्म की पड़े न छाईं ॥१३॥
सदा अक्रिय निर्भय देवा
कहा कहे को तिसकी सेवा।
ना कछु मौन नहीं कुछ बोले
ना कहिं स्थिर ना कहिं डोले ॥१४॥
निश्चल सदा अक्रिय देवा
बिन सतगुरु नहिं पावे भेवा।
नहिं परिच्छेद तासु में कोई
देश काल वस्तु नहिं होई ॥१५॥
सन्ध्या आरती की लिखी चौपाई
जग को मिथ्या कही बनाई।
आतम ब्रह्मरूप करि भासे
सतचित् आनन्द एक परकासे ॥१६॥
जैसे शुन में भासत मोगी
त्यों आतम में जग प्रति पोगी।

शुक्ती में रूपा भ्रम होई,
त्यों आतम मे जव है सोई ॥३७॥
स्थाणु माहिं पुरुष कहै जैसे,
रवि किरनन में नीर कहै तैसे।
आकाश माहिं ज्यों गन्धर्व गामा,
त्यों आतम मे जगत अभिरामा ॥३८॥
मिरची मे तीक्षणता जैसे,
जल के माहिं क्षारता तैसे।
फूलन माहिं गन्ध जिमि होई,
आतम मे ऐसे जग सोई ॥३९॥

दोहा।

सभी भरम कर भासता, करता क्रिया कर्म।
आत्मा सदा असङ्ग है, कोई जानता विरला मर्म ॥१॥

* छन्द *

सत्गुरु बिना नहिं भेद पावे, कहत वेद पुकारिके।
लाचार नहिं चारा चला, हम चारों बैठे हारिके॥
षट मान जेती सिमरती, वस्तु अनातम को कहै।
कौन शक्ती तासु की, जो आतमा को वह लहै॥
निरवेव चेतन शुद्ध निरमल, एक दो की गम नहीं।
ऐसे शब्द करके वेद कहता, और कछु जाने नहीं॥
दैशिक कही यह शिष्य को, तुहि ब्रह्म व्यापक रूप है।
जो समझता इस रमज को, पडता नहीं भवकूप है॥
मत खाय [illegible]

टुक समझ अपने जेहन में यह बात हम तोसों कही ॥

तत्त्वमसि आदि महावाक्य, कीजे ताहि विचार को।
मत फँसे किरिया कीच में, सब छाँड़ि जग आचार को ॥

यह पढ़े सन्ध्या आरती चारों पदारथ सो लहै।
जो पाए इसके अर्थ को, फिर बात उसकी को कहै ॥

पाई अमोलक रत्न को, बैठे गुप्त दरियाव में।
यह वक्त बीता जात है फिर रोओगे इस दाव में ॥

दोहा।

तम भाजत परकाश तें क्यों तोहि समुझाय।
और न काहू से भजै चहै लाखों करो उपाय ॥

अज्ञान विरोधी ज्ञान है, लीजे बात विचार।
नाश न होवे और ते चहे धारे रूप हजार ॥

कीट भिरंगी होत है पुनः पुनः अभ्यास।
सुनि गुरु के शब्द को भृङ्ग होय अनयास ॥

—o—

ॐ

धार्मिक सूचना ।

(१) हे गृहस्थो ! साधू सन्यासियों की तन, मन, धन से सेवा करना तुम्हारा परम धर्म है ।

(२) सन्त वृद्ध हो, रोगी हो, अथवा- कारणविशेष होने परः—प्रेम से स्नान कराना, वस्त्रादि धोना, पादचम्पी करना, भार उठाना शारीरिक सेवा है ।

(३) सन्त के प्रति कुभाव न रखना, उनके दिये हुए उपदेश को धारण करना, ग्लानि न लाना मन की सेवा है ।

(४) घर पर आये हुए किसी भी सन्त को भूखा प्यासा न जाने देना । आप भूखा प्यासा रह जावे; पर सन्त को विमुख न जाने देवे । यदि सन्त को व्याधि हो अथवा- न आसकते हों तो-उनके स्थान पर भोजनादि पहुँचाना, औषध उपचार में खर्च करना, आवश्यक वस्त्र पुस्तकादि लाकर देना, तथा-एक स्थान से दूसरे स्थान पर (जो निकट हो) स्ववाहन द्वारा, अथवा-किराया भाडा देकर पहुंचा देना यह धन की सेवा है ।

(५) यदि धर्मलाभ न कर सको तो न सही, पर कम से कम अधर्म तो मत कमाना ।

अधर्म यह है—

(क) किसी महात्मा को शारीरिक कष्ट पहुंचाना, स्थान को नष्ट भ्रष्ट करना शारीरिक अधर्म है ।

(ख) कुचेष्टा करना, निन्दा करना, कुभाव फैलाना, मन का अधर्म है ।

(ग) साधु सन्यासियों को कनक कामिनी का त्याग धर्मशास्त्रों में लिखा है, अतः– उन्हें इन दो बातों से बचाना अपना कर्तव्य है। कदाचित्–अपनी परीक्षा लेने के निमित्त अथवा–प्रमाद-वश कोई ऐसी याचना करे भी तो हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर दो– "महात्मा! इसके लिए हम क्षमा चाहते हैं"।

(घ) महापुरुषों के पास जाकर तुम भी उन से वही वस्तु लेने की इच्छा करना जिसमें तुम्हारा 'श्रेय'–वास्तविक कल्याण होय, क्योंकि–यदि तुम उन से 'हेय' वस्तु माँगने आओगे तो वे तुम्हें अनधिकारी, क्षुद्र मान कर कहीं खिसक जावेंगे और तुम हाथ मलते रह जाओगे। फिर कौन जाने मौका हाथ लगे या न लगे। सत्य ही कहा है:—

सन्त समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा अरु लक्ष्मी पापी के भी होय॥ १॥

(और भी सुनो)

तुलसी जग में आयके, कर लीजे दो काम।
देने को टुकड़ो भलो लेने को हरिनाम ॥ २॥

——o——

Know thyself'

स्वस्वरूप को जान।

ॐ तत्सत्

नित्यानन्द-विलास

(१) मङ्गलाचरण ।

शिवः केवलोऽहम् ।
शिवः केवलोऽहम् ॥
शिवः केवलोऽहम् ।
शिवः केवलोऽहम् ॥

(ग) साधु सन्यासियों को 'कनक कान्ता का त्याग' धर्मशास्त्रों में लिखा है, अतः— उन्हें इन दो बातों से बचाना अपना कर्तव्य है। कदाचित्—अपनी परीक्षा लेने के निमित्त अथवा—प्रमाद-वश कोई ऐसी याचना करे भी तो हाथ जोड़ कर प्रार्थना कर दो— 'महात्मा ! इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं"।

(घ) महापुरुषों के पास आकर तुम भी उन से वही वस्तु लेने की इच्छा करना जिसमें तुम्हारा 'श्रेय'—वास्तविक कल्याण होवे, क्योंकि—यदि तुम उन से 'हेय' वस्तु मांगने जाओगे तो वे तुम्हें अनधिकारी, क्षुद्र ग्राहक जान कर कहीं खिसक जायेंगे और तुम हाथ मलते रह जाओगे। फिर कौन जाने मौका हाथ लगे या न लगे। सत्य ही कहा है:—

सन्त समागम हरि कथा तुलसी दुर्लभ दोय।
सुत दारा अरु लक्ष्मी पापी के भी होय ॥ १ ॥

(और भी सुनो)

तुलसी जग में आयके, कर लीजे दो काम।
देबे को टुकड़ो भलो लेबे को हरिनाम ॥ २ ॥

——०——

Know thyself'

स्वस्वरूप को जान।

ॐ तत्सत्

नित्यानन्द-विलास
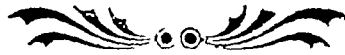
(१) मङ्गलाचरण ।

शिवः केवलोऽहम् ।
शिवः केवलोऽहम् ॥
शिवः केवलोऽहम् ।
शिवः केवलोऽहम् ॥

दोहा ।

गुस प्रगट निज रूप में, मंगल दश विधि होय ।
तथापि मैं मंगल करूं, मैं मेरा तज होय ॥१॥
मंगल के सम्मुख सदा पेख अमंगल नाश ।
कर विशेष मंगल करूं, अरु से सरे न काज ॥२॥
मंगल मूर्ति आप तू, तमसु पराई आश ।
यह मंगल मंगल नहीं मंगल स्वप प्रकाश ॥३॥
आतम पूरण ब्रह्म जिस मंगल मूरति चीन्ह ।
मंगलाचरण अभेद में आदि कविजन कीन्ह ॥४॥

चौपाई ।

भण्यो वेद सिद्धान्तज-नीरा ।
अति-गंभीर जामें महा धीरा ॥
नित्यानन्द विलास सत-तीरा ।
मुदित होय पेखिय अन-भीरा ॥

परमात्मा की महिमा ।

१ परमात्मा की स्तुति ।

दोहा ।

हरि हर विधि शक्ति नमि, गुरु गनेश गणेश ।
विघन हरो कपाल करो मंगल अति हमेश ॥१॥
शमबुद्धि दीजे मुझ, हरो कुबुद्धि देव ।
धरूं तुमारा ध्यान मैं, करूं प्रेम से सेव ॥२॥

कृपा तुमारी होय तब, जड़मति होय सुजाण (न)।
महन्त सन्त गुरु वेद निज, कहे सत्य वे गान ॥३॥
नमो नमो भगवान कुं, नमो नमो गुरु मोर।
नमो नमो निज आत्मा, गुप्त प्रगट सब ठौर ॥४॥
(श्री) मगल-मय निज आतमा, मगल-मय सुखधाम।
मंगल-मय मोहन प्रभु, मगल करो सब काम ॥५॥

—— o ——

२. गणेश स्तुति।

* राग भैरवी *

गणपति विघन हरोजी, मोरे दाता।
मैं नित्य उठके, प्रेम प्रीति युत, तुम को शीष नमाता ॥टेक॥
तुम गणपति, ऋद्धि सिद्धि के दाता, ये मेरे मन भाता।
पाप ताप को, मूल नसावो, संत वेद यश गाता ॥१॥ गण०
जो कोइ कार्य, करे जगत में, प्रथम आप को ध्याता।
फिर पीछे वो, कार्य सभाले, मन वांछित फल पाता ॥२॥ गण०
एक समय मिलि, सबहि देवता, तुम को पूजे भ्राता।
शास्त्र मांहिं, ऐसी है गाथा, तब तिन मति सुख छाता ॥३॥ गण०
दोऊ कर जोड, कहे नित्योनंद, तुमको शीश नमाता।
मेरे हृदये वाणी विराजो, भक्ति मुक्ति वर चाता ॥४॥ गण०

दोहा।

विघन हरण शुभ गुण सदन, वन्दौं श्री गणराज।
जाकी कृपा कटाक्ष से, सिद्ध होत सब काज ॥

—— o ——

३ ईश स्तुति ।

• राग कव्वाली •

ओ ईश्वर ! तेरी कृपा से आनन्द हो रहा है ॥ टेक ॥
ॐ होकर प्रसन्न संग में प्राणीमात्र के तू रहता ।
कोई मोह जीव हंस रहा है, को विषयानंद मोह रहा है ।
दिन-रैन रूप तट, सदाचर्ण लग रहा है ।
तदपि अज्ञानी मानी, मृत्यादि रोरहा है ॥२॥
दिनभर के भक्त-साधु तेरा ध्यान धर रहा है ।
को तन कर के दर घुमी के तट रूपे सोरहा है ॥३॥
अति सुन्दर दरबार तेरा अहा भंडार अक्षय भरा है ।
है मस्त अलमस्त तेरी कोई योगीराज जोरहा है ॥४॥

दोहा ।

ईश भजन सबसे बड़ा तासे बड़ा न कोय ।
भजन करे जो प्रेम से, सभी काम सिध होय ॥

---

४ ईश—अष्टक ।

• हरिगीत छन्द •

हर का असंख्या आप आप, निमल भई बाणी मती ।
अविनाशी नामी नाम से, प्यारा महीं श्रीगुरु रूपी ॥१॥
देखी अचल हरि की छबी रवी से भिन्न मोरी मती ।
केवल अचिन्त्य देव पूरण, सब सुखी योगी यती ॥२॥
गुरुदेव के परसाद से, मोरी विमल रवी हुई ।

प्रचण्ड आतम देव, जा दिन से मुझे दीखा तुही ॥३॥
अद्भुत अकथ हर को छवि, मुझ को लगी प्यारी अति ।
ज्योति अखड अलेख लख, निश्चल भई वाणी मति ॥४॥
रडना झगड़ना वो करे, जो ज्ञानी अज्ञानी बने ।
सम्यक् सच्चिदानन्दघन, श्रीईश श्रीमुख से भणे ॥५॥
मज्जन करें कर्दम से वे, कर्दम से कर्दम धोवते ।
सच्चे मिले नहिं सद्गुरू, हठयोग में फस रोवते ॥६॥
निर्मल कुं निर्मल को करे, मल सहित निर्मल होय नहिं ।
सर्वज्ञ गुप्त स्वरूप अन्तर्यामि इष्ट मेरा तुहिं ॥७॥
लीला अलौकिक ईश की, देखूं वही जैसी सुणी ।
गिरिजापती भगवान् नित्यानन्द नहिं निर्गुण गुणी ॥८॥

दोहा ।

दया दयालू ने करो, दिखलाया निजरूप ।
शिष्य कृतकृत्य होगया, लीला लखी अनूप ॥

—— o ——

५. गोपालअष्टकम् ।

* हरिगीत छन्द *

प्रत्यक्ष देव गोपाल तेरो, ध्यान मैं कैसे धरूं ?
गुरु वेद गुण गावें तेरो, याते मैभी तोसे डरू ॥१॥
मैं जीव हू तुम शीव हो, मन वाणी से तुम हो परे ।
फिर ध्यान सन्ध्या आरती, गोपाल हम कैसे करें ॥२॥
युक्ती बता भगवान अब, व्याकुल भई मोरी मती ।
गुरु देव बहु समझा चुके, समझा चुके जोगी जती ॥३॥

निर्गुण निष्काम आत्मा गोपाल सब ताको कहे ।
हमने तुम्हारा देखा नहीं, तुम तू मेरे संग में रहे ॥४॥
तदपि नहिं मत्पक्ष तेरा देख्या असली रूप हूँ ।
बिन देख हम कैसे कहें, हम देखी छायाधूप हूँ ॥५॥
तेरी अखंड ज्योति को मैं किस ज्योति से देखूं अब ।
चैतन्य पूरण-ब्रह्म बिन जिन्दगी मेरी सुधरे तब ॥६॥
कर गौर दीनानाथ मैं तेरी शरण में आपड़ा ।
मुझको सच्चिदानन्द तेरा, धाम असली ना जड़ा ॥७॥
जड़ बुद्धि का आभास जड़ दोनों से तूं जड़ता नहीं ।
गोपाल शुद्धानन्द नित्यानन्द रति न्डता नहीं ॥८॥

दोहा ।

मौज करे सग संग फिरे, सब कुछ करते काम ।
तिस का भेद देते नहीं जगत गुरु-पद-स्वाम ॥

—— o ——

६ हरि अष्टकम् ।

• हरिगीत छन्द •

हरि की कठिन से अति कठिन भक्ति व सेवा होत है ।
बन कर प्रभू का भक्त नित्य दिन पैसे पैसे को रोत है ॥१॥
जिनको शरम आती नहीं, विपरीत सब किरिया करें ।
प्रभु का करें अपमान मूरख महाघोर नरकों में पड़ें ॥२॥
भक्तों की पदवी प्राप्त करना, कछु सहज की नहीं बात है ।
निष्कपटी भक्तों की कथा इस विश्व में विख्यात है ॥३॥

तन मन वो धन वाणी प्रभू के, प्रेम से अर्पण करें ।
केवल प्रभू का प्रेम से, सुमिरन करें महीपे चरें ॥४॥
उनको नहीं परवा कोई, निर्द्वन्द पद प्रापत किया ।
सो ही भक्त है भगवान् का, भगवान की जिनपर दया ॥५॥
अज्ञानी के सन्मुख रडे, अज्ञानी को आशा करे ।
वो भक्त नहीं इस जगत में किस भाति चौरासी तरे ॥६॥
सुमिरण करें माया का वे, माया में वे गरगप्प रहें ।
अपवचन दुष्टों के सुनें, कुछ आप मुख से ना कहें ॥७॥
दुष्टों से भय मानें सदा, भगवान से भय ना करें ।
उनका कोई संसार मे, कहे मस्त नहिं कारज सरे ॥८॥

दोहा ।

कपट नहीं दिल मे तजे, भजते नीच अनीश ।
गुप्त प्रगट जिनकी क्रिया, देखे निज जगदीश ॥

—— o ——

७ रणछोड़ विनय ।

* पद राग सोहनी *

आश पूरण कीजिये, भक्तों की श्रीरणछोड जी ॥ टेक ॥
भक्तवत्सल नाम सुनकर, आये किंकर हो शरण ।
दो भक्ति मुक्ति येही आशा, करके आये दोडजी ॥ आश० ॥
तरण तारण नाथ हो तुम, खुद यशोदानन्दजी ।
कदमों में तेरे आपडे, प्रभु देखिये कर दोड़जी ॥ आश० ॥
आशा लगी भक्तों के मनको, और नहीं कोई आश जी ।
पुचकार के अति शीघ्र हि बधन, दीजिये हरि तोडजी ॥आश०॥

यह कहता नित्यानन्द अब तूं नाथ सुन रणछोड़जी ।
नित्यस करो भक्तों की बुद्धि, दौड़ती जिमि घोड़ली ॥नाथ०॥

दोहा ।

अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी, भोगे अतिशय भोग ।
तदपि देव रणछोड़ तू, रहता सदा निरोग ॥१॥

——o——

८ रणछोड़ महिमा ।

॥ पद राग प्रभाती ॥

अखिल देव रणछोड़ राय की, हम देखी अद्भुत माया ॥ टेक ॥
जिस माया का खेल निराला मुझको श्रीगुरु ने बतलाया ।
ग्रस्य सिंहासन पे प्रभु बैठे, नेति नेति श्रुति ने गाया ॥ अखि ॥
जिनके दर्शन के हम कारण चार धाम में भटकाया ।
गुरुकृपाकरि हरि मन्दिर में, हरिका दर्शन करवाया ॥ अखि ॥
द्वारिकामि में श्याम चतुर्भुज हमको अतिशय आनंदपाया ।
अन्तर्यामी बसत अभ्यर, पता गुरुबिन नहिं पाया ॥ अखि ॥
पुरना पता मिल्या है उसको गुरु शरण में जो आया ।
कमल नित्यानन्द महाप्रभु पूर्णानन्द किया काया ॥ अखि० ॥

दोहा ।

अष्टप्रहर चौंसठ घड़ी तू श्याम रणछोड़ ।
तू श्याम अड़बा कर जीमे भुण्डा मोड़ ॥

——o——

९ कृष्ण-स्मरण।

* गजल *

हरदम मेरा चित हरघड़ी, श्रीकृष्ण कृष्ण बोल ॥ टेक ॥
दीखे चराचर देव पर, सूझे तुझे नहीं।
तेरे भी रोम रोम में, रमता है दृष्टि खोल ॥१॥ हरदम०
माया प्रपञ्च देख तू लोलुप होगया।
जननी के था जब गर्भमे, सन्मुख किया था कोल ॥२॥ हर०
जहां से तू आया है वहां, तू जायगा जरूर।
कायम मुकाम है नहीं, तुझको नहीं है तोल ॥३॥ हरदम०
चंचल अरे चित्त अचल को, होकर अचल रटो।
श्रीकृष्ण नित्यानन्द को, रट होके तू अडोल ॥४॥ हरदम०

दोहा।

श्रीकृष्ण सच्चिदानन्द का, सज्जन करते ध्यान।
दुर्जन नहिं सुमिरे रति, तू माने चहे ममान ॥१॥

—— ० ——

१० कृष्ण-स्तवन।

* पद राग लावणी *

श्रीकृष्ण कृष्ण हरवक्त, रटो मन मेरा।
क्यों इत उत नित उठ, भटको सांझ सवेरा ॥ टेक
यह मिला काल शुभ तोहि, करे क्यों देरा।
वित्त मिले नहीं विन भाग, एकहू खेरा ॥ १ ॥ श्रीकृष्ण०
क्यों विन विवेक शठ भर्म, गमावे तेरा।
जो लिखा विधाता अंक, करे को फेरा ॥ २ ॥ श्रीकृष्ण०

बहुरि सकल गोपियां हिल मिल, के आईं भाजी २ ।
प्रभु के सन्मुख नृत्य करें सब, बहु शोभा सुन्दर साजी ॥ अजब०
दिव्यदृष्टि से देखी दिव्यछवि, जहां नहिं हांजी नाजी ।
श्रीहरि को मुखसे कहे कामी, वह शठ पाजी पाजी ॥ अजब०
अद्भुत देव गुरु की माया, दीसे देख अथाजी ।
कहत कवि मोहन नित्यानद, गोपियां रत्ती भर नहिं लाजी ॥ अ.

दोहा ।

मोहन की बन्सी बजे, ब्रज मंडल के बीच ।
अखड ध्वनि हरिजन सुने, गोता खावे नीच ॥

—— ०.——

१२. रामनाम ।

* पद राग चलत *

श्रीराम तेरे नाम का, सुमिरण करूं सदा ॥ टेक ॥
तेरे रगमें रँगा मै, रोगी होगया ।
तदपि न त्यागा सत्य को, हम फर्ज किया अदा ॥ श्रीराम० ॥१॥
वायदा पूरा होगया जब राम तूं मिला ।
तू राम मेरी आत्मा, मुझ से नहीं जुदा ॥ श्रीराम० ॥२॥
छवि तूं मुझे दिखा चुका, मै देख चुका आप ।
तेरी अखड ज्योतिपे, मैं राम हूँ फिदा ॥ श्रीराम० ॥३॥
तेरी अखंड ज्योति में, सब ज्योति छुप रही ।
श्रीराम नित्यानन्द अब, किसको करे विदा ॥ श्रीराम० ॥४॥

बहुरि सकल गोपियां हिल मिल, के आई भाजी २ ।
प्रभुके सन्मुख नृत्य करें सब, बहु शोभा सुन्दर साजी ॥ अजब०
दिव्यदृष्टि से देखी दिव्यछवि, जहां नहिं हांजी नाजी ।
श्रीहरि को मुखसे कहे कामी, वह शठ पाजी पाजी ॥ अजब०
अद्भुत देव गुरु की माया, दीसे देख अथाजी ।
कहत कवि मोहन नित्यानद, गोपियां रती भर नहिं लाजी ॥ अ.

दोहा ।

मोहन की बन्सी बजे, ब्रज मंडल के बीच ।
अखड ध्वनि हरिजन सुने, गोता खावे नीच ॥

—— o ——

१२. रामनाम ।

* पद राग चलत *

श्रीराम तेरे नाम का, सुमिरण करूं सदा ॥ टेक ॥
तेरे रगमें रँगा मैं, रोगी होगया ।
तदपि न त्यागा सत्य को, हम फर्ज किया अदा ॥ श्रीराम० ॥१॥
वायदा पूरा होगया जब राम तूं मिला ।
तू राम मेरी आत्मा, मुझ से नहीं जुदा ॥ श्रीराम० ॥२॥
छवि तूं मुझे दिखा चुका, मैं देख चुका आप ।
तेरी अखड ज्योतिपे, मैं राम हूँ फिदा ॥ श्रीराम० ॥३॥
तेरी अखंड ज्योति मे, सब ज्योति छुप रही ।
श्रीराम नित्यानन्द अब, किसको करे विदा ॥ श्रीराम० ॥४॥

तू करे काम सब समझ, समझ निज चेरा।
अतिशय पूजे दे देव, सन्त जा नेरा ॥ ३ ॥ श्रीकृष्ण०
कछु मिले रसायन जड़ी, द्रव्य के हेरा।
ऐसी इच्छा कर तिन दिग कीने डेरा ॥ ४ ॥ श्रीकृष्ण०
क्या दे तिसको दे देव, सन्त गुरु बेरा।
ऐसा निज मनको, आन भाव न घेरा ॥ ५ ॥ श्रीकृष्ण०
कभी रहे नहीं स्थिर एक, घड़ी छिन हेरा।
ऐसा भ्रमत मो, मनोरम यह फेरा ॥ ६ ॥ श्रीकृष्ण०
तदपि नहि पायो सार, सुगम निज शेरा।
क्यों फिरता बिना विचार, कहुं सुन टेरा ॥ ७ ॥ श्रीकृष्ण
यह विश्व सकल गुरुरूप, कृष्ण चेरा।
कहे नित्यानन्द तब, हो सुख निज घनेरा ॥ ८ ॥ श्रीकृष्ण

दोहा।

सुरत चराचर दीखती तोऊ न देखे अंग।
हठ योगी हठ ना तजे, करे वचन गुरु भंग ॥
हरीभक्त हरि से थको, यामे मीन न मेक।
भजन रह प्रभुपद भजे, अन्त एक का एक ॥

—— o ——

११ मोहन की बंसी

* पद राग सोरठ मल्हार *

मधुर मोहन की बंसी बाजी धबराये पंडित काजी ॥ टेक ॥
बजी मधुर मोहन की बंसी गोपियाँ हो गई राजी।
अपने अपने सबहि भवन म डर बैठीं भूली ताजी ॥ मधुर० १

खेंच प्रभू अब डोर हमारी, मैं तुमरो नितही गुण गाऊं ॥१॥
प्रथम कृष्ण भगवान जन्म कुल, देखि बहुरि हरिद्वार में जाऊं ।
वहां पर गंगा है अति सुन्दर, मल मल के मैं तामें नहाऊं ॥२॥
चित्रकूट पुनि देखि अयोध्या, जनकपुरी जा लाड लडाऊं ।
जाय गया कर दान अन्न तन, जन्म जन्म को मैल बहाऊं ॥३॥
प्रागराज को वहां से धाऊं, फिर वहां से काशी जी जाऊं ।
काशी जी से वैजनाथ को, देख नैन मन में हरषाऊं ॥४॥
रामेश्वर को गमन करों फिर, जाय द्वारका छाप लगाऊं ।
वहां से गढ़ गिरनार देखि के, पुरी सुदामाजी को जाऊं ॥५॥
बद्रीनाथ केदारनाथ से, आदि धाम बहुरी कर आऊं ।
चारि धाम कर सुख शान्ती से, आय शरण गुरु शीश नमाऊं ॥
करि इच्छा मन पूरण स्वामी, निज मन को सन्देह नसाऊं ।
यह इच्छा भई देह दृष्टि से, मैं नित्यानन्द हरिरूप कहाऊं ॥७॥

दोहा ।

दर्शन करते ही भयो, वीर महा आनन्द ।
देव सच्चिदानन्द घन, आनन्दन के कन्द ॥१॥
मुरति देखना छोडदे, सुरति देख मन कीश ।
सुरति मुरति दोउ दृश्य हैं, द्रष्टा निज जगदीश ॥२॥

—— o ——

१५. बालकृष्ण महिमा ।

* पद राग प्रभाती *

बाल कृष्ण भगवान करे, भोजन सन्मुख देखो भाई ॥ टेक ॥
भोजन करे दुर्गुण नहिं जोवे, देख चतुर की चतुराई ।

दोहा।

राम भजन जो जन करैं, है उनको धन भाग।
प्रेम लग्यो भगवान में, रती न जग में राग ॥ १ ॥

—— o ——

१३ विष्णु-स्तुति।

* सोरठ मल्हार *

सुनो, हे श्री कृष्ण मुरारी संकट परजा को भारी ॥ टेक ॥
संकट घोर भयो परजा को चौदिशि घेरो भारी।
दुर्भक्ष बली दारुन फैलायो अब पकड़ भुजा कर धारी ॥ १ ॥
अंडज जरायुज स्वेदज उद्भिज, दुखी जानि बहुधारी।
देव सच्चिदानंद न्यारिया अब सब को करो सुखारी ॥ २ ॥
भूखे नाज करता नाना भूखी रैयत सारी।
उतर गयो मद धन जोबन को अब क्षमा करो गिरधारी ॥ ३ ॥
प्रभु अब क्षमा भया सब मांगे दोउ कर जोड़ पुकारी।
पूरण ब्रह्म नाथ निरपाखद करो मंगल बहुरि बिहारी ॥ ४ ॥

दोहा।

वासुदेव सब में बसे सब को साम पोख।
मूरख मुख से यों कहे बसे पोल में ढोल ॥

—— o ——

१४ जगन्नाथ स्तुति।

* पद राग कालिंगड़ा *

जगन्नाथ भगवान सुनो अब चरण कमल के दर्शन पाऊं ॥ टे
मो उर इच्छा भई पुनि मन में मा तुमरे सब निकट सुनाऊं

दूर अज्ञान को कीजे, क्षमा भगवान से लीजे।
तबहिं परब्रह्म पद सूझे, नित्यानंद कहत मतिधारी ॥४॥

दोहा।

केशव गुसानन्दमय, निरखू श्वासोश्वास।
आशा को दासी करी, कीनो दास निरास ॥ १ ॥

—— o ——

१७. रामेश्वर स्तुति।

* पद राग गजल कव्वाली *

रामेश्वर ईश को जपते, ऋषी मुनि देव नर नारी ॥ टेक ॥
सत्य सकल्प त्रिपुरारी, गजाधर गिरीपति वारी।
भक्तों की भक्ति के कारण, निरगुण से वपूधारी ॥१॥ रामे०
भक्तों को प्रेम कर साई, देवे फल चार तिन ताई।
पुनि गर्भ वास ना पाई, करो मन भक्ति अब भारी ॥२॥ रामे०
भक्ति रस है अति मीठा, विवेकी सत समझावे।
भक्ति भगवान को प्यारी, कहूं थोडी मे सुन सारी ॥३॥ रामे०
शान्ति उर धार अब धीरा, नित्यानद बहुरि समझावे।
तबहि परब्रह्म पद पावे, अविद्या जाल मझारी ॥४॥ रामे०

दोहा।

रामेश्वर भगवान का, जो अन करते ध्यान।
कृपा करे उन पर गुरू, दे निज ज्ञान विज्ञान ॥

—— o ——

जो कुछ दे सो आप ख्यालिया रती एक प्रीती भाई ॥१॥ बाल०
आप रोवे मुख नहिं धोवे, मक्खी मुख ऊपर भिनकाई ।
मोठ झूठ चोर मुख मोरे, सग नहीं जिनके पाई ॥२॥ बाल०
देख दिगम्बर भेष तिहारो, मति मोरी अति हर्षाई ।
स्वांग धरया सबहीं तू रसदा मिलन मुझको तू चर्खाई ॥३॥
तेरी गहन गती है बाबा तूं मांगे रसदा आवा ।
बालरूप धरि बाल चेष्टा, सकल कला कर बतलाई ॥४॥ बाल०
मान मोह रीता नहिं तन में तू गुप्त ख्यालिया ब्रह्मचारी ।
गुणसागर पकी छवि तोरी, निज नित्यानन्द मुख से गाई ॥५॥

दोहा ।

सुरत देखना अति कठिन है मुरत देखना सहेल ।
सुरत मुरत मन मोहनी देखत द्रग निर्मेल ॥

— o —

१६ रामेश्वर महिमा ।

• पद राग गजल कव्वाली •

रामेश्वर ईश तन मन की तुम्हारी आरता सारी ॥ टेक ॥
नाथ त्रिकाल की जाने तुम्हारी कौन गिनती है ॥
सीफ रख श्याम का मन में राख विषयन की तज यारी ॥१॥
यारी अब यार से कीजे यार की सच्ची है यारी ।
यार की यारी को तज के फिर क्यों चित्त व्यभिचारी ॥२॥
यार बिन ना कोई अपना जगत् जंजाल जिमि सपना ।
फसो तुम मान कर अपना यही अज्ञान अति भारी ॥३॥ रामे०

१९. कोटेश्वर स्तुति ।

* पद राग लावनी *

श्री कोटेश्वर दरबार, देखि छवि तोरी ।
पुनि भई सुमति तत्काल, कुमति गई मोरी ॥ टेक
तुम हो त्रिपुरारी देव, शीष गंगधारी ।
चमकत शशि जिनके भाल, खात भंग कोरी ॥१॥ श्री कोटे०
कर चित्त प्रसन्न सदैव, बजावत डमरी ।
गल डाल मुण्ड की माल, व्याल कर डोरी ॥२॥ श्री कोटे०
गिरिजा माता तिन अर्द्ध, अंग में शोरी ।
नंदीगण बैठे आप, भस्म तन रोरी ॥३॥ श्री कोटे०
वीना का बाजा बजा, बहुरि त्रिपुरारी ।
कर मे जिनके त्रिशूल, देखि छवि थोरी ॥४॥ श्री कोटे०
बाबा का है वह धाम, गिरि कैलासी ।
कहे नित्यानन्द जय शम्भु, युगल कर जोरी ॥५॥ श्री कोटे०

दोहा ।

जो देखी सो हम कही, कही न मिथ्या अंग ।
कोटेश्वर भगवान के, सदा रहूँ मे संग ॥

—— ०,——

२०. शम्भू की महिमा ।

* पद राग चलत *

शम्भू तेरे दरबार में, कुछ भी कमी नहीं ॥ टेक ॥
करता हू कुल्ला दूध से, पीता हू खूब भंग ।

१८ ॐकार स्तुति ।

* पद राग गजल कव्वाली *

प्रभु ॐकार कैलाशी नर्मदावासी बड़े बासी ॥ टेक ॥
हमारे पीर उर भारी लगी तुम दरश की यारी ।
नसी भव वासना सारी मिले दिलदार अविनाशी ॥१॥ प्रभु०
तुम्हारे धाम को आये, दुखी दुर्वेस सन्यासी ।
दया कर आप दीनोंपे हरो सब काम की फांसी ॥२॥ प्रभु०
दोऊ तट बीच में गंगा घाट है किश्ती का चंगा ।
पुरी हैं तीन तुम संगा, आपकी शिवपुरी काशी ॥३॥ प्रभु०
नर्मदा जी बड़ी भारी नाव तब बीच में डारी ।
पार होवें वो नर नारी गहैं प्रभु नाम की राशी ॥४॥ प्रभु
कावेर चौमेर पहाड़ों का रूप बन सघन झाड़ों का ।
धाम या देव सन्तों का सदा मोरी तुम्हा उदासी ॥५॥ प्रभु०
करो असनान गंगा को दान दो विप्र कन्या को ।
निरखलो रूप बाबा का, समाहि निज रूप तुम पासी ॥६॥ प्रभु०
जागत हो अप ही जाता स्वपन में अप ना आता ।
सुषुपन सापन में होता, आप निर्लेप निर्वासी ॥७॥ प्रभु०
देव ऋषि को भया राजी मीटि चौरासि की बाजी ।
नित्यानंद कहे गजल ताजी नमो भगवान अविनाशी ॥८॥ प्रभु

दोहा ।

बाहर वस्तु अनेक हैं भीतर एकम एक ।
तुम सच्चिदानन्द हूं कर के देख विवेक ॥

—o—

दोहा।

नर तन उत्तम पायके, देख चराचर शीव।
वही पिण्ड ब्रह्माण्ड का, शिव साक्षी निज जीव॥

—— o ——

२२. शंकर स्तवन।

* पद राग भैरवी *

कवन विधि, आप मिलोगे, त्रिपुरारी॥ टेक
आप मिलन की अति उत्कंठा, मो उर लागी भारी।
सो प्रभु सत्य २ अब कहिये, मैं आरत शरण तिहारी॥ १
पांच सहेलियां निशिदिन मोकूं, नाच नचावत वारी।
ऐसो मोय पकड कस बांध्यो, नहिं होने दे न्यारी॥ २
आप जाप को जपे सुजन जन, सो अमृत नहिं खारी।
ऐसी तात सुनी जब मैंने, मो मन चढ़ी खुमारी॥ ३
दुष्ट सग अब हर त्रयलोचन, ये सुन अरज हमारी।
दीन जान अ-दीन करो अब, दो दर्शन पुचकारी॥ ४
दोउ कर जोड कहे नित्यानद, सुन भोला भडारी।
मैं शरणागत तात तिहारी, कर भव सागर पारी॥ ५

दोहा।

दर्शन जिज्ञासु करे, महादेव का अग।
भटकें भोगन के लिये, भोगी श्रीगुरुसग॥

—— o ——

दोहा।

नर तन उत्तम पायके, देख चराचर शीव ।
वही पिण्ड ब्रह्माण्ड का, शिव साक्षी निज जीव ॥

—— o ——

२२. शंकर स्तवन ।

* पद राग भैरवी *

कवन विधि, आप मिलोगे, त्रिपुरारी ॥ टेक
आप मिलन की अति उत्कंठा, मो उर लागी भारी ।
सो प्रभु सत्य २ अब कहिये, मैं आरत शरण तिहारी ॥ १
पांच सहेलियां निशिदिन मोकूं, नाच नचावत वारी ।
ऐसो मोय पकड कस बांध्यो, नहिं होने दे न्यारी ॥ २
आप जाप को जपे सुजन जन, सो अमृत नहिं खारी ।
ऐसी तात सुनी जब मैंने, मो मन चढ़ी खुमारी ॥ ३
दुष्ट सग अब हर त्रयलोचन, ये सुन अरज हमारी ।
दीन जान अ–दीन करो अब, दो दर्शन पुचकारी ॥ ४
दोउ कर जोड कहे नित्यानद, सुन भोला भडारी ।
मै शरणागत तात तिहारी, कर भव सागर पारी ॥ ५

दोहा।

दर्शन जिज्ञासु करे, महादेव का अग ।
भटके भोगन के लिये, भोगी श्रीगुरुसंग ॥

—— o ——

२३ गुप्त कैलास।

* पद राग गजल कव्वाली *

गुप्त कैलास के अन्दर, अलौकिक आनंद होता है॥ टेक
पिण्ड ब्रह्माण्ड का स्वामी, करे समशान में क्रीडा।
भूत गण संग में गिरिजा कभी जगता न सोता है॥ १
चर्मचक्षु से नहिं दीखे सच्चिदानन्द की झांकी।
दिव्यचक्षू करे दर्शन ईश हंसता न रोता है॥ २
विभूती देख कर उसकी भक्त साधू ऋषी ध्यानी।
विरागी रागी होते हैं मान पाता न खोता है॥ ३
कभी कैलास से भागी, अन्तर्यामी से नहिं छानी।
सुनाई जय नारायण न, गुरू जोग न जोता है॥ ४

दोहा।

भक्त देव भगवान न श्रीगुरु कहे न दूर।
तदपि भिन्न अभिन्न हैं, नित्य नारायण नूर॥१॥
श्रीमन् नारायण प्रथम हुआ जय नाराय।
पीछे नारायण भये, कड़ी न नाम दिखाय॥२॥
गुप्त मन्नी न दखिये गुप्त न दीखे काय।
दास महा योगीश का दर्शन दुर्लभ हाय॥३॥

—०—

२४ श्री नर्मदाष्टकम्।

• हरिगीत छंद •

शीतल पवित्र विमल सुन्दर शुभ्र है आभी छबी।
रहती सदा शंभू के संग, श्री नर्मदाजी कद कवि॥ १

जाके दोऊ तट पे पवित्र, बहुत से अस्थान हैं ।
तहां साधु सन्यासी हरिजन, प्रभु का करें गुण-गान हैं ॥ २
भगवान् के दर्शन को लाखों, यत्न प्राणी कर रहे ।
है एक रस वर देव देह में, श्रुति तथा स्मृति मे कहे ॥ ३
श्रुति सिमरती को सुनें, श्रुति सिमरती को पढ़ें ।
तदपि नहीं तत्त्व मे रति, अपतत्त्व को निशिदिन रडें ॥ ४
अपतत्व को जब तक रडे, नहिं तत्व को प्रापित किया ।
जिसने किया है प्राप्त उनका, शीतल सदा रहता हिया ॥ ५
अलमस्त को पर्वा नहीं, त्रीलोक को तृणवत् लखें ।
रागी पराये माल को, तीरथमें रह इत उत तकें ॥ ६
भगवान के शरणे हुए, तज दीनता को जो चरें ।
श्री नर्मदाजी के किनारे, वो दर्शन सदा शिव के करें ॥ ७
धन्य है उस प्राणी को, सत्कर्म तीरथ में करें ।
कहे गुप्त अश्व डूबे सफा, वो तक्ष भवसागर तरें ॥ ८

दोहा ।

चार वर्ण में जो कोई, करे वीरता वीर ।
बाबा आदम शीघ्र ही, हरे सकल उर पीर ॥

—— o ——

२५. ईश विनय ।

* गजल *

नहीं कोई विश्व में मेरा, कहां परमेश जाता है ?
सभी सम्बन्ध मिथ्या है, तुम्हारा सत्य नाता है ॥ १
भटकता भूलता फिरता, तभी तक ठोकरें खाता ।

[३] मस्तों के हृदयोद्गार ।

१. गुप्त गुरु की गुप्त कथा ।

* पद राग प्रभाती *

कहे केशव, अब सुन नित्यानन्द ! गुप्त गुरू की गुप्त कथा ॥टेक॥
हम देखी अद्भुत प्रिय लीला, टेढा जिनका कुल मता ।
चरण-कमल में रहे कपट से, वो इतउत डोले गोता ॥१॥कहे०॥
निष्कपटी प्राणी बाबा के, चरण शरण में अड़ रहता ।
शीघ्र सरे उनके सब कारज, जो हम देखी सो कहता ॥२॥कहे०॥
धर्या ध्यान दर्शन नहिं पाया, दर्शन काज ध्यान धरता ।
बिना ध्यान दर्शन मैं करता, क्वचित् पुरुष कोइ पावे पता ॥३॥
मैं केवल वक्ता नित्यानन्द, तू श्रोता सच मैं कहता ।
कथा अलौकिक करू गुप्त को, उस बिन नहिं हिलता पत्ता ॥४॥

—— ० ——

२. महा विकट माया ।

* पद राग प्रभातो *

कहे गुप्तेश्वर सुन नित्यानन्द, महा विकट मेरी माया ॥ टेक
महायोगी मुनिजन को इसन, नगा करके नचवाया ।
इस ठगनी को जो कोई ठगता, गुरू तत्व जिसने पाया ॥ १
तुरत डसे डाकण ये उसको, बचता नहीं इसका खाया ।
गुरू तत्व से वेमुख प्राणी, इसके रग मे रगवाया ॥२॥ कहे०

गुरु कृपा जिसके सिर ऊपर, वो जग में नहिं लिपटाया ।
वो सुलझे उलझे से दीसे, वो सुलझे नहिं उलझाया ॥३॥ कहे॰
ये मेरे चरणन की दासी इसकी नहिं दीसे काया ।
केवल नित्यानंद निरन्तर, निजपद मुझे नजर आया ॥४॥ कह॰

— o —

३ सदा मस्त रहे मस्ताना ।

॰ पद राग प्रभाती ॰

कहे गुरुश्वर सुन नित्यानंद ! सदा मस्त रहे मस्ताना ॥ टेक
सुखमस्ती के सन्मुख फक्कड़, कंपावे राजा राणा ।
हाथ जोड़के करे बीनती मस्तराम आओ खाणा ॥१॥ कहे॰
मस्तों की मस्ती माहि छिपती मस्त मस्त का पहिचाना ।
फकीरमस्त बहुत हम देखे जिनका माहिं मिलना दाना ॥२॥
मस्तों का दर्शन महा दुलभ क्वचित् मस्त होय कामा ।
तन धन की परवा नहिं उनको एक ब्रह्म जिनने जाना ॥३॥
मस्त अलमंद रहे मस्ती में, मुझका मुझको है समझाना ।
इस कारण सुन शुभ कुटी पर मेरा यार हुवा आना ॥४॥ कहे॰

— o —

४ दुनिया दुरंगी ।

॰ पद राग प्रभाती ॰

कहे गुरुश्वर सुन नित्यानंद, दुनिया यार दुरंगी है ॥ टेक
ये दुनिया भीतर से कपटी बाहर से बहुरंगी है ।

कर विवेक देखी तब मैंने, मै नगा यह नंगी है ॥१॥ कहे०
अपनी वमन को सूकर कूकर, चाटन मिल सरभगी है।
सुसगी को एक पलक में, तुरतहि करे कुसंगी है ॥२॥ कहे०
परम विरागी मै नहिं रागी, ये मेरी अर्धंगी है।
इसके संगमे भोग भोगता, पुष्प संग ज्यों भृङ्गी है ॥३॥ कहे०
अधकच्चरा अधविच में मरता, ठगनी ठगनेमें जंगी है।
अटल खजाना भरया माल से, यहां कुछ भी नहिं तंगी है ॥४॥

—— ० ——

५. चला चली का मेला।

* पद राग प्रभाती *

कहे केशव अब सुन नित्यानद, चला चली का मेला है।
धता धती का मेला है॥ टेक
धता-भक्त-ज्ञानी, विज्ञानी, सतत फिरे अकेला है।
उनकी निज निर्मल दृष्टी में, नहीं गुरू नहि चेला है ॥१॥ कहे०
महा अवधूत दिगबर योगी, उनका टेडा गैला है।
अखिल विश्व मे रमे शूरमा, नहिं न्यारा नहिं भेला है ॥२॥ कहे०
देखिय नाम रूप की लीला, यही तो मेला खेला है।
जिसमें फस अज्ञ जन शठ मरता, करता तेला चेला है ॥३॥ कहे०
अचल सत केशव नित्यानद, चल साधु बहु सहेला है।
परमहस सन्यासी कोविद, लिखा रक्त का रेला है ॥४॥ कहे०

६ आनन्दघन के कन्द ।

*** पद राग होली बसन्त ***

कथे अवधूत दिगम्बर आनन्दघन के कन्द ॥ टेक
वेद वेदान्त स्मृति श्रुति, गायत्री पढ़े छंद ।
पढ़ना साहेब गुरु बिन जबरा, बंध गये मकरंद जिमि फंद ॥ १
कल्पित नाम रूप पंचाभिम, सत्य कहे मति मंद ।
मस्त अमस्त भोग हठभोगे, माने मनमें आनंद ॥२॥ कथे०
सत्यपद मास किया सो मस्ती, शीमनि हुवे निबन्ध ।
राग विराग होय तुल जिनके, सुधे न पुण्य सुगंध ॥३॥ कथे०
तत्व अतत्व भयकर नहिं जाने, उनके कहे न फंद ।
भव पिया हुवे भवसागर, मस्त रह निरानन्द ॥४॥ कथे०

———.०.———

७ सूरत मौज हमेश ।

*** पद राग बसन्त ***

देखो अवधूत दिगंबर, सूरत मौज हमेश ॥ टेक
पर निन्दा पर तिय धन तजके, फिरते देश विदेश ।
जो कोई मासी होय जिज्ञासु, वाको दे सत उपदेश ॥१॥ देखो०
राजु दिशा अंबर है जिनके, देहाभिमान न लेश ।
नर अवधूत स्वयं नारायण रमें सुख घर वेश ॥२॥ देखो०
हाथ जोड़ के सम्मुख ठाड़े जिनके पंच कलेश ।
चिन्मनाथ अवधूत दिगंबर, सब अंग का अमेश ॥३॥ देखो०

वर्णाश्रम का चिन्ह न दीखे, नहिं कर मिथ्या भेश।
मौज होय तब बोलत मुज से, खुद नित्यानन्द महेश ॥४॥ दें.

—— o ——

८. मस्त रहे दिन रैन।

* पद राग होली वसन्त *

अखिल अवधूत दिगंबर, मस्त रहे दिन रैन ॥ टेक
वचन प्रमाणिक बोलत मुख से, कटु नहिं बोलत बैन।
दुष्ट क्रिया विपरीत करे सब, पडे न ताको चैन ॥१॥ अखिल०
पोपट देख पत्नी स्वामी की, मूढ पिछानत सैन।
नशाबाज होवे कोई प्राणी, छुपे न ताको बैन ॥२॥ अखिल०
अवधूतन को विकट धाम है, जाकी हैं टेढ़ी लैन।
गुरू कृपा पूरण जब होवे, गुरु पद पावे गहेन ॥३॥ अखिल०
जन्म-मरण का चक्कर छूटे, छुटे लैन अरु दैन।
कहत मस्त मुख से सतवाणी, तूं देख खोल के नैन ॥४॥ अखि.

—— o ——

९. महाकालन के काल।

* पद राग होली वसन्त *

केवल अवधूत दिगंबर, महा कालन के काल ॥ टेक
हाथ जोडके जिनके सन्मुख, थर थर कंपत काल।
क्वचित विवेकी देखत लीला, गुप्त प्रकट सब हाल ॥१॥ केवल
जडमति जीव महा योगी को, मुख से कहत कंगाल।

देख लोक पीछे सब मीचें तू मिज मुस्काता डाल ॥२॥ कहत॰
तीन लोक के नाथ निरंजन हैं जग के प्रतिपाल ।
ऋद्धिसिद्धि नवनिधि जिन्हों की कोउ चमर डुलावत लाल ॥३
चहिरंग स्वांग सभी हैं उसके तू क्या जाने बाल ।
कहत मस्त मुख से सतवाणी, हर भव भय शिव लाल ॥४॥

———o———

१० निर्मल स्वरूप प्रकाश ।

• पद राग होली बसन्त •

गुरू अवधूत दिगंबर, निर्मल स्वयं प्रकाश ॥ टेक
शुद्ध सच्चिदानन्द शुभ अन्तर्यामी हैं पास ।
विश्व वस्तु होवे तब भी गुरु होय बराबर भास ॥१॥ गुरू॰
हैं परिपूरण देख गुरू को तज सब जग की आस ।
चारू खानि में सर्वांग निरंतर सतत करत निवास ॥२॥ गुरू॰
शुभ गुरू पद गुरुहि पेखा, जहां नहिं दासी दास ।
गुरुज्ञान होय तब छूटे दास दासी की वास ॥३॥ गुरू॰
सर्व शक्ति सर्वेश स्वगुरू, करे अविद्या नाश ।
कहत मस्त मुख से सत्वाणी है सर्व भासहु भास ॥४॥ गुरू॰

दोहा ।

तू देख दिल से मुझे, करता बहुरि प्रणाम ।
मैं देखूं निज नैन से तुझको आठों याम ॥

———o———

११. गुप्तानन्द महेश ।

* पद राग होली वसन्त *

गुरू अवधूत दिगंबर, गुप्तानन्द महेश ॥ टेक
सत्चित आनन्द रूप गुरू को, है अमरापुर देश ।
गुप्त गुरू केशव नित्यानद, खुद त्रिभुवन नरेश ॥१॥ गुरू०
कर्म रेख गुरू गुप्त मिटावे, दे केशव उपदेश ।
नित्यानंद दिखावत लीला, जामें तम नहिं लेश ॥२॥ गुरू०
तीनों तीन गुणों के स्वामी, वे नहिं गुण मे लेश ।
गुणातीत गुरु गुप्तानद मय, वे दर्शन देत हमेश ॥३॥ गुरू०
भटकत भटकत भव में भारी, हुआ अति मोहि कलेश ।
सच्चे सद्गुरु मिले मोय तव, भयो आनद यार अशेष ॥४ गुरू०

—— ० ——

[४] गुरु महिमा ।

१. गुरु महिमा ।

* पद राग भैरवी *

गुरु की महिमा अपरपार ।
जापे कृपा करे तव वो जन, पावे रूप अपार ॥ टेक
जेते भूत प्राणी पुनि जग में, वे जिनके आधार ।
यह अब हम निश्चय कर जानी, तुम दीनोंजी मनुष अवतार ॥१
जैसे मणका वने काष्ट से, भिन्न भिन्न आकार ।
सूत्र आश्रये सवही फिरत है, तैसे ही तुम करतार ॥२॥ गुरु०

कोउक आनत मम तुम्हारो सो मन नाहिं गवांर ।
भव सागर से वह तिर आवत, आप ही तेवो की उबार ॥३॥
पार अपार नहीं कोउ जाको, अगम अनन्त विस्तार ।
ऐसो रूप लख्यो चिदानंद, गुरुजी मिले दिलदार ॥४॥ गुरु

दोहा ।

गुरु कुम्हार शिष कुंभ है, घुन घुन काढत खोट ।
अन्तर हाथ सहाय दे बाहिर मारत चोट ॥

———) ———

२ गुरु पंथ ।

* पद राग कव्वाली *

तेरे सत्संग दरबार की महा विकट बात है ।
गुरु-भक्त दिव्य स्वरूप मिल देखे दिदार है ॥ टेक
सूरत में ही मूरत में ही जहां देखे वहां दीखू में ही ।
कोई भेद ना न अभेद है नहीं दीखे दिल में चोर है ॥ १
भेदू से पावे भेद इस तेरे सत्संग दरबार का ।
दर पे हजारों मकुफत हम देखा चौसट पार है ॥ २
विद्या पढ़ें अगरण करें, तप होइ के भव में पड़ें ।
वे भोगों को भोगी रह रहे विषयों की जिनकी चाह है ॥ ३
महावीर तो होवे कोइक,—जो धीरता के कृत करे ।
दर पै शिष्यों के देखिय पुस्ता हमेशा ठाट है ॥ ४

दोहा ।

मंगल मन्दिर है खुला देख चौक के मैन ।
जगत्-गुरु जिज्ञासु को दे दर्शन दिन रैन ॥

३. गुरु दरबार ।

दोहा ।

देखें दर दरवान हम, महावीर बलवान ।
जो जन इनको जय करे, पावे पद निर्वान ॥ १ ॥

* पद राग चलत कव्वाली *

तेरे मलंग दरबार की, अपार है गती ।
जैसा तू है वैसा तुझे, यक देखे शुध मती ॥ टेक
द्वे रूप तेरे हैं विमल, निर्दयी दयालू हे गुरू ।
वे जड बुद्धि जन रोवें सदा, जिनकी अनातम मे रती ॥ १
भोगों के भोगन में प्रबल, जिनकी मति लोलुप है ।
वे अधिकारी नहिं गुरुबोध के, ये श्रीव्यास शिव आदिकती ॥ २
अधिकारी बिन दर्शन तेरा, वर-देव कभी होता नही ।
हैं लाखों करोडों में क्वचित्, पतिसंग सखि होवे सत्ती ॥ ३
हैं प्रधान निज वैराग सो, वैराग्य जिनको है नहीं ।
तू दीखे नहीं देखे मलंग, कोई वीर आशिक है जती ॥ ४

—— ० ——

४. प्रभु मय गुरु ।

* पद चाल कव्वाली *

प्रेमी भक्तगण प्रभू को—प्रभु-मय गुरू को देखो ॥ टेक
प्रभु है सोई गुरू है, गुरु है सोई प्रभू है ।
अरे वो आत्मा तेरी है, गीलो है तूं ही सूखो ॥१॥

६ गुरु शरण ।

* पद राग सोहनी *

श्री गुमानंद गुरु आपकी मैं, शरण में अब आचुका ॥टेक॥
अब आपकी मैं ले शरण, फिर कौन की लेऊं शरण ।
बहुतेरा इतउत जगत में पुनि, तात भटका खाचुका ॥१॥
जिस वस्तु को मैं चाहता था, आज उसको पाचुका ।
कर दरस दिल से शोक नाशे, चित्त अब सुख पाचुका ॥२॥
मोपे दयालु कर दया, निज-अंग से लिपटा लिया ।
वो ह्य आतम बोध मुझको, युक्ति से समझा चुका ॥३॥
अब नाहिं चिन्ता लेश चित को, चित्त निज निर्मल भया ।
यह कहत नित्यानंद, नित्यानद मति रस छाचुका ॥४॥

दोहा ।

कविता सज्जन जन पढें, पढ़ कर करें विचार ।
रसिकविहारी रसिक मे, गयो जमारो हार ॥

——.o ——

७ गुरु वन्दना ।

* कुण्डलिया छन्द *

गुरू गुरू सोऽह गुरू, स्वामी गुमानन्द ।
जो जन चरणन मे पडे, तिनको किये निर्बंध ॥
तिनको किये निर्बंध, गुम खुद मारी गोली ।
चारोंवर्ण समान, जले जिमि सन्मुख होली ॥

छिको छीर तज नीर, चित्त चंचलता नासे।
तभी सच्चिदानन्द राम, परिपूरण भासे ॥
वो कहे निज नित्यानन्द, जहां लग मन को दासा।
छूटे किमि संसार, मिटी नहिं तृष्णा आशा ॥

दोहा।
रोगी को निरोगी करे, करते यत्न अपार।
रोगी की नीरोगी रति, सुनता नहीं पुकार ॥

—— o ——

१० अज्ञानी गुरू।

* सवैया *

शिष्य को नाहिं कसूर जरा, जितनों जग माहि कसूर गुरू को।
जैसी दई गुरुदेव मति, निश्चल इमि रहे जिमि तारो ध्रुव को ॥
चाहे छले त्रिपुरारी हरि विधि, नाहिं डिगे गुरुज्ञान शिरू को।
शिष्यको ध्यान धरे नित्य ही गुरु, अज्ञ गुरू को टर्यो न उरूको ॥

दोहा।
धन हरके धोखा हरे, सो सद्गुरु प्रिय मोर।
तिन पद को वन्दन करू, हरष हरष कर जोर ॥

—— o ——

११ गुरु निंदा।

* पद राग कव्वाली *

सद्-गुरुदेव की निन्दा, कभी मुख से नहीं करना ॥ टेक ॥
उठते वैठते फिरते, सद्गुरु नाम को भजना ॥

यो कहे नित्य नित्यानन्द, गुरु-गुरु निसम पाया ।
ते प्राणी तम त्याग, गुरू-पद मांहि समाया ॥

दोहा ।

प्रीति प्रीति सब कोई कहे कठिन प्रीति की रीत ।
आदि अन्त तक ना रहे जिमि बालू की भींत ॥१॥

—:o:—

८ गुरु स्तुति ।

• कुण्डलिया छन्द •

गुरू गुरु सोऽहं गुरू, पूरण परमानन्द ।
सो स्वामी गुरु सद्गुरू, समझ समझ मति मन्द ।
समझ समझ मति मन्द, मन क्यों फिरे दिवाना ।
और गुरू सब भरम, धन्ध पैठे नहि नाना ॥
यो कहे नित्य नित्यानन्द सत्य गुरु सुन्दर बाना ।
हम निश्चय गुरु गुरु, मति परि पूरण जाना ॥

दोहा ।

प्रीति जहाँ परदा नहीं परदा जहाँ न प्रीत ।
प्रीति रहत परदा रहत यह प्रीति नहीं विपरीत ॥२॥

—o—

९ गुरु ध्यान ।

• कुण्डलिया छन्द •

ध्यान धरा गुरुदेव का मनमें धरना धीर ।
जगत मांहि माया महा। छिरा छीर तज नीर ॥

गुरुं स्वच्छं महा शान्त, नित्यानन्दमुमाधवम् ।
द्वन्द्वातीतं मत्यतीत, केशवं प्रणमाम्यहम् ॥ ४ ॥
गुरुमात्मपरब्रह्म, आदिमीशं सनातनम् ।
कलातीतमनुपमं, केशवं प्रणमाम्यहम् ॥ ५ ॥
गुरु गुप्त कविं मुक्तं, भूमानद जनार्दनम् ।
विश्वनाथं शान्तरूप, केशव प्रणमाम्यहम् ॥ ६ ॥
गुरु तूर्यं ज्ञानदीप, महाकालं महीपतिम् ।
जगन्निवास स्वप्रकाश, केशवं प्रणमाम्यहम् ॥ ७ ॥
गुरुं नित्य निजानन्दं, देशकाला विभाजितम् ।
भजे चित्ते सत्यरूपं, केशव प्रणमाम्यहम् ॥ ८ ॥

दोहा ।

गुरू गुरू से मांगता, गुरू देखता तात ।
गुरू गुरू का साक्षि है, रहे सदा गुरू साथ ॥

—— o ——

[५] सन्त महिमा

१. सन्त पद ।

* पदराग सोहनी *

सन्तों की पदवी प्राप्त करना, कछु सहेल की नहिं वात है ॥ टेक ॥
पूरव हुये हैं सन्त जन, उनकी कथा विख्यात है ।
धन है उन्हीं को धन्य है, कछु सहेल की नहिं वात है ॥१॥

भजो जिसको बिना देखे कभी होता नहीं तरना ॥

सद्गुरुदेव ॥१॥

हाथ तैराई तरे है डूबना पार या बचना ।
ईश्वर से भी अधिक गुरु को, ध्यान दे ध्यान को धरना ॥

सद्गुरु देव ॥२॥

छलभी दूसरा लम्पट, गुरु वेदान्ती बनता ।
दम्भ सभी दर्प करते, भार नरकों में होय पड़ना ॥

सद्गुरु देव ॥३॥

वाणी भवानी की हरि दीक्षती देखको मक्तो ।
कथे अनपूर्ण सब गुणोंक, चतुरि निज मन होय धरना ॥

सद्गुरु देव ॥४॥

दोहा ।

गुरु गुरु से मांगता, गुरु देखता भग ।
कहो संग कैसे मिले अपविध हाथे भग ॥

—— o ——

१२ केशवाष्टकम् ।

गुरु सत्यं विभु चैत्यं परमानन्द-रूपकम् ।
साक्षी मध्ये प्रत्यक्षं नित्यं, केशवं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥
गुरुदेवमजं सत्यं शुद्धं बुद्धं निरंजनम् ।
निराकारं निराभासं केशवं प्रणमाम्यहम् ॥ २ ॥
गुरुं सर्वं वासुदेवं निष्कलं गगनोपमम् ।
एकं सर्वं गुणातीतं केशवं प्रणमाम्यहम् ॥ ३ ॥

दोहा ।

विन विवेक भासे नहीं, जग में सार असार ।
कर विवेक जव देखिये, ब्रह्म ज्ञान एक सार ॥

—— o ——

३. सन्यस्थ ।

* अलौकिक अष्टकम्–हरि गीत छन्द *

कलिकाल में सन्यस्थ को, लेना नहिं देना कोई ।
सन्यस्थ के धर्मों का पालन, कीये विना रोवे दोई ॥१॥
घरमें करे झगडा सदा, कछु काम धन्धा ना करे ।
फिर जाके सन्यासी वने, ऊपर को चढ नीचे गिरे ॥२॥
निष्कलंकी होके जो कोई, सन्यस्थ को धारण करे ।
ससार सागर को वोही जन, प्रेम से शीघ्रहि तरे ॥३॥
फरजी वना के भेष मूरख, श्वान जिमि उद्दर भरे ।
उनकी गती शुभ होय नहिं, वो मौत विन आई मरे ॥४॥
वैराग्य जिनको है नहीं, समसानिया वैराग है ।
वैराग्य होय अखण्ड उनको, वेद कहता त्याग है ॥५॥
वेद के अनुसार त्यागी, क्वचित वुधजन होत हैं ।
सत्चित आनद चीन्ह निजपद, वो वहुरि निर्भय सोत हैं ॥६॥
सन्यासी जन इस विश्वमे, भगवान् के अवतार है ।
उनकी क्रिया छिपती नहीं, कुल वेद के अनुसार हैं ॥७॥
दिन में हजारों वार मूरख, रागि वैरागी वने ।
कहे मस्त वो सन्यस्थ के, अधिकारि नहिं श्रीहरि भणे ॥८॥

महा कठिन तप जिनने किए करके ये कृत कृत हुए ।
धन है उन्हीं को धन्य है, कछु सहेल की नहिं बात है ॥ २ ॥

जड़ देह दृश्य स्वरूप शून्य तज जिनकी अखंड सत में रही ।
धन है उन्हीं को धन्य है कछु सहेल की नहिं बात है ॥ ३ ॥

बीच इस भवसागर के, जय जय जिन्हों की होरही ।
धन है उन्हीं को धन्य है कछु सहेल की नहिं बात है ॥ ४ ॥

दोहा ।

सन्त सदा एकान्त में करते शुभ विचार ।
प्यार सच्चिदानन्द है यह जग अखिल असार ॥

---

२ सन्त जन ।

* पदराग मोहनी *

सन्तों की पदवी संत जन, इस विश्व में प्राप्त करें ॥ टेक ॥

हठ योगी हठ क्रिया करें पद सत्य हठ से है परे ।
है महा कठिन पद महा कठिन इस विश्वमें प्राप्त करें ॥ १ ॥

भाग्य जब सद्गुरु मिलें चौरासि जन्म चक्कर हरें ।
है महा कठिन पद महा कठिन इस विश्वमें प्राप्त करें ॥ २ ॥

फिरते हजारों सन्त जन कोई कथित पर साधू बनें ।
है महा कठिन पद महा कठिन इस विश्वमें प्राप्त करें ॥ ३ ॥

होकर निडर इस विश्वमें अलमस्त जो होकर चलें ।
है महा कठिन पद महा कठिन इस विश्वमें प्राप्त करें ॥ ४ ॥

६. सन्त का विचरना ।

* सवैया *

सत सदा विचरे वोहि पंथ, सुसगि सुपात्र को सग लगावे ।
बोध करे सब दुःख हरे, तब सत्य वो नित्य निरञ्जन पावे ॥
छन्द नवीन बनाय कहूं, हरिदास विचार के चित्त रिझावे ।
रे नित्यानद के बोध बिना, मति मूढ वो जीव हमेश भ्रमावे ॥

दोहा ।

विकट पथ होवे लघु, जब निष्कपटी होय ।
सुरत-मुरत सन्मुख सदा, करे नृत्य पुनि होय ॥

—— o ——

७. सन्त की मति ।

* सवैया *

वोहि तिरे भव सागर से जिन–की मति में मल लेश न कोऊ ।
ज्ञान को पथ जो वोहि लखे सोई, सत महत क्वचित् ही होऊ ॥
वो ही सुखी विचरत मही, ऐसे सस को क्षोभ कहो किमि होऊ ॥
रहे नित्यानंद अखंड तजे जो,–राग विराग उपाधी दोऊ ॥

दोहा ।

महावीर निज सत्य में, सदा रहे लवलीन ।
जैसे जल को ना तजे, देखो जल की मीन ॥

—— o ——

६. सन्त का विचरना ।

* सवैया *

सत सदा विचरे वोहि पंथ, सुसंगि सुपात्र को संग लगावे ।
बोध करे सब दुःख हरे, तब सत्य वो नित्य निरञ्जन पावे ॥
छन्द नवीन बनाय कहूं, हरिदास विचार के चित्त रिझावे ।
रे नित्यानंद के बोध बिना, मति मूढ वो जीव हमेश भ्रमावे ॥

दोहा ।

विकट पथ होवे लघु, जब निष्कपटी होय ।
सुरत-सुरत सन्मुख सदा, करे नृत्य पुनि होय ॥

—— ० ——

७. सन्त की मति ।

* सवैया *

वोहि तिरे भव सागर से जिन-की मति में मल लेश न कोऊ ।
ज्ञान को पथ जो वोहि लखे सोई, सत महत क्वचित् ही टोऊ ॥
वो ही सुखी विचरत मही, ऐसे संत को क्षोभ कहो किमि होऊ ॥
रहे नित्यानंद अखंड तजे जो,-राग विराग उपाधी दोऊ ॥

दोहा ।

महावीर निज सत्य में, सदा रहे लवलीन ।
जैसे जल को ना तजे, देखो जल की मीन ॥

—— ० ——

१०. दंभी सन्त ।

* सवैया *

ज्ञान के वाक्य जे नाहिं भणें, कहे वाक्य कटू मन मे हरषावे ।
और के मानको भग करे, पुनि आप जो आनसे मानको च्हावे ॥
सो शठ जान पुमान यती, जिन मांहि कुलक्षण राशि कहावे ।
नित्यानन्द कहे तिनकूं तजिये, वह सत नहीं दम्भी दरसावे ॥

दोहा ।

अग्नी से मूरख जले, वसता जल के तीर ।
निज प्रमाद तजता नहीं, बने आप महावीर ॥

—— ० ——

११. दुःखी संत ।

* सवैया *

सत भया नहिं दुःख गया पुनि, दुःख रहा, मति ना शरमावे ।
होड करे निर्वंधन की वो, निर्वंध भये विन, बंध न जावे ॥
भेख वनाय फिरे नकली शठ, ले नाम तिन्हों का भिक्षा खावे ।
कहे नित्यानन्द निज बोध विना, अतिम शीघ्रहि नर्क में जावे ॥

दोहा ।

करे निरोगा और को, खुद्द रोगला आप ।
विन विवेक दोनों जपे, उल्टे सुल्टे जाप ॥

—— ० ——

१२ मान बड़ाई ।

* सवैया *

मान बड़ाई में आप बन्ध्यो पुनि लूण बन्ध्यो पंथ के उरझायो ।
छूटे किमि वो निर्मोह नहीं, निर्मोह बिना शठ भेख सजायो ।
भूपन संत का त्याग किया भयो संत ठकू पद सत न पायो ।
पकड़ भुजा शठ को खसिये यमदूत तिसे नर्क मांहि गिरायो ।

दोहा ।

मान देह अभिमान जब, लखे रूप निर्वाण ।
जब लग तब मन आय नहिं, रहे समाधि मतिमान ।

—o—

१३ गुरु द्रोह ।

* सवैया *

संत दुखी गुरु भक्त दुखी बहु जीव दुखी गुरु द्रोहि जो होवे ।
मान चहे गुरु सेवक से, नहि मान मिले तो कुपित हो रोवे ।
द्रोह नहीं जप लोक विष-तरु बोय तिसे तब फिर पुनि रोवे ।
नित्यानंद कहै गुरुद्रोही नहि सोहि शिष्य सदा निर्भय से सोवे ।

दोहा ।

गुरु की नित पूजा करे, धरे प्रेम से ध्यान ।
उनकी कृपा कटाक्ष से होय राम का ज्ञान ।

— o —

१४. अन्त समय ।

*** पद राग गजल कव्वाली ***

वृथा न बकना स्वामी, कहो प्राण कहां को जावे ।
गोविंद गो का स्वामी, भजने में वो न आवे ॥ टेक ॥

सावेव वो नहीं है, निर्वेव श्रुति बतावे ।
इन्द्रिय अतीत को हम, स्वामी कहो कैसे ध्यावें ॥ १ ॥

स्वामी का तू है स्वामी, कविता बना के गावे ।
कुल प्राणी को तू उल्टी, भ्रम जाल में फसावे ॥ २ ॥

जड का भजन किये से, मुक्ती न कोउ पावे ।
जड रूप वो हो जावे, भव बीच्च गोता खावे ॥ ४ ॥

प्रभु को तू बहुरि सबके, मरने के समै बुलावे ।
वो निश्चल अक्रिय देवा, कहो कैसे आवे जावे ॥ ४ ॥

स्वामी तू है सन्यासी, विद्वान पुनः कहावे ।
हरि है अभेद तो से, क्यों रोवता रोवावे ॥ ५ ॥

सर्वज्ञ श्रीकृष्ण जी को, अल्पज्ञ तूं बनावे ।
सुन कहता मस्त स्वामी, मूरख मिलन को च्हावे ॥ ६ ॥

दोहा ।

देख दीखता सामने, निष्कपटी भगवान ।
जो नर प्रभुपद पावुके, सो नर प्रभू समान ॥१॥

—— o ——

और सकल वस्तु चित त्यागेऊ, सत प्रिय वचन सुनाऊ ।
पापी प्राण शांति हित कारण, तज वन पुर उर धाऊ ॥ २ ॥
कन्चन काँच एक कर जानेऊ, ग्रहों नसों ना कोऊं ।
ऐसी धार धारणा जे कर, मनो काम सिद्ध होऊ ॥ ३ ॥
नीच कृत्य नीचहि जन करते, तुम तिन्ह ढिग ना जाऊं ।
कहत नित्यानद बहुरि समझ मति, समझ रमझ समझाऊ ॥४॥

दोहा ।

हसना रोना छोडदे, ये दो तन के काम ।
ये जड़ तू चेतन अचल, मीत आतमाराम ॥

—— ० ——

१७. अलौकिक व्यवहार ।

* पद राग आसावरी *

रमता जोगी आया नगर में, रमता जोगी आया ॥ टेक ॥
वैरागी सो रगमें आया, क्या क्या नाच दिखाया ।
तीनों-गुण औ पंच-भूत में, साहब हमें बताया ॥ १ ॥
पांच पच्चीस को लेकर आया, चौदा भुवन समाया ।
चौदा भुवन से खेले न्यारा, ये अचरज की माया ॥ २ ॥
ब्रह्म निरंजन रूप गुरू को, यह हरिहर की माया ।
हर घट मे काया बिच्च खेले, बन कर आतम राया ॥ ३ ॥
भांत भांत के वेष धरे वो, कहीं धूप कहीं छाया ।
समझ सेन गुरु कहे नित्यानद, खोजले अपनी काया ॥ ४ ॥

[६] जिज्ञासु को सद्गुरु उपदेश

—— o ——

१. साधन सम्पन्नता

* राग विहाग *

साधन साध फकीरी कीजे, तब ही निज रूप लहीजे ॥ टेक ॥
सो साधन हम तुमसे कहते, जाते परम पद लहते ।
ताप त्रय को मूल नसावे, अब चित तामें दीजे ॥१॥ साधन०
प्रथम विवेक वैराग्य समाधि, मुमुक्षुता से आदि ।
बुद्धि साधन साध्य शुद्ध कर, फिर गुरु वाक्य प्रेम रस पीजे ॥२॥
ये साधन सद्गुरुजी जाने, तू चित नहिं पहिचाने ।
ब्रह्मनिष्ठ श्रीगुरु श्रुतिवक्ता, जाय शरण मे रहिजे ॥३॥ साधन०
साधन साध्य सिद्धि होय निर्भय, वो मही पर विचरे ।
कहत नित्यानद बहुरि चित्त सुण, तबही अविद्या छीजे ॥४॥

दोहा ।

मन बुद्धि अहकार चित, महाशत्रु सम जान ।
प्रथम जीत इनको पुनि, धरो ईश को ध्यान ॥१॥

—— o ——

२. सद्गुरु शोध ।

\# ग़ज़ल \#

चरणों की जा शरण मे, कोइ काल वास कीजे ।
वो सेवा विधि से कीजे, श्रीगुरुदेव जाते रीझे ॥ टेक ॥

स्वर्गधाम में पहुँचावे, लख चोरासी छुड़ावे।
घो दर्शन तुम्हे करावे गुरुसंग पंथा लीजे ॥१॥ चरणों०
श्रीभगवान के मंदिर का, केवल गुरु है पंडा।
मन्दिर पे संग पंडा के, दरसन होय पाप छीजे ॥२॥ चरणों
कुछ भेट प्रभु के करना, निज वस्तु हो सो धरना।
तुलसी चरणामृत लेना सब सन्त के बहुरि पीजे ॥३॥ चरणों
बहुरि पंडा के चरणों में साष्टाङ्ग प्रणाम करना।
आशिर्वाद पास लीजे कहे मस्त सत्य सुनीजे ॥४॥ चरणों

• कुण्डलिया–छन्द •

व्योम भांत पुनि तेज जल, पृथ्वी में भरपूर।
अन्तर बाहिर गुरु ब्रह्म नाहि समीप नहि दूर।
नहि समीप नहि दूर जहाँ मन वाक्य पलाता।
भूप सत्य प्रकाश गुरु आतम बतलाता।
ये कहे शिष्य नित्यानन्द, गुरुकृपा बसिये ताता।
तब पावे निज मम, होय अतिशय सुख साता।

दोहा।

धन हर के धोखा हरे सो सद्गुरु प्रिय मोर।
तिन पद को वन्दन करूं हृदय हृदय कर जोर ॥१॥

—— ० ——

२ सद्गुरु दर्शन।

• गजल (चाल लगड़ी) •

सद्गुरुदेव का दर्शन महान् पुण्यन से होता है। टेक॥
मनुष्य तन पाय के जिसने गुरु दर्शन नहि देखा।

शान्ति का धाम वोही है, क्वचित् बुद्धिमान जोता है ॥१॥
प्रमादी मन्द मति प्राणी, धाम गुरुदेव का तजते ।
अधोगति होती है उनकी, निर्भय हो गुरुभक्त सोता है ॥२॥
प्रमाणिक मैं कहूँ वाणी, करे कुतर्क अज्ञानी ।
गुरु का गाके गुण गण को, तज अघ हसता रोता है ॥३॥
ईश गुरु सत की सतसंग, करे इस विश्व मे बाबा ।
कथे अवधूत गुरुदर्शन, चराचर मुझको होता है ॥४॥

दोहा ।

सन्त-ईश गुरु-ईश है, गुरु-सन्त भज ईश ।
सौदा पक्का होत है, काट चढ़ावे शीप ॥१॥

—— o ——

४. सत् गुरु से परमलाभ ।

* कुण्डलिया *

गुरु समान दाता नही, तीन लोक में तात ।
अभयदान गुरु दे सदा, समझ मान मन बात ॥
समझ मान मन बात, चरण गुरु का नित्य पूजे ।
नाशवन्त धन त्याग, अभयदान तुझको सूझे ॥
यह कहता मस्त पुकार, दयालु है गुरुदेवा ।
अभय दान दे तुरन्त, करो तन मन से सेवा ॥

दोहा ।

गुरु मंत्र तजना नहीं, भजना बारम्बार ।
महा पातकी का करे, श्रीगुरु शीघ्र उद्धार ॥१॥

५ श्रीसद्गुरु-चरण-शरण।

* पद राग भैरवी *

चरण शरण में आयो।

गुरुजी मैं तो चरण शरण में आयो ॥ टेक ॥

हैं अज्ञानी क्रोध काम वश कामी काग कहायो।
मृग ज्यूं भर्म भयो बिन बारी तिमि निज मति भ्रम छायो॥
गुरुजी मैंतो० ॥१॥

ज्ञान शलाका सो शुचि लोचन आज तम सुगम नसायो।
दिव्य दृष्टि हो दीनबन्धु मोहि यही मोर चित चायो॥
गुरुजी मैंतो० ॥२॥

यही विनय आरत की स्वामिन् आरत अति घबरायो।
शीतल बैन मनोहर मो प्रति कहो मैं शिष्य कहायो॥
गुरुजी मैंतो० ॥३॥

कारन के तुम महाकारन हो यह निगमागम गायो।
कहत नित्यानन्द ब्रह्मानन्द रस श्री गुरु मो मति भायो॥
गुरुजी मैंतो० ॥४॥

दोहा।

निर्मल बुद्धि होय तब निर्मल पावे रूप।
बिन निर्मल बुद्धि किये पड़े जीव भव कूप॥

——०——

६ जीवन की सफलता के लिये शिष्य की व्याकुलता

* पद राग भैरवी *

वृथाही जन्म गुमायो गुरूजी मेने, वृथाही जन्म गुमायो ।
कछु हाथ पल्ले नहीं आयो । गुरूजी मेने० ॥ टेक ॥

सोमनाथ श्रीकृष्णचन्द्र को, कबहु न चित्त से ध्यायो ।
तज शुभ खेल कुखेल खेल में, ताही में समो वितायो ॥
गुरूजी मेने० ॥१॥

वाल तरुण दो गई जी अवस्था, अब कछु वृद्ध कहायो ।
कर कुकर्म सुकर्म दूर कर, अमृत तज विष खायो ॥
गुरूजी मेने० ॥२॥

अब तीजी पण में राख टेक प्रभु, राख सके तो सांह ।
सुर वान्छित है इस नर तन कु, सो वपु मेने पायो ॥
गुरूजी मेने० ॥३॥

सोऽहं आप आपुनी जाने, नित्यानद वखाने ।
अपनो दुःख सकल गुरुजी को, इमि मम निज पुनि गायो ॥
गुरूजी मेने० ॥४॥

—— o ——

७ शिष्य की प्रार्थना ।

* पद गजल राग कव्वाली *

जगादो सद्-गुरू मुझको, अविद्या नींदमें सोता ॥ टेक ॥
कभी जगता कभी सोता, कभी सोता कभी जगता ।

प्रगट आप्त वन तबही बोध स्व-स्वरूप का होता ॥ १ ॥
भाग लिया भागोंमें हमको, भोग भले भोगे हैं हमने ।
लगायो भेदों में अंजन, काम अधम क मैं गोता ॥ २ ॥
कृपालु ! हे कृपा सागर !!, सुन्ती मेरी अर्जा बना !!!
अमूरा आपका स्वामिन् भरोमें (मैं) आपके सोता ॥ ३ ॥
त्रिलोकी में सगे मेरे कोई भी दीखते नाहीं ।
पढ़े हम ग्रन्थ बहुतेरे बिना अनुभव के सब थोता ॥ ४ ॥

दोहा ।

ताप तपावे दैन-दिन तपते पण्डित लोग ।
भाग भोगने में कुशल सधे न जिनसे योग ॥ १ ॥

—— ० ——

८ शिष्य की जिज्ञासा ।

* पद राग भैरवी *

शिष्य पूछे गुरुजी से आई ।
कौन युक्ति कर मुक्ति होय प्रभु यह मैं पतो न पाई ॥ टेक ॥
दोऊ कर जोड़ चरण मस्तक धर प्रश्न कियो यह भाई ।
को उद्धार का संसार माय देख्यो भिन्न भिन्न चतुराई ॥ १ ॥
कर्म उपासना पुनि बहु कीने तोई चित्त शांति ना आई ।
अधिक अधिक तृष्णा बढ़े जैसे अग्नि घिरत सवाई ॥ २ ॥
इसमें हम कोऊ सुख ना पाया यह मोहिं लियो सुभाई ।
फसी मोह ममता यह माया विपदी मो तन माई ॥ ३ ॥

नित्यानन्द आरत गुरुजी से, अपनो दुःख सब गाई ।
भवसागर से मोहि उवारो, कीजे वेगि सुनाई ॥ ४ ॥

दोहा।

सत् गुरू के सत्सग से, जीव होय निर्बंध ।
जिमि उडुगण कोटीन में, हिम कर सदा स्वच्छन्द ॥१॥

—— o ——

९ शरणागत जिज्ञासु को श्रीगुरुजी का आश्वासन ।

* गज़ल *

कछु रोक टोक नाहीं, दरबार खुला पडा है ।
तुझे होय जो जिज्ञासा फिर काहे को खडा है ॥ टेक ॥
कौडी लगे न पैसा, मल मनपे रहे न लेशा ।
कर प्रेम से तू झाकी, हरि गरुड पे चढ़ा है ॥ १ ॥
निर्मल चक्षु होवे, तब रूप जथार्थ जोवे ।
त्रिधा ताप नहिं तपावे, निज डोंडी पे अड़ा है ॥२॥
नर तन को पाया तैंने याते कही है मैंने ।
इसका उद्धार करले, बहु काल सग रडा है ॥३॥
जड बुद्धि जाकी होवे, दर्शन को मूढ रोवे ।
सुन केहता मस्त स्वामी, निष्कपटी को जड़ा है ॥४॥

दोहा।

सत्-गुरु मे सतशिव भरयो, नख शिख से भरपूर ।
नैन दैन की सैन ते, चतुर करें जन क्रूर ॥ १ ॥

१० गुरु सेवा।

* कवित्त *

जिनको पुण्य सीधो होय, तो मोक्ष की जो इच्छा होय।
गुरु के शरणे जाय कोइ काल वास कीजिये॥
दे तन धन मन आत्मा श्री गुरु के अर्पण करि।
इस से अधिक सेवा भक्ति चित्त दीजिये॥
पुनि होय वे प्रसन्न तब, तोसे पूछे बात तात।
सो जोड़ जोड़ के हाथ दान तूं मांग अभय लीजिये॥
अभय दान का प्रदाता रे! दूसरा न और कोऊ।
येह चित्त धार धीर! नित्यामृत रस पीजिये॥

दोहा।

सेवा से मेवा मिले करके देखो सेव।
बिन सेवा मेवा नाहिं, कहते श्रीगुरु देव॥

— ० —

११ श्रीगुरूपदेश (स्वधर्म)

(कवित्त)

निज धर्म को त्याग यार अधर्म माहिं करे प्यार।
सुण ऐसी मति को जार आज शुद्ध मति कीजिये॥
निज धर्म को कर विचार कहे यह गुरु उचार।
अधर्म को छाड़ यार, मति ध्यान दे सुन लीजिये॥
ऐसा अवसर आज पाय तिसको तूं देता बहाय।
फिर कर तूं लाखों उपाय नहीं जन्म आछा कीजिये॥

जीत हो सोकर विचार, करे तू किस पर अंधार ।
तू चित्त तज असत्, शीघ्रहि सुधा रस पीजिये ॥

दोहा ।

प्रथम जीत अहंकार तब, होय ब्रह्म को ज्ञान ।
वचन सत्य मुख से कहूँ, सुजन सुनो दे कान ॥

—— ० ——

१२ सत्संग ।

❀ कुण्डलिया ❀

तबही बचे यमत्रास से, कहूँ सत्य जे संग ।
निज तन मन से कीजिये, महा पुरुष को संग ॥
महा पुरुष को संग, बिलम्बना कीजे धीरा ।
तबही लखे निज रूप, बहुरि व्यापे नाहं पीरा ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, ध्यान दे सुन चित मोरा ।
तबही शान्ति उर होय, हरे भव चक्कर तोरा ॥

—— ० ——

१३ सत्य भाषण ।

गजल-राग-कव्वाली ।

प्रिय सच बोलना सजनों, असत् नहिं बोलना वाणी ॥टेक॥
सत्वादी   असत्वादी, परस्पर हैं दोऊ क्रोधी ।

१५ भोगवासना का त्याग ।

* कुण्डलिया छन्द *

भोग पाप का मूल है, वो ही जनम दे अग ।
याते कापहु मूल को, अतिशय होय निसंग ॥
अतिशय होय निसंग, खडग ले कर में धीरा ।
ताते कापहु मूल, तूल नहिं व्यापे पीरा ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, सत्य सुन देकर काना ।
समझ बहु दुख भास, टरे पुनि आना जाना ॥

दोहा ।

मती मान परब्रह्म में, रती करो प्रियमीत ।
तेरे हारे हार है, तेरे जीते जीत ॥१॥

—— o ——

१६ विषया शक्ति त्याग ।

* कुण्डलिया छन्द *

कैसे जाने राम को, भजे रेन दिन चाम ।
छांड भजन तू चाम को, तब जानेगा राम ॥
तब जानेगा राम, रामकी महिमा भारी ।
क्या जाने मतिमंद, प्रीति विषयन में धारी ॥
ये कहंता निज नित्यानन्द, विषय विषयन की आरी ।
याते तिनको त्याग, होय तब अतिहि सुखारी ॥

—— o ——

१७ विषय वासना त्याग।

* पद राग बिहाग *

आप तू परमानन्द स्वरूप।
छाँड़ वास विषयन की सारी, बहुरि लगा चित चूप ॥ टेक ॥

मा तूं अम्मा बाप सुता तू, ये सब निज मति मार्ई।
सब घट मठ के अन्दर बाहिर तू खुद भूपन भूप ॥
आप तूं ॥ १ ॥

जेते सन्त महन्त ऋषि मुनिगण तापसी ते भजे आदि।
सबहि तुम्हारो ध्यान धरे जन, तूं सब अति अनूप ॥
आप तूं० ॥ २ ॥

ऐसी अपनी प्रभुतार्ई की सुधि सकल बिसरार्ई।
आदि मध्य अन्त नहिं जिहि में अब मैं कहूं कवन की रूप ॥
आप तू० ॥ ३ ॥

ये सब जगमग ज्योति तुम्हारी सो कबहु सुस न होर्ई।
ऐसो तेज तुम्हारो कहिये सब मारे रवि धूप ॥
आप तूं० ॥ ४ ॥

यहि विधि समझ निमग्न होयके निज मति तहां ठहरार्ई।
कहत नित्यानंद बहुरि समझ मति छांड़ फन्दक जिमि सूप ॥
आप तूं० ॥ ५ ॥

दोहा।

फिर कहता तुमको सभी गुरु मत एक सार।
तज असार गह सार को करे धीर! मत पार ॥

१८ वासना त्याग।

* प्रभाती *

वासना विसार डार, येही तो बडी बात रे ॥ टेक
इन्द्रियन को सगत्याग, विषयन से दूर भाग।
प्रभुजी के चरण लाग, दिन बीते जात रे ॥१॥
अहंकार में न फूल, ममता पे डार धूल।
झूठी काया मे न फूल, सच्ची में बतलात रे ॥२॥
निज धरम की ओर जाग, दुर्जन से दूर भाग।
सन्तन के चरण लाग, जम से जे छुडात रे ॥३॥
सर्व ठौर सर्वकाल, नित्यानन्द को संभाल।
निर्भय यो ही मन्त्र जाप, खात और खिलात रे ॥४॥

—— ०,——

१९ आशा का त्याग।

* पद राग दादरा *

जाल मोरे प्यारे !
आशा की फांसी को जाल। टेक
आशा की फांसी तेने डाली गले में
आशा नचावे ज्यूं व्याल ॥१॥ जाल मोरे०
आशा ही कर दुःख भोगे तूं निश दिन
आशा ने कियो पामाल ॥२॥ जाल मोरे०
आशा ही अति तेरो शत्रु जे कहिये
मारे कलेजे में साल ॥३॥ जाल मोरे०

मान हमारी बात, दूर तन होवे छिन मे ।
पुनि चले ना जोर, बात रहे मन की मन में
ये कहे निज नित्यानन्द, तुझे अतिशय कर सांची ।
पुनः होय आनन्द, रहेना सज्जन कांची ॥

दोहा ।

देह दृष्टि कर होत हैं, जग के विविध व्यवहार ।
कोऊ गुरु कोउ शिष्य है, कोउ पुरुष कोउ नार ॥१॥

—— o ——

२२ सत्कर्म असत्कर्म ।

* कुण्डलिया *

दान भजन दुख मे करे, सुख में करे न कोय ।
जो कोई सुख में करे, तो दुख काहे को होय ॥
दुःख काहे को होय, दुःख हाथन से करते ।
करके हाहाकार, दोष हरि ऊपर धरते ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, मन्दमति सुन नर तोरी ॥
करो भजन अरु दान, मिले भव सम्पति बहोरी ॥

—— o ——

२३ निःस्पृहतायुक्त भजन ।

* कुण्डलिया *

तात मात वनितादिजन, त्याग कियो बन-वास ।
लगी प्यास हरि भजन की, जात वृथा निज श्वास ॥

आस वृथा निज श्वास, भजन अब कर मन भोरा।
निकस जायगा श्वास, अन्त फिर रहेगा कोरा॥
ये कहे निज नित्यानन्द, चल नहिं तब कछु जोरा।
निकार आय सब ठाठ, रह माहिं यह तन गोरा॥

—— ० ——

२४ प्रभु स्मरण।

● पद राग-भैरवी ●

जाको नाम लिया सुख दीजे, जैसे पृथ्वी जल बरसन से।
रोम रोम सब भीजे, जाको नाम लिये सुख दीजे॥ टेक॥
नाम जिनका रट्या ध्रुवजी, मात वचन हिय धरके।
पल भर मन से नहीं बिसार्या, भर्य तिसी का कहिये॥ जाको॰
पाँच बरष की अल्प अवस्था, राज पाट सब तजके।
जाय बस बन माहिं अकेले, यह राज अटल मोहि दीजे॥ जाको॰
ऐसी टेर जब सुनी श्रीहरि ने, आय दरस प्रभु दीने।
कही श्रीमुख से सुनहु ध्रुवजी, ये राज अटल तुम लीजे॥ जाको॰
ऐसी दृढ़ भक्ति जे करते, ते जन जग को जीते।
कहत नित्यानन्द यार चित तुम अब प्याला अमित रस पीजे॥
जाको॰

दोहा।

सत्य सार संसार में, भजो सत्य परवीण।
नाम जप नामी मिले हाय आसु में लीन॥१॥

—— ० ——

२५. भगवद्भजन ।

* पद राग सोहनी *

है भक्त वो भगवान को, श्रीभगवान को संतत भजे ॥ टेक ॥

खाते पीते बैठते, उठते वा—सोते जागते ।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को संतत भजे ॥ १ ॥
है भक्त० ।

पूजन करे भोजन बनाके, थाल प्रभुजी को धरे ।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे ॥ २ ॥
है भक्त० ।

प्रसाद पावे प्रेम से ते, तुरत भवसागर तरे ।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे ॥ ३ ॥
है भक्त० ।

अनर्थ करे नहिं देह से, ऐसे हुए अरु होयँगे ।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे ॥ ४ ॥
है भक्त० ।

भक्त ऐसा होणा होतो, पूर्व कीये सो कृत्य करे ।
वह प्रेम से अति प्रेम से, श्रीभगवान को सन्तत भजे ॥ ५ ॥
है भक्त० ।

दोहा ।

परब्रह्म पूजा करे, अपर ब्रह्म की मीत ।
अपर ब्रह्म परब्रह्म के, भोग लगावत नीत ॥ १ ॥

——०——

कोना सुने पुकार, चलेना तव कुछ जोरा।
पुनः चलेना जोर, यार तहाँ पर भी मोरा ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, उदय जब दिन कर होवे।
विलय अज्ञतम होय, रूप परिपूरण जोवे ॥

—— ० ——

२६ जगत् जाल।

पद-राग-गजल।

जन बात को विचारो, तुम कौन यहाँ तिहारो ॥ टेक ॥
ये जगत जाल सारो, मट्टी से नाहिं न्यारो।
तुम कहते हो हमारो, दुःख रूप भर्म जारो ॥ १ ॥
हरि नाम को ले सहारो, दुनिया से हो के न्यारो।
लखिये शिव रूप तिहारो, ये सुपना को खेल सारो ॥ २ ॥
तिसकी सुधि विसारी, दुनिया से कीनी यारी।
कर यार से तूं यारी, कछु मान कंठ भारो ॥ ३ ॥
नित्यानन्द कहे हो न्यारो, सन्तों को ले सहारो।
तव होय भव से पारो, ये तन जात बीतो थारो ॥ ४ ॥

दोहा।

मेरे चित चिन्ता नहीं, मेरा चित निश्चिन्त।
तेरे चित चिन्ता घनी, नैनन में दरसन्त ॥

—— ० ——

३० स्वप्नवत् जगत् ।

* कवित्त *

जगत् जैसे रैन सपना जामें नाही कोई अपना,
मोह के जाल जंजाल मे न फंसना ।
पुनि मात तात सुत नारी धन धाम प्रीति प्यारी,
इन मिथ्या सब इनकी यारी तू नाम प्रेम सहना ॥
यो प्रीति इनसे अन्त करो श्रीराम नाम चित धारो
अब दान पुण्य नित्य करो तू कोष पूर्ति रसना ।
येत संग तेरे चले सोई, ये करो काम यार दोई
ये कहत नित्यानन्द ते जोड़े सगड़ मे बचना ॥

—— o ——

३१ मिथ्या जगत् ।

* कवित्त *

ए मट्टी का है मात तात, ये मट्टी का है मित्र भ्रात
मट्टी का है बहन भ्रात सो मट्टी का तू आप है ।
ये मट्टी का है धाम नाम मट्टी का है खान पान,
मट्टी का है पढ़न चित्त मट्टी तपे तीनों ताप है ॥
पुनि मट्टी का है राग रंग, मट्टी का है शाक अंग,
मट्टी का है यह संग मट्टी देख ! दीखे साफ है ।
मट्टी का ही होय नाश य रहती मट्टी नित्य पास
मट्टी बिन रहता उदास तू अब काहा जाप है ॥

दोहा ।

सुरत चराचर दीखती, तोउ न देखे अङ्ग ।
हठ योगी हठ ना तजे, करे यत्न गुरु भङ्ग ॥

—— o ——

३२ पंच भूतात्मक संसार ।

* कुण्डलिया छन्द *

भूत प्रेत ससार मे, देखत है नर-नार ।
पञ्च भूत प्राणीन मे, है चेतन के आधार ॥
है चेतन के आधार, दूसरा और न कोई ।
करके देख विवेक, रूप तेरा है सोई ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, भरम को देवो बहाई ।
सत् चित आनन्द रूप लखो तबही सुख पाई ॥

दोहा ।

तात निरञ्जन देव के, सुत देखे हम चार ।
सुत रागी त्यागी पिता, कहे गुरु व्यास पुकार ॥ १ ॥

—— o ——

३३ असंग महत्व ।

* कुण्डलिया *

ना कोउ आया सगमे, ना कोउ जावे संग ।
यन्यो खेल ससार को, मिथ्या लखिये अङ्ग ॥
मिथ्या लखिये अङ्ग, कहूँ तोसे मैं सारी ।

तू कर देख विवेक करे क्यों तिन से यारी ॥
ये कह निज नित्यानन्द गुण तिनमें अतिभारी ।
पावे तिन तज मनु आप निज रूप सुखारी ॥

—०—

३४ देहाभिमान निषेध ।

• कुण्डलिया छन्द •

रे मन ! मूरख बावरे ! जिस पर करत गुमान ।
हाड़ चाम का पूतला होयगा राख समान ॥
होयगा राख समान प्रीत इसकी अब त्यागो ।
इसमें नहिं कुछ सार ईश सुमिरन में लागो ॥
य कह निज नित्यानन्द जगत् में रह न कोई ।
आता उसका अन्त गुप्त गत खोज सोई ॥

—०—

३५ माया का खेल ।

• कुण्डलिया छन्द •

माया नट ख्याल का अजब तरह का जाल ।
इसमें फँस कर छूटना बड़ा कठिन है हाल ॥
बड़ा कठिन है हाल हृदय में माल लगावे ।
रमी गुप्त अपार विविध विधि नाच नचावे ॥
य कहद निज नित्यानन्द गुरू कृपा जब होय ॥
जीत कठिन संग्राम, निरन्तर सुख से सोय ॥

—०—

३६ सत असत ।

\# कुण्डलिया छन्द \#

तीन अश सत जाणिये, दोय जाण व्यतिरेक ।
पच अंश में विश्व यह. करके देख विवेक ॥
करके देख विवेक, भजन कहूँ ये कर प्यारे ।
क्यों जलता त्रय-ताप, ताप छूटें तव सारे ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, भरम का भूत उडावो ।
तब निर्वाण स्वरूप, आप निज घट में पावो ॥

—— o ——

३७ विवेक ।

पद राग-प्रभाती \#

कर विवेक धर ध्यान विप्रवर, तुझको प्रभु से मिलना होतो ॥ टेक ॥
तन सुखाय पिंजर कर डारा, नहीं रैन दिन तूं सो तो ।
अपनी मूरखता से मूरख, अपनी सुन्दर आयू खोतो ॥
कर विवेक० ॥ १ ॥
तुझको सब पण्डित जन कहते, हाड चाम को तू धोतो ।
सम दृष्टि होवे पण्डित की विषम वृष्टि से तू जोतो ॥
कर विवेक० ॥ २ ॥
करना था सो काज किया नहिं, बकता मेरो बेटो पोतो ।
काल बलीका बन्या चबीना, उसके उनको लाग्यो नोतो ॥
कर विवेक० ॥ ३ ॥

कर वैराग संयम से पवित्र, निर्मल गंगा में जा गोतो।
समझ सैन गुरु कहे नित्यानन्द नहीं समझे तो तू फिर रोता ॥
कर विचार० ॥ ४ ॥

— ०. —

३८ अधकचर

अर्ध दग्ध हो रहे हैं, नहिं वैराग्य तीव्र तरे हैं ॥ टेक ॥
नहिं भोग भोगते हैं नहिं जोग कमाते हैं।
हैं प्रमाद अज्ञान दग्ध, इन्हीं को कहते खरे हैं ॥ १ ॥
मारे शरम के मरते वे सत्-संग नाहिं करते।
गुरु वच न बोध करते, बिन ज्ञान के आसी मरे हैं ॥ २ ॥
बड़ नाम को रखाया, नहिं निज स्वरूप पाया।
तू बाबा बना गृहस्थी! बैठा तू घर का घरे है ॥ ३ ॥
अज्ञान का विरोधी—एक ज्ञान कहते सन्तो!
मिले ज्ञान गुरु कृपा से गुरु सब तू! गुरु नि[illegible]र है ॥ ४ ॥

दोहा।

स्वाँग बनाया सन्त का बने न दिल से सन्त।
वीत-रागऽचित संतजन हैं सन्त एक भगवन्त ॥ १ ॥

— ० —

२९ समदृष्टि।

कुण्डलिया छन्द।

सम शत्रु अरु मित्र में सम पुनि ऊँच अरु नीच।
दुःख सुख में सम ते सदा है नर ज्ञानी सब बीच ॥

ते नर शिव भव बीच, विघन ना देवे किसको ॥
और जे दे कोई विघन, नहीं वे माने उसको ॥
ये कहे निज नित्यानंद, ब्रह्म वेत्ता जे कहिये ।
ताके गुण हम भणे, बहुरि शान्ति सुन लहिये ॥

—— o ——

४० सांसारिक हवा ।

कुण्डलिया छन्द ।

आया एक ही घाट ते, जाना एक ही घाट ।
हवा लगी ससार की, हो गये बाटो बाट ॥
हो गये बाटो बाट, कोऊ की कोऊ ना माने ।
अपना गृह गये भूल, करे बहु पंचा ताने ॥
तिन की यह गति देख, नित्यानन्द मन मुसकावे ।
पुरुषारथ से हीन, मूढ वृथा दुख पावे ॥

—— o ——

४१ स्वरूप—विस्मृति ।

कवित्त

था बाघ हू के वन मांहि, अजाहू को काम कहा,
बाघहू को अहार अजा पेखिए, विचार के ।
याते अजा बाघ एक ठाम, नहीं रहत यार,
जब होत संयोग बाघ, खात अजा मार के ॥

बाघहु के वन मांहि, बाघहू के रहन स्थान,
　　　　　　ते और जीव जन्तुहु का प्राण हरे घाग के।
रे! याते बाघहू को सग करी प्रेमहु से भग,
　　　　　　कहत विद्यानन्द अज्ञ जीत अज्ञ हार के।

—— o ——

४२ स्वरूप—विस्मृति से दीनता!

(कुण्डलियाँ छन्द)

बाघ रूप निज भूल कर भयो सियाल मति हीन।
　　　　　　बाघ भूल स्यालहि भयो तबही भयो अति दीन।
तबहि भयो अति दीन, बाघ की सुधी बिसारी।
　　　　　　बन बैठो निज स्याल सिंहि मारे किलकारी।
ये कहे निज विद्यानन्द, स्याल रहे पुर के मांही।
　　　　　　रहे बाघ वन मांहि नहीं भय उर में ताही।

—— o ——

४३ स्वरूप—महत्व।

कुण्डलिया छन्द

नाथन का तू नाथ है, तू क्यों बने अनाथ
　　　　　　देख प्रभुता आप की छोड़ देह का साथ।
छोड़ देह का साथ देह तेरी नहिं बन्धे।
　　　　　　तू जड़ का सिर ताज भूल कर क्यों तू बन्ध।

ये कहे निज नित्यानन्द, अटल तूं लगा समाधि ।
तू नाथन का नाथ, तोमें नहिं लेश उपाधि ॥

—— o ——

४४ स्वरूप-रहस्य

कुण्डलिया छन्द

बादल दौडे जाते हैं, दौडत दीसे चन्द्र ।
देह सङ्ग यू आत्मा, चलता कहै मतिमन्द ॥
चलता कहै मति मन्द, आत्मा अज अविनाशी ।
हलत चलत ये देह, श्री मुख कृष्ण प्रकाशी ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, भ्रम मती है सब फाँकी ।
लख्यो कृष्ण निज रुप, रह्यो नहिं अब कोइ बाँकी ॥

—— o ——

४५ आत्म-स्वरूप ।

सवैया ।

शान्त स्वरूप अनूप विषे,
कहो पाप वो पुण्य बने किमि भाई ।
आतम ब्रह्म विचार मति,
जिसमें गुरु शिष्य की गम्यज नाही ॥
दूर नहीं नजदीक नहीं,
सोई शुद्ध स्वरूप सभी घट माही ।

तरण तारण बनें छिन में, जिमि रवि देख तम भगता ॥ ३॥
जुवाँ का जब मजा पावे, निगाह जुवाँ छोड नहीं जावे।
दोउ तब एक होजावे, खरा उसको कहें बकता ॥ ४ ॥

दोहा।

स्वान पदारथ देख के, भूसत सब ही ठौर ।
बकता उभय प्रकार के, एक खरो एक चोर ॥ १ ॥

—— o ——

४८ ब्रह्म-विचार ।

गजल राग चलत

जन ब्रह्म को विचारो, नहिं ब्रह्म तों सें न्यारो ॥ टेक ॥
घृत दूत ज्यों मिल्या तू, इस विश्वरूप में है ।
उसके विराट तनको, ससार यह पसारो ॥
जन ब्रह्म को० ॥ १ ॥
जब तक न जान लेगा, उस सौम्य सिन्धु को तू ।
जग जाल से न तब तक, होता तेरो उधारो ॥
जन ब्रह्म को० ॥ २ ॥
तन चाम मांस को यह, सब जान तूं पसारो ।
इसको तूं जाने अपनो, यही तो कष्ट भारो ॥
जन ब्रह्म को० ॥ ३ ॥
माया प्रपच से तूं, उन्मत्त क्यों बना है ।
नित्यानन्द की दुआ से, निज अज्ञता निवारो ॥
जन ब्रह्म को० ॥ ४ ॥

५३ जीव ब्रह्म की एकता ।

कुण्डलिया छन्द ।

वाही बीज वोही मूल है, वोही डाल पत फूल ।
वोही मधुर होय स्वाद के, रहा शीश पर झूल ॥
रहा शीश पर झूल, सरस ते भासे न्यारा ।
हाटक ते नहिं भिन्न, देख वागीना सारा ॥
ये कहें शिव नित्यानन्द, मोक्ष औ बन्ध न कोई ।
सो लख जिन मति मान, निरन्तर सुख से सोई ॥

---

५४ परमानन्द सरूप ।

पद राग होली ।

आपहु पूरण परमानन्द, तामा भूल भया चिदानन्द ।
भयहि भई मतिमन्द ॥ टेक ॥
नहीं पंच ज्ञान इन्द्रिय लह नहीं पंच कर्म इन्द्रिय ।
नहीं पंच वो प्राण चतुष्ट अन्तः करण स्वच्छन्द ॥ १ ॥
पञ्च कोष गुण तीन नहीं तहां, तीन देह किमि होई ।
जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति नाहीं, तुर्या तीत निर्द्वन्द ॥ २ ॥
पञ्च भूत पचीस तत्त्व तहाँ मैं मेरा कछु नाहीं ।
संचितऽगामी क्रियमाण कर्म तिनते तू निर्बन्ध ॥ ३ ॥
एक आप चेतन तू स्वामी व्यापक सानि में आमी ।
सिन्धु फेन तरङ्ग जल जिमि, आतम पूर्णानन्द ॥ ४ ॥

यहि विधि समझ आप अपन में, ज्ञान मौन चित धारी।
कहत नित्यानंद पुनः समझमति, छांड सकल कुफंद ॥ ५ ॥

दोहा।

पुरुषोत्तम के पर उभय, मुझ को होवे भान।
सो शक्ति सति सच्च प्रभु, पुरुषोत्तम भगवान ॥

—— o ——

५५ निजानन्द विचार, अर्थात् सद्गुरु उपदेश द्वारा शिष्य की बोध प्राप्ति।

पद राग होली बसन्त।

कहीं गयो नहीं वो आयो, गुरुजी घट मांही बतायो ॥ टेक ॥
जिस वस्तु को मैं बन बन धायो, बहुतसो कष्ट उठायो।
वास व्रत जप कीना भारी, तो भी पतो नहीं पायो ॥
बहुत मैं इत उत धायो, कही गयो नहीं वो आयो ॥
गुरुजी० ॥ १ ॥
अब गुरुजी के आय शरण में, शिव निज रूप लखायो।
कहा कहूं उस सुख की महिमा, जिमि गूंगा गुड खायो ॥
मोरे मन मांहीं समायो, कहीं गयो नहीं वो आयो ॥
गुरुजी० ॥ २ ॥
ऐसे गुरुजी को कहा भेट करू, जिनसे परम पद पायो।
और कछु वो लेवत नाहीं, नमस्कार बन आयो ॥
फिर निर्भय सुख छायो, कहीं गयो नहीं वो आयो ॥
गुरुजी० ॥ ३ ॥

नित्यानन्द के गुप्त तत्व को, गुरुजी ने शब्द सुनायो।
सुनते ही तुरत लख्यो हृदय में, जग को भर्म नसायो॥
मूल अज्ञान नसायो, कहीं गयो नहीं नो आयो॥
गुरुजी०॥ ४॥

—o—

५६ शिष्य का अनुभवोद्गार।

पद राग कल्याण।

आज भयो चित चैन! हमारे आज भयो चित चैन॥ टेक॥
पूत कपूत भयो कुल मारे, पंगु बधिर बिन बैन॥ १॥
स्वामी सत्य सनातन शिक्षा दीनी, चिन कर पशु मति मैन॥ २॥
ताको मोह भयो अति मो मन, मगन रहूं दिन रैन॥ ३॥
कहत नित्यानन्द तत्त्वी पासी, निज शान्ति सम सैन॥ ४॥

—o—

५७ शिष्य की कृतज्ञता।

पद राग कल्याण।

सद्गुरु दीन दयाल हमारे सद्गुरु दीन दयाल॥ टेक॥
जिनकी कृपा कटाक्ष भई जब कलिमल कट्यो पिनसाल॥ १॥
हमारे०
आत्मतत्त्व का मर्म लख्या निज अतुल अमोल जे माल॥ २॥
हमारे०

मात तात पत्नी सुत बांधव, ले न सके कोउ चाल ॥ ३ ॥
हमारे०
वन्दू गुरु पद दोऊ जोर कर, मैं नित्यानन्द त्रियकाल ॥ ४ ॥
हमारे०

—— ० ——

५८ शिष्य की सफलता ।

पद राग कल्याण ।

सफल भये सब काज, हमारे सफल भये सब काज ॥ टेक ॥
मन बुद्धि चित अहंकार इन्द्रिय, दश प्राण भये सम आज ॥
हमारे सफल० ॥
शान्त स्वरूप अनूप अनादि, अखिल मिल्यो निज राज ॥
हमारे सफल० ॥
पूर्व पुण्य प्रगट भयो सजनी, करहु गाज सत गाज ॥
हमारे सफल० ॥
कहत नित्यानन्द अखिल अगोचर, अचल सजे मन साज ॥
हमारे सफल० ॥

—— ० ——

५९ शिष्य का आनन्द ।

पद राग कल्याण ।

आज भयो चित मोद, हमारे आज भयो चित मोद ॥ टेक ॥
ऐसो दिवस भयो शुभ जेहि कर, ओज भयो मम बोध ॥ १ ॥

मूसा मथिया है तू अनम को, ताहि असाई मैंने लाद् ॥ २ ॥
करना था सो काज किया हम अब ना नहीं कछु शोच ॥ ३ ॥
देखो नित्यानंद नित्य शुभ लीला, आनदि बोध अबोध ॥ ४ ॥

—— o ——

६० ब्रह्म-पद की प्राप्ति ।

॰ पद राग भैरवी ॰

मेरो रूप मैं पाया ।
　　श्री गुरुजी शरण आपकी आके ॥ टेक ॥
लख चौरासी योनि भुगत के, मानुष देह अब पाके ।
लख चौरासी सबही छूटी, श्री गुरु श्री मुख भाके ॥१॥
इस संसार में सार नहीं है, पामर होय सो मरके ।
हम इसकी सब आस पोल अब विषयुत विष को फाके ॥२॥
तीनहि लोक अरु चौदह भुवन को राज करे व रंक ।
ऐसा राज दियो सत् गुरुजी, ताहि पाय हम छाके ॥३॥
मोह ममता अरु मान बड़ाई भस्म किए निज तन के ।
नित्यानन्द ब्रह्म-पद पाया, श्री शुभ गुरू पद ध्याके ॥४॥

[७] ऋद्धि सिद्धि ।

—— o ——

(ज्ञानी की ऋद्धि सिद्धि की ओर अलक्ष ।)

चौपाई ।

(१)

ऋद्धि सिद्धि नाले पर धाओ ।
वारि सघ वहेना वहे जाओ ॥
मूरख की मति को भरमाओ ।
मोरे निकट रति मत आओ ॥

(२)

कामी फिरे कामिनी संगा ।
मतीहीन माने वडी चंगा ॥
देख नारि नर के सग आवे ।
पाच पच्च परणा कर लावे ॥

(३)

जाको लाज रति नहिं आवे ।
पुरुष नाम जग मांहि कहावे ॥
पुरुष नाम को मूढ लजावे ।
लीला निरख नित्यानन्द गावे ॥

(४)

ऋद्धि सिद्धि से करे जो यारी।
सो मारी पावे दुख भारी ॥
ऋद्धि सिद्धि नरकों में डारे।
सत्य वचन मुनि व्यास उचारे ॥

(५)

व्यास वचन को पढ़े विचारे।
मिथ्या मूर्खता नाहिं निकारे ॥
ऋद्धि सिद्धि जिसने ही त्यागी।
सो भव सागर गया अभागी ॥

(६)

अमय वस्तु जग में सब पावे।
सत् गुरु शरण प्रेम से आवे ॥
हठ योगी हठ करे अपारा।
कठिन मूढ़ता दुख संसारा ॥

(७)

पाखंडी पाखंड सिखावे।
ऋद्धि सिद्धि को रटे रटावे ॥
ऋद्धि सिद्धि तदपि नहिं पावे।
भूखा मरे कष्ट फस जावे ॥

(८)

बिना मीत मूरख मर जावे।
मन इच्छित फल रती न पावे ॥

श्रीहरि श्रीमुख से समझावे ।
ऋद्धि सिद्धि भव माहि डुबावे ॥

(९)

क्वचित पुरुष जग में सुख पावे ।
केवल वे प्रभु के गुण गावे ।
ऋद्धि सिद्धि दोउ चमर ढुलावे ।
नाचे सन्मुख मंगल गावे ॥

(१०)

मूरख रिद्धि सिद्धि को गोवे ।
आशा मे आयु सब खोवे ॥
अपना गुण अवगुण नहिं जोवे ।
सुख से रैन दिवस नहिं सोवे ॥

(११)

तज मूरखता मूरख प्राणी ।
ऋद्धि सिद्धि सुन्दर तन जाणी ।
ठगनी ठगे फिरे चवखाणी ।
कहे निज नित्यानन्द सत् वाणी ॥

सत्य हमारा परम मित्र है, बहेन दया सम वारी।
साधन सम्पन्न अनुज मोर मन, मया करी त्रिपुरारी ॥
मों सम० ॥ २ ॥
शय्या सकल भूमि लेटन को, वसन दिशा दश धारी।
ज्ञानामृत भोजन रुचि रुचि करूं, श्रीगुरू की बलिहारी ॥
मों सम० ॥ ३ ॥
मम सम कुटुम्ब होय खिल जाके, वो जोगी अरु नारी।
वो योगी निर्भय नित्यानन्द, भय युत दुनियादारी ॥
मों सम० ॥ ४ ॥

—— o ——

३. अज्ञानी की दृष्टि।

* पद राग मलहार *

जग में प्राणी दुखी घरवारी।
अष्ट प्रहर चौसठ घडी जिनके, भय उर मे अति भारी ॥ टेक ॥
घर जिनके लकडी मिट्टी को, सो जगल की वारी।
पर घर को अपनो घर माने वरणाश्रम लख चारी ॥
जग में० ॥ १ ॥
दुख में सुख बुद्धि नृप मानत, मिथ्या महल अटारी।
तिनमें क्लेश होत निशि वासर, लेश चले ना लारी ॥
जग में० ॥ २ ॥
प्रभु की प्रभुताई नहीं जानत, कहे शठ म्हारी म्हारी।
जो कोऊ सत्य बचन कहो उनको, अतिशय लागत खारी ॥
जग मे० ॥ ३ ॥

पर घर तज अपने घर सोय सो निश्चल नर नारी ।
कहे मस्तमस्त नित्यानन्द स्वामी तिनको मो बलिहारी ॥
जग में० ॥ ५ ॥

— o —

४ नरों में क्वचित विवेकी ।

* पद राग मल्हार *

क्वचित् विवेकी होवे
नरों मों नर क्वचित् विवेकी होवे ॥ टेक ॥
जो ध्यान करने भी हरि का
अज ध्यान कारण रोवे ॥ १ ॥
है असंग संग में भी हरिजी
सब देता गुण अवगुण खोवे ॥ २ ॥
तू रत बन पर्वत तीर्थ में
वृथा आयु सुन्दर शठ खाय ॥ ३ ॥
रजनि दिवस चैन नाह जड़ को
सुन मस्तमस्त निर्भय से सोवे ॥ ४ ॥

— o —

५ ज्ञानी बड़भागी ।

* पद राग सोरठ मल्हार *

कोई बड़ो बड़ भागी—
नरों मों नर कोई बड़ो बड़ भागी ॥ टेक ॥

जिनकी लगन चरण कमलन में,
श्री हरि गुरुजी की लागी ॥ १ ॥
तृणवत् भोग वैभव सब तज के,
होय अन्दर से त्यागी ॥ २ ॥
वो पुरुषोत्तम पुरुष कहावे,
जिनकी सूती निज मति जागी ॥ ३ ॥
वो अलमस्त रहे निशि वासर,
नहिं वैरागी रागी ॥ ४ ॥

——o——

६. अज्ञानता से सावधानी ।

* सवैया *

बीत गई हमरी तुमरी कछु,
और रही सो वो बीत रही है ॥
हे प्रिय मीत ! प्रवीण महा मति,
तेह अज्ञान महा भट अही है ॥
एहि गिले हमको तुमको,
बचे नहिं चित्त गिले कहू सही है ॥
कोई बचे बड भागिय महा मति,
जो मोहि सूझ पडी सो कही है ॥

——o——

९ ज्ञानी अज्ञानी का भेद ।

कवित्त ।

ज्ञानी जन ऐरावत जैसे, मोह माया मध्य अन्ध धसे,
पुनि माया की नदिया मे, खुद देखो वहे जात है
है गृन्थि हृदय में विशाल, वाको नहीं जे गति ख्याल,
वे तो मति हीन चौडे चौडे, रे पामर दर्शात हैं ॥
जे गृन्थि को न कीनो नाश, उल्टी गले मे डारी फास,
वे तो अवश्य होय नाश, ये तात सत्य बात है ।
ऐरावत की देत ऊप, कहां कगाल कहां महीभूप,
दीखे चेरे पे यार रूप, वो प्रत्यक्ष दिखलात है ॥

—— o ——

१० ज्ञानी अज्ञानी का व्यवहार ।

कवित्त ।

कल्याण के निमित धन धाम मात तात वाम ।
पुत्र वो परिवार, प्राण तजे सो पुमान है ॥
विनाही अपराध शठ, पेट के निमित्त आप ।
ते करे सो कुकाज, ताकी पशु पहिचानि है ॥
जाके आस पास ऋधि, सिधि अष्ट पहर रहत ।
ते तोऊ नाहिं देत ध्यान, वो मति स्वस्थान है ॥
सोहि तो है पुमान, ताको होत खिल ब्रह्मज्ञान ।
कहत नित्यानन्द सोही, सज्जन सुजान है ॥

—— o ——

११ अज्ञानी का व्यवहार।

सवैया।

काम अकाम कियो चितम
गुरु ग्रंथ को धर्म की बात सुनावे।
त्याग किया हरि नाम जिन्हें,
हृद धन किये विष को चित ल्याव॥
दास भयो नर नारिन को,
तिन को अप आप यों मो डिग आवे।
शून्य भयो ते वैराग्य विवेक से,
सो किमि देव नित्यानन्द पावे॥

——:o——

१२ सत्य असत्य की शोध।

सवैया।

हम सत्य असत्य को शोध कियो,
गुरु गुप्त मिले तिन सैन बताई।
लखि सैन हृद तिनकी तबही
हम ध्यान किया एकान्त में जाई॥
कर वृत्ति एकाग्र विवेक किया
परि पूरण ब्रह्म लख्यो वपु मांही।
सो जीवन मुक्त भयो जग में
निज चिन्द स्वरूप समाधि लगाई॥

——o——

१३. ज्ञानी की मति।

* सवैया *

चीन्ह लियो निज गुप्त निजानन्द,
ता जन की कथनी किमि गावे।
पूरण ब्रह्म समान भई मति,
ता मति को कोउ थाह न पावे॥
देह को नाहिं गुमान जिन्हें,
चाहे भूखि रहे बहु व्यंजन खावे।
रे नित्यानन्द को क्षोभ नहीं,
तन चाहे रहे चाहे छिन्न में जावे॥

—— o ——

१४. ज्ञानी की निर्मलता।

* सवैया *

देखिये दृष्टि को खोल सखे,
मुझ में रति रोग की गन्ध भी नाहीं॥
दृष्टि मलिन से दीखे मलीन जो,
दिव्य दृष्टि से निरोग दिखाई॥
रोग को धाम निरोग खरो,
चाहे लाख छिपावो छिपे न छिपाई॥
रोग पुकार कहे कर जोर,
हरो सब रोग नित्यानंद साई॥

—— o ——

१७. ज्ञानी के उद्गार।

* सवैया *

ज्ञान भयो ते अज्ञान गयो,
गुरुदेव दया करके समझायो ॥
द्वैत अद्वैत की खेद मिटी,
एक नित्य निरजन में जग पायो ॥
सेवक से नहिं सेव बनी,
बिन सेव दयालु ने मोहिं बचायो ॥
जीवन मुक्त भयो जग मे,
गुरु गुप्त मिलेह नित्यानन्द गायो ॥

—— o ——

१८ ज्ञानामृत।

सवैया ।

अमृत भोजन पान कियो तिन,—
की सब भूख उडी पुनि प्यासा ।
पारस गुप्त को पाय चुका तिन,
छांड दई त्रय लोक कि आसा ॥
वास करे वन शैल गुफा वो
होवत ना कोउ शेठ को दासा ।
निज नित्यानन्द को क्षोभ नहीं,
निर्लेप रहे मति ब्रह्म निवासा ॥

—— o ——

१९ ब्रह्म-ज्ञान ।

सवैया ।

जीव चराचर में जिनकी
  सम दृष्टि भई लखी सो ब्रह्म ज्ञानी ।
काल की नाईं निर्भय रहे,
  काम को तो चाहे होय अज्ञानी ॥
द्वैत अद्वैत की भास नहीं
  निर्द्वन्द्व रहे किमि होय गिलानी ।
निज नित्यानन्द को क्षोभ नहीं
  परब्रह्म समान लखी सो ज्ञानी ॥

—— ——

२० ज्ञानी और अज्ञानी ।

कुण्डलिया छन्द ।

ज्ञानी जन ताको कहत नहीं जासु पर मान ।
  सो शान्ति मति सब कहुँ, मान शाप समान ॥
मान शाप न मान करे पशु जग न ज्ञान । ।
  सुन न कहे हम सत्य ब्रह्म नहिं तिन पिछाना ॥
य कह निज नित्यानन्द ज्ञानि करेउ पाप शाप ।
  तिन प्रति करी नमन निज हमार यो पूरन ॥

—— ——

२१ पण्डित के लक्षण ।

कुण्डलिया छन्द ।

पण्डित ताको चीनिये, निज पद मे गति होय ।
मन बुद्धि चित्त अहकार वपु, देय मूल से खोय ॥
देय मूल से खोय, सोई पण्डित परवीण ।
नहिं ताको भय त्रास, कष्ट पावे मति हीना ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, दृष्टि सम होवे जाकी ।
ते पण्डित लख अङ्क, सग करिये उठ वाकी ॥

—— ० ——

२२ पण्डित और अपढ़ ।

कुण्डलिया छन्द ।

विन पढ़ पढ़ पण्डित भये, पढ़ कर होगये मूढ़ ।
ते पण्डित पण्डित नहीं, ते पण्डित मति कूढ ॥
ते पण्डित मति कूढ़, मूढ़ को संग न कीजे ।
मान हमारी बात, सखे ताकु तज दीजे ॥
ये कहे निज नित्यानन्द, करे जे तिनसे यारी ।
ते दुख सहे अपार, कहू कुण्डली भण सारी ॥

—— ० ——

२३ अपनी अपनी कथनी ।

कुण्डलिया छन्द ।

अपनी अपनी सब कहे, पण्डित साधु प्रवीण ।

भोजन की कछु ना सुने, रहे गम में लीन।
रहे गर्व में लीन, जगत में कर ठगाई।
खाय मुफ्त का माल बुधि स्वारथ पर डाई।
ऐसा कोउ नर एक अखिल नित्यानन्द जोई।
जो न कर पाखण्ड उपाधि जड़ से खोई।

—— () ——

२४ ज्ञान अज्ञान।

कुण्डलिया छन्द।

ज्ञान गुरुओं की खान है महा पाप अज्ञान।
कुबुधि कुगुण कुपी विपरत सदा महान।
विपरत सदा महान सुझाव तिन को ज्ञानी।
तिनके आगे आप जाइ कर भरता पानी।
ये कहे निज नित्यानन्द चराचर शिव सम मांई।
यह असार संसार अखिल तज मन कुटिलाई।

[६] मन और चित्त को उपदेश।

—— ० ——

१. मन तेरा कोई नहि हितकारी।

* पद राग सोरठ मल्हार *

मन थारो ! कोई नहीं हितकारो।
तू नित बड करे बडाई, होय दुर्गति थारी ॥टेक॥
देख खोल चक्षू तू दोनू, कौन वस्तु है थारी।
सबहि विभूति है श्रीहरि की, तू कहे म्हारी म्हारी ॥
मन थारो० ॥ १ ॥
तू निश्चल क्षण भर नहिं रहता, फिरता मरजी धारी।
राज नहीं पोपा बाई को, बैठ त्रिगुण मन टारी ॥
मन थारो० ॥ २ ॥
वचन प्रमाणिक कहूँ मैं तुझ से, लगता तुझको खारी।
दुर अवगुण कर दूर वावरे, प्रभु भज वारबारी ॥
मन थारो० ॥ ३ ॥
प्रभु समान तेरा नहिं दीखे, जग में कोई हितकारी।
गुप्त सेन मन समझे शिघ्रहीं, होय मित्र सुख भारी ॥
मन थारो० । ४ ॥

—— ० ——

२ मन वैरागी होना।

• पद राग सोरठ मल्हार •

मन मेरा नीक विरागी होना ॥ टेक ॥
तज पुरवास उदासीन विचरो, मत कोऊ बाँधो भवना।
गिरि तरु मढ़ी मसाण में रहियो, हो काऊ दपस सूना ॥
मन मेरा० ॥ १ ॥

भूख लगे जब भोजन करना, कर कर लगा चूना।
शीत निवारण जीरण कथा, तामें धींगड़ होना ॥
मन मेरा० ॥ २ ॥

राव रंक एकी सम जाणो जिमि कंकर तिमि सोना।
सुख दुख की चिन्ता सब त्यागो होनी होय सो होणा ॥
मन मेरा० ॥ ३ ॥

तन मन धन श्री सद्गुरुजी के अर्पण, धरना ध्यान सुख होना।
कहत भरत मुख से सत् वाणी राम चरण चित धूना ॥
मन मेरा० ॥ ४ ॥

—— ० ——

३ मन प्यारे मानत नाहीं।

पद राग होली बसन्त।

मन प्यारे मानत नाहीं, क्या समझाऊं मैं तोकूं ॥ टेक ॥
मन तोकूं समझायो जैसे पिंजर में सुवाको।
समझ कछु नाव मैं बहु ताकूं पीकूं ॥

तजे नहीं तूं निज वोकू, क्या समझाऊं मैं तोकू ॥ १ ॥
तूं मन मेरा मत्री कहिये, फिर तू दहे निज तनको ।
ये ही कुचाल बहुत तुझ माहीं, तू देता दुख मोकू ॥
चाहे तू भव भोगों को, क्या समझाऊं मैं तोकू ॥ २ ॥
तू मन नाच नचावे जाण, जिमि मदारि बन्दर को ।
क्षण भर स्थिर होय नाहिं तू, मैं पुनि तोकूं टोकूं ॥
न चाहूं ऐसे मित्र को, क्या समझाऊं मैं तोकू ॥ ३ ॥
नित्यानन्द मन तोकू समझावे, वार वार कहे नीको ।
अब मरजी होय सो तू कीजे, मैं न और तेरी थूंकू ॥
करे दगा तो ठोकू, क्या समझाऊं मैं तोकू ॥ ४ ॥

—— ० ——

४ सुने नहीं मतिमान हमारी ।

पद राग प्रभाती ।

सुने नहीं मतिमान हमारी वृद्ध भई उम्मर थारी ॥ टेक ॥
सन्तन की सेवा तू करता, सतन के रहता लारी ।
संतन कीसी कर तू करणी, कर पवित्र बुद्धि थारी ॥
सुने नहीं० ॥ १ ॥
सन्तन का कर गुण सम्पादन, तोकू तब सुख होवे भारी ।
सत्य वचन गुरु वेद कहे द्विज, सत करे भव से पारी ॥
सुने नहीं० ॥ २ ॥
तत्व बोध तब होय त्रिवेदी, त्याग सकल जग की यारी ।
अचल सच्चिदानन्द आतमा, गुणातीत लख गुण टारी ॥
सुने नहीं० ॥ ३ ॥

जिस तन कू तू तेरा माने, सो तन नहिं तेरा धारी।
तू नित्यानन्द अचल आतमा, सदा सदा रहे तन के न्यारी॥
सुनी नहीं० ॥ ४ ॥

— 101 —

५ किस पर करत गुमान रे मन।

पद राग होरी बसन्त।

किस पर करत गुमान रे मन मान हमारी ॥टेक॥
हाड़ चाम का बना यह पींजरा, सकल पुरुष अरु नारी।
तिसको तुम अपना कर मानो, यही भूल बड़ भारी।
यह तू क्यों बिन धारी। किस पर करत० ॥ १ ॥
दो दिन की है चमक चामकी सो तू लेहु विचारी।
बिन विचार कछु सार मिलेगा छांड सकल चित धारी॥
आप तू खुद गिरधारी। किस पर करत० ॥ २ ॥
दो दिन का है जीना जगत में सो तू जाने अनारी।
भव सागर से तिरना होय तो हो अतिशय हुशियारी॥
तबही होवे भव पारी। किस पर करत० ॥ ३ ॥
इसमें संशय मन मत लावो यह सत्य भजले चारी।
कहे अलमस्त नित्यानन्द स्वामी, सो सुन है अति भारी॥
कही तो से मैं सारी। किस पर करत गुमान० ॥ ४ ॥

—o—

६ एक दिन झड जावेगें वेर।

पद राग होली वसन्त।

एक दिन झड़ जावेंगे, इस झाड़ी के बोर ॥ टेक ॥

आप खाय नहिं नहिं काहु को देवे, एक कर से तोर।
रे मन कृपण प्रधान नीच मन, कर तूं पाप बड़ घोर ॥
एक दिन० ॥ १ ॥

देख झाडी के फिर चौमेरू, झड़ रहे बोर ही बोर।
कछूक रहे है अब झाडी में, सोभी तजे क्यों तूं ढोर ॥
एक दिन० ॥ २ ॥

जो कुछ इच्छा होय सो मनवा, जीमों बोर बहोरि।
फिर ढू डे से एक मिले ना, चाहे तूं लाख ढिंढोर ॥
एक दिन० ॥ ३ ॥

खा खुद यार खिला औरन को, दोऊ अपने कर जोर।
कहे अलमस्त नित्यानन्द स्वामी, समझ समझ कर गोर ॥
एक दिन० ॥ ४ ॥

— o —

७ काज सत्य शोध मन कीजे।

पद राग गजल धमाल।

काज सत्य शोध मन कीजे,
उमर यह वीती जाती है ॥ टेक ॥

वक्त के वोये निपजत है, भूमि में हीरा अरु मोती।

बस चूक से पछताओ, सन्त यह सत्य गाते हैं॥
काज मन० ॥ १ ॥

भक्त को भक्त ही जाने, कविश्वर काव्य को कथते।
लाभ तिनका जो होता है, सत्य के सत्य गाते हैं॥
काज मन० ॥ २ ॥

होय भगवान पृथ्वी पर भक्त अपना बिताते हैं।
जिन सम भाव हो सब में, वोही निज रूप पाते हैं॥
काज मन० ॥ ३ ॥

काल का चक्र है भारी घूमता शीष पर धारी।
मार डंठ ज्ञान पिचकारी काली नाहिं काल खाता है॥
काज मन० ॥ ४ ॥

सत्य से दूर जो भागे असत्य को जानकर त्यागे।
मित्रानन्द कहत जिमि लागे वो ही सब मन रिझाते हैं॥
काज मन० ॥ ५ ॥

—— ० ——

८ काज मन अबतो यह कीजै।

पद राग धमाल।

काज मन अबतो यह कीजै उमर वो खेल में जाई॥ टेक॥

दीसता चक्र है जारी करो दिलचर से अब यारी।
अन्त में जायगी क्यारी बैठ प्रभु नाम रट भाई॥
काज मन० ॥ १ ॥

चेत अब चक्र है थोड़ा बुढ़ापा संग फिर कोड़ा।

दुखे तब वो कटि गोडा, वहोगे मूढ बिन तोई ॥
काज मन० ॥ २ ॥
कौन का धाम धन छोरा, करो क्यों जास मे शोरा ।
अन्त में रहे तू फिर कोरा, चले नहिं जोर वहाँ कोई ॥
काज मन० ॥ ३ ॥
दूर कर अवतो ममताको, चीन ले यार निज ग्रह को ।
नित्यानन्द टेर कर कहता, शीप धुन २ के फिर रोई ॥
काज मन० ॥ ४ ॥

—— o ——

६ भक्ति मन प्रेम से कीजे ।

पद राग गजल धमाल ।

भक्ति मन प्रेम से कीजे, तबहि भगवान अति रीझे ॥ टेक ॥
प्रेम वश देव गण होते, देख टुक अपने झेहने में ।
फिरे क्यों परवतों वन में, वृथा शठ येह जो तन छीजे ॥
भक्ति मन० ॥ १ ॥
प्रेम वश आप प्रभु वन में, धाम भीलनी के जा झूंठे ।
बोर खाये वो रुच रुच के, कहे भिलनी यह प्रभु लीजे ॥
भक्ति मन० ॥ २ ॥
प्रेम प्रेह्लाद को सांचो, रह्यो नहिं हाव वो काचो ।
ताप लागी न तिन तन को, प्रभू रस नाम से भीजे ॥
भक्ति मन० ॥ ३ ॥
भक्ति की महिमा है भारी, छांड उर वासना सारी ।

फिरे क्यों मारी व्यभिचारी नित्यानन्द और मन दीजै ॥
भक्ति मग० ॥ ४ ॥

दोहा ।

केवल केवल आतमा, नित्यानन्द स्वरूप ।
धन मान जामें नहीं चेतन ब्रह्म अनूप ॥

—— o ——

१० साधन चतुष्टय ।

सवैया ।

रे सुन चित्त चतुष्टय साधन,
जो तू सम्पादन नाहिं करेगा ।
सत्य असत्य छिपे नहीं देख तूं
ब्रह्म बिना बिन मौत मरेगा ॥
काज असत्य से नाहिं सरे
सत से सब शीघ्र ही काज सरेगा ॥
सत्य असत्य को बोध करे
नित्यानन्द गुरु भव पार करेगा ॥

—— o ——

११ विवेक बिना चैन नहीं ।

सवैया ।

रे सुन चित्त ! विवेक बिना शुभ,
जो शठ चैन कभी नहिं होय ।
यह संसार असार सभी लख

तू सत् मान निशीदिन रोवे ॥
सत्य से देख असत्य खडा,
ते असत्य कू सत्य निरतर जोवे ।
भान नहीं अपना-परका सोहि,
जान असत्य नित्यानन्द सोवे ॥

—— o ——

१२ चित्त की निश्चलता ।

सवैया ।

रे सुन चित्त ! कदाचित भी,
रहना नहीं मान हमारी जे वाणी ।
दुष्ट रहे तन में लखि देख तू,
दे तोहि त्रास तेरी पटराणी ॥
तू कर निश्चल प्राण इन्द्रिय सब,
, जो न करे तो डूबे विन पाणी ।
तत्व त्याग अतत्व को ध्यान करे,
नित्यानन्द कहे वो है अज्ञानी ॥

—— o ——

१३ अभयदान ।

कवित्त ।

अभय दान श्रेष्ठ दान विद्वान करत गान,
चीन मति मान अभय दान जग-सार है ।
रे विद्या को न पायो सार पढ़ी विद्या वार वार,

आगामी की कर आस फिर हार लाए है ।
विचार करो किया अपमान खोटे खोटे लेत दान,
अभय दान को न नाम बड़ो ही गंवार है ।
ये कह पुनि नित्यानन्द छांड चित्त खोटी चाह,
अभय दान कीन्हे बिन जीवना धिक्कार है ॥

—— o ——

१४ अभयदान सत्यवित्त ।

कवित्त ।

या ही तो है सार वित्त अभय दान सत्य वित्त,
और दान नहीं वित्त जो आदि दुःख रूप है ।
श्रेय तो सदैव अभय दान को ही लीजे अग,
हे तामें क्लेश नाहीं ! जो केवल सुख रूप है ॥
है तू खुद विवेकी आप, देख तू विवेक कर,
तू तुच्छ दान काज फिरे जेम बेवकूफ है ।
यातें सत्य मान मीत, अभय दान खूब नित्य,
कहते गुरुदेव नित्यानन्द सुर भूप है ॥

—— o ——

१५ अभय दान का महत्व ।

कवित्त ।

अभय दान का महत्व, वेद पुराण भी कहत
ए ! ताको चित्त देख तू या पावन के योग्य है ।

तू तो है निर्लज्ज अज्ञ, है तेरे को न रति लाज,
ये श्रेष्ठ नाथ दियो साज पाप पुण्य भोग है ॥
तुच्छ ये अनित्य भोग, तू छाड चित्त यार शोक,
दान मध्य अभय दान, खोत मूल रोग है ।
रे जामे नाहिं रति रोग, वोही दान दान योग,
ये कहे कवि नित्यानन्द, कह्यो कवि लोग है ॥

—— o ——

१६ अमूल्य माणक ।

कुडलिया छन्द ।

माणक मणि अमोल है, वो है तेरे पास ।
फिर तू क्यों चिन्ता करे, दीखे मुझे उदास ॥
दीखे मुझे उदास, नहीं माणक तूं पायो ।
याते रहे उदास, बहुरि चेहरो दर्शायो ॥
ये कहे अलमस्त पुकार, दूर चित चिन्ता कीजे ।
माणक लाल अमाल, मिले चित बहुरि रीझे ॥

—— o ——

१७ अनमोल रत्न ।

कुण्डलिया छन्द ।

रतन रतन सब को कहे, रतन बड़ा अनमोल ।
ताको क्यों नहिं खोजता, ऐसी क्या भई पोल ॥
ऐसी क्या भई पोल, यत्न कछु नाहिं विचारे ।

एक अमोलक श्वास, होत छिन २ में न्यारे ॥
ये कहे निज नित्यानन्द रतन घट मांहि समायो ।
बिन सत् गुरु की कृपा ताहि कोऊ नहिं पायो ॥

—— o ——

१८ सच्चा और झूठा ।

कुण्डलिया छन्द ।

झूठे को सच्चा कहे सच्चे को नहिं तोल ।
सच्चा अपने आप है, उसका नहिं कोइ मोल ॥
उसका नहिं कोइ मोल, वस्तु ये अद्भुत प्यारे ।
मन वाणी अरु नैन भेद लेने में हारे ॥
ऐसा अनुपम गुप्त, व्याप सब है एक तारे ।
कहे निज नित्यानन्द झूठ कछु वस्तुहि नाहें ॥

—— o ——

१९ तत्व का सौदा ।

कुण्डलिया ।

सौदा करो निज तत्व का सौदागर शुभ जात ।
लाभ हायगा याहि में, पुनः तोय कुशलात ॥
पुनः तोय कुशलात यही जग सार कहावे ।
और सकल परपंच तोय मति को भरमावे ॥
ये कहे निज नित्यानन्द सुजन गाफिल नहिं रहना ।
कहो तोय बेपार चित्त को तिसमें देना ॥

—— o ——

[१०] महिला उपदेश ।

—— ० ——

१ पतिव्रता धर्म धारण ।

पद राग कल्याण ।

पतिव्रत धर्म विचार, सुन्दरी पतिव्रत धर्म विचार ॥ टेक ॥
पतिव्रत धर्म धार निज मन में, नर तन को यह सार ॥
सुन्दरी० ॥
यह असार संसार छांड चित्त, तबहि होय भव पार ।
सुन्दरी० ॥
पतिव्रत धर्म त्याग जे करती, ता मुख को धिक्कार ॥
सुन्दरी० ॥
कहत नित्यानन्द लोक त्रय मध्य, तबहि तू होय उद्धार ॥
सुन्दरी० ॥

—— ० ——

२ हित अनहित पहिचनना ।

पद राग कल्याण ।

हित अनहित पहिचान सुन्दरी,
हित अनहित पहिचान ॥ टेक ॥
हित अनहित पक्षी पशु जानत,
बुधिजन कहे सत् जान ॥ १ ॥

तज गुरुसंग कुसंग अपेखो,
जन्मे स्वपच गृह स्वान ॥ २ ॥
जौं लौं हित अनहित नहिं जानत,
तौं लौं मू ढ समान ॥ ३ ॥
कहत जोर यह निरंजनन्द सुन
तबहिं होय मति ज्ञान ॥ ४ ॥

—— ० ——

२ सती अष्टकम् ।

हरि गीत छन्द ।

युवती वोही परमात्मा के
शुस्य निज पति को भजे ।
इस लोक वा पर लोक के,
सुख भान विष्ठावत् तजे ॥ १ ॥
पूजन पति परमात्मा की,
बचनों की विधि से करे ।
उसाही का होय स्वरूप सजनी
जो बहुरि ना जन्मे मरे ॥ २ ॥
लाखों करोड़ों में कोइक,
होवे सती बड़ भागनी ।
पतिव्रता का धर्मों को पाले
जो पाले नहीं सखि भागनी ॥ ३ ॥

प्रीतम को तब प्यारी लगे,
वचनों को नहिं टाले कभी।
केवल पति परमात्मा के,
भोग संग भोगे सभी ॥ ४ ॥

भोगों के भोगन के लिये,
पतिव्रत को खण्डन करे।
देखे पति परमात्मा,
सब हाल तदपि ना डरे ॥५॥

दीखे नहीं जिनको पति,
परमात्मा निर्गुण हरि।
श्रो संग मे रहता सदा,
तू सेज कामी की परी ॥ ६ ॥

सन्मुख पति परमात्मा के
भूंडि तू कुकर्म करे।
जावे रसातल को सफा,
शुभ कर्म कर भव से तरे ॥ ७ ॥

इस लोक वा परलोक में,
शुभ होय जब कीर्ती अति।
कहे मस्त जिनकी है पति,
परमात्मा में सत् रति ॥ ८ ॥

——o——

४ जिज्ञासु महिला ।

पद राग दादरा ।

पंखा लेकर गुरुजी, मैं तो द्वार खड़ी ॥ टेक ॥

लख चौरासी घूम थकी गुरु ।
अब चरनन में आय पड़ी ॥ १ ॥

देख दया की अब दृष्टि से
सुमर रही मैं तो घड़ी की घड़ी ॥ २ ॥

अब हटने की नहिं छोड़ी से,
निर्भय होके मैं तो आय अड़ी ॥ ३ ॥

हर गुरु सुख सफल तन मन को
नित्यानन्द निज दे दो जी खड़ी ॥ ४ ॥

—— o ——

५ भक्त महिला ।

पद राग लावनी ।

प्रीतम का पथ नित्या पड़पा विन मरके ।
प्रीतम मेरा दे पते मैं हूं विन पर के ॥
प्रीतम० ॥ टेक ॥

न दोनों मेरी हार अंब में हरके ।
जब से गई मैं दे हाल आप विन पड़के ॥
प्रीतम० ॥ १ ॥

बिन धड के मोरे श्याम मैं हूं बिन परके ।
इन्साफ करो महिपाल गौर कुछ करके ॥
प्रीतम० ॥ २ ॥
प्रीतम बिन शून्य शृंगार न लडकी लडके ।
खाती अब टुकडा माग बहुरि घर घरके ॥
प्रीतम० ॥ ३ ॥
होगई दुरदशा जपूं जाप अब हरके ।
हरि प्रीतम नित्यानन्द मिलूं दिल भरके ॥
प्रीतम० ॥ ४ ॥
ऐसो दो शिव वरदान रति नहिं सरके ।
मेरे अब दुर्गुण देख, कबु ना तरके ॥
प्रीतम० ॥ ५ ॥

——:o:——

६. सच्चा पति ।

पद राग कल्याण।

सच्चे पति गले लाग प्राणप्यारी, सच्चे पति गले लाग ॥टेक॥
सच्चा पति सत् चित गुणधन, कर तिनों पद अनुराग ।
प्राणप्यारी० ॥ १ ॥
जेहि पति का आनन्द अनता, तेहि लख २ सत भाग ।
प्राणप्यारी० ॥ २ ॥
सच्चा पति सत् गुरु औ शास्त्र सत् पुनि सत् सग सुपाग ।
प्राणप्यारी० ॥ ३ ॥

[११] रहस्य मय विनोद ।

—o—

१ ज्ञान वल्लभी बूंटी ।

पद राग गजल कव्वाली ।

गुरूजी के शरण आके, भंग हम ऐसी पी भाई ।
हुवा उन्मत पीकर के, लाली आंखो में अति छाई ॥ टेक ॥

चढ़े दिन रात ये दूनी, नशा इसका न घटता है ।
खुमारी मे खबर मुझको, कछु तन मन की नहिं आई ॥
गुरुजी० ॥ १ ॥

जगत मिथ्या मुझे जंचता, न इसकी ओर चित रुचता ।
सबही ओर से मन खिचकर, रहा परि ब्रह्म लवलाई ॥
गुरुजी० ॥ २ ॥

नहीं पीना सहेल इसका, बहुत मुश्किल तरंगे है ।
कोई विरला इसे पीकर, दुखद फंदों से छुटजाई ॥
गुरुजी० ॥ ३ ॥

रंग इसी रङ्ग में ऐसा, अमित आनन्द आता है ।
कथे अवधूत नित्यानन्द, असत जामें नहीं राई ॥
गुरुजी० ॥ ४ ॥

—o—

२ समाधि लग गई मोरी।

पद राग कव्वाली गज़ल।

एक सुखु भंग में पाया समाधि लग गई मेरी ॥ टेक ॥

समाधि सविकल्प लागी, खुमारी है मुझ उसकी।
भान वेभान में लीला विविध विध चली मैं ठेरी ॥ १ ॥

प्रतिष्ठा नार कञ्चन को गया शुभगात के मांही।
प्रसंग हो संग भी गुरु के, फल पड़ा कीन्हि नहीं देरी ॥ २ ॥

प्यास है बहुरि मिश्र मन को एक सुखु श्रौर लने की।
समाधि निर्विकल्प होय पिलाओ प्रेम से फेरी ॥ ३ ॥

कथी कथनी सुनी हमने, अन्तर्यामी के सम्मुख में।
सुखु है तीन पीन के, पियो कोई धीर कहुं टरी ॥ ४ ॥

दोहा

(१)

बिन मांगी विजिया मिले मागी मिले न भंग।
सन दम की हास्ती, भाग्यवन्त हाथ भंग ॥

(२)

कर विवक सुख न पिआ प्याला भर भर भंग।
व्यसन छाड़ मैदान में ला लहरें फिर भंग ॥

—— o ——

३ ज्ञान रूपी भंग का घुटना।

पद राग सोहनी।

तेरी भंग भवानी के संग, घुटा गया मैं घुटा गया ॥ टेक ॥

जो कोई तेरी शिला, लोढ़ो के नीचे आगया।
रगड़े में वो रगड़ा गया, दुख छुटा गया वो छुटा गया ॥
तेरी भंग० ॥ १ ॥

होके जीवन मुक्त वो, संसार सागर तर गया।
तन धन प्रिय आदि पदारथ, लुटागया वो लुटागया ॥
तेरी भंग० ॥ २ ॥

महा विकट तेरा है रगडा, हे दयालू! श्री गुरू ॥
तेरे रग में रग गया, भंग उडा गया वो उडा गया ॥
तेरी भग० ॥ ३ ॥

भंग निज बूंटी गुरू की, पीते क्वचित जन सूरमा।
अलमस्त वो रहते सदा, अक्ष कुटा गया वो कुटा गया ॥
तेरी भंग० ॥ ४ ॥

—— o ——

४ ज्ञान रूपी भंग का रंग।

पद राग गज़ल कव्वाली।

कुटिया रगा गई है, तेरी भग की तरग में ॥ टेक ॥

जहां देखू वहाँ तुही तू, तेरी दीख तू कुटी में।
तू बाबा मलग मेरे, हर दम रे यार सग में ॥
कुटिया० ॥ १ ॥

दिल किसी में नहीं था पर मैं हि किसी में था।
जहाँ बाबा के पास थे हम अलमस्त हाक भंग में ॥
कुटिया ॥ २ ॥
लौकीक या अलौकीक, सब मिथ्या है पदारथ।
यो गुरु ज्ञान सत्य मेरे मिल रल गया है भंग में॥
कुटिया० ॥ ३ ॥
रंग खूब पक्का लाग्या, बन खुला सिंह आगया।
ये सब कहता वीर बाकी, तुमको भंगकी उमंग में ॥
कुटिया० ॥ ४ ॥

दोहा।

पक्के रङ्ग में रंग गई, कुटिया भारी भंग।
अब बहुरंगी ना बन सदा रह एक रंग ॥

—— o ——

५ ज्ञान रूपी भंग की तरंग।

कुण्डलिया छन्द।

भंग पिय सुख उपजे ज्ञान ध्यान अरु नाम।
बिना नशा के जो नर सो जन पशु समान।
सो जन पशु समान देख मिथन को खीजे।
ताका पड्या स्वभाव, यत्न कोऊ नहिं रीझै ॥
यह कहे अलमस्त पुकार, गुरु भंग पी भर लोटा।
जो कार भिड़े लोय मार शिर सोटा मोटा।

—— o ——

६ ज्ञान रूपी भंग का आनन्द ।

कुण्डलिया छन्द ।

पण्डितजी की मिर्चकर पण्डिताई की भग ।
सेक शुद्ध कर घोट फिर, छान पान कर अग ॥
छान पान कर अग, बाहर जंगल को जावो ।
पुनि करो असनान, लौट कुटिया पर आवो ॥
यह कहे अलमस्त पुकार, उगे जब विजिया माता ।
हो निश्चिन्त तब बैठि, चिप्र कर दो दो बाता ॥

—— ० ——

७. हरिया की याद ।

प्रश्न ?

दोहाः—पहले देखी चांदनी, पीछे देखा चन्द ।
प्रथम चन्द्र दीखा नहि, है दोनों मे को अन्ध ॥

उत्तर.—

देख चांद की चांदनी, मात मन मे मोद ।
चांद चांदनी युगल का, किस कर होवत बोध ॥१॥
चांद—चांदनी देखता, चांदनी देखत चन्द ।
दीखे भेद-अभेद दोऊ, जैसे मुक्त'रु बन्ध ॥२॥
देख चांदनी चन्द्र की, दुःख सुख होवे अग ।
उदय अस्त सग सग रहे, नहीं सग होय भग ॥३॥

* पद गजल राग कव्वाली *

अन्धेरी दूर करने को, चांदनी होती है भाई ॥ टेक ॥
छिटक रही चादनी सुन्दर, उदय इन्दु के होते ही ।

अंधेरी कूबने न भी चांदनी को जाने नाहीं ॥३॥
अन्धेरो चांदनी दाखा परस्पर व्यभिचारी हैं।
दूधीपुर में भाल पे हर के चमकता चंद्र श्रुति गाई ॥४॥
चंद्र दर्शन का दोफल है लिखा है शास्त्र के मांहीं।
अनित्य तज नित्य फल वांछित दिखाओ (कोई) वीर धीराई।
काम मर्दों का यं ही है, दिखावे करके मर्दाई।
कथे अवधूत नित्यानन्द, चंद्र-पति चंद्र के मांही ॥५॥

दोहा।

लाली ढूंढन मैं गई ले लाली को साथ।
लाली मय लाली भई वासुदेव सुन ! बात ॥१॥

——:o——

८ दरिया की याद।

दोहा।

सन्तन के मुख से सरस अद्भुत मिला शिताब।
नज़र निहाल नज़ारों पिये जहां न हानी लाभ ॥१॥
नज़र लगे जब नज़र से नज़रे नज़र निहाल।
धन्य धन्य उस नज़र को नज़र नज़र महाकाल ॥२॥

* गज़ल कव्वाली *

करी गुरुजी श्रीरण के श्रीरण अपार करते ॥ टेक ॥
गुरुवर्ग गुरु समर्थक हैं वोही काला काल बोध हैं।
वोही ध्याता ध्यान ध्येय हैं नित्यत होकर दीखे करते ॥१॥
वोही दृष्टा दृश्य दर्शन, गुरु शिष्य साक्षी परशान।

प्रमाता प्रमाण परमेय, गुरु मरता गुरू न मरते ॥२॥
नजरों से नजर मिले जब, देखे नजर नजर तब ।
है नजरों में नजर नजर भर, उन नजरों का नजर न टरते ॥३॥
नजरों से नजर बिगडते, नजरों से नजर सुधरते ।
नजरों से नित्यानन्द को, नजरों से ध्यान करते ॥४॥

— o —

९. कुसंग व्यसन निषेध ।

* पद राग सोहनी *

मानले मन मोर चित ! मति सग कुसग को छोड दे ॥ टेक ॥
पान खाना छोड दे, खाना तमाखू छोडदे ।
पीना तमाखू सूघना, इनसे तू मुखडा मोड दे ॥१॥
भंग भी जानो बुरी, काली अति दुस्तर खरी ।
खोटा नशा मदिरा से आदि, इनसे तू यारी तोडदे ॥२॥
चाय भी गांडा पीवे, विद्वान नहिं ताकू छूवे ।
कर ध्यान होवे ज्ञान, घट-अज्ञान का तू फोडदे ॥३॥
यह कहता नित्यानन्द, पूरण ब्रह्म में दिल जोड़दे ।
तब ससार सागर को तरे, मति मान कर से रोडदे ॥४॥

—:o:—

१०. हिन्दु मुसलमान को उपदेश ।

पद राग सोहनी ।

हिन्दु मुसलमीन भैया, काहे को झगडा करो ॥ टेक ॥
ये चार दिन की जिन्दगी, एक दिन फना हो जायगी ।

इसमें खुदा को कर खुशी, नहीं मौत बिन आई मरो ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥

भक्ति कबूली गर्भ में, उसकी खबर तुमको नहीं ।
फस बैठा माया कीच में, तुम काज यह कीनो बुरो ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥

अब दोनों भाई हो संभल के, श्री राम खुदा को जपो ।
कर दूर झगड़ा चित्त से, अब शान्ति निज मति में धरो ॥
हिन्दू० ॥ ३ ॥

यह कहता निस्यानन्द तन मन और धन माया पुरा ॥
सब कर दो अर्पण अब खुदा के तात भव सागर तिरो ॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

११ फ़िकर का फ़ाका करो ।

पद राग मोहनी ।

हिन्दू मुसलमीन भैया फ़िकर का फ़ाका करो ॥ टेक ॥
फ़िकर माया का बुरो, जबही तो तुम जन्मो मरो ।
इस ठगनी न तुमको ठगे, तुम संग रति करके धरो ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥

फ़िकर उसका कीजिये फिर फ़िकर ना करना पड़े ।
विषयों के बश भय भीत होके, काहे को दोनों लरो ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥

इस विषय विष की बेल, इगात हैन कर जिसका नशा ।

फिर मुर्शदों की करके सुहबत, देखिये खोटो खरो।
हिन्दू० ॥ ३ ॥
यह कहेता नित्यानन्द दोऊ, भ्रात चित देकर सुनो।
तब होय अति सुख अघ नास बहुरि ना जन्मो मरो ॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

—— o ——

१२ हम खुदा के नूर हैं।

पद राग सोहनी।

हिन्दू मुसलमीन भैया, हम खुदा के नूर हैं ॥ टेक ॥
शेरखाँ इस तन को जाने, सोई मुसलमीन है।
सोही माता औ पिता के, बीज का मजदूर है ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥
ना में हिन्दू हिन्दु भाई, भाई ! ना मैं मुसलमीन हूं।
सप्त धातू से बना, दुख रूप सो तन धूर है ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥
तुम खुदा के नूर हो, सो हम खुदा के नूर है।
अजन्मा वो महवूब हम, आशक जो थो मन्सूर है ॥
हिन्दू० ॥ ३ ॥
महवूब नित्यानन्द तूं, ये मुर्शदों की सैन है।
वो आप रूप अनेक होके, सब जगह भर पूर है ॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

—— o ——

इसमें सुधा को कर सुखी नहीं मौत बिन मारे मरो ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥
भक्ति कस्तूरी नाभे में उसकी खबर तुमको नहीं।
फस बैठा माया कीच में, तुम काज बहु कीनो बुरो ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥
अब दोनों भाई हो संभल के, श्री राम सुधा को भरो।
कर दूर झगड़ा चित्त से, अब शान्ति निज मति में धरो ॥
हिन्दू० ॥ ३ ॥
यह कहना नित्यानन्द तन मन और धन वारो पुनः ॥
सब कर दो अर्पण प्रभु सुधा के, तात भव सागर तिरो ॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

— ० —

११ फ़िकर का फ़ाका करो।

पद राग सोहनी।

हिन्दू मुसलमीन भैया फ़िकर का फ़ाका करो ॥ टेक ॥
फ़िकर माया को बुरो नबहो तो तुम जन्मो मरो।
इस ठगनी ने तुमको ठगो तुम अंग रति करके धरो ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥
फ़िकर उसका कीजिये फिर फ़िकर ना करना पड़े।
विषयों के पद मय भोग होय काहे का होनो मरो ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥
इस विषय विष की बेल हटाते प्रभु कर जिसका मज़ा।

फिर मुर्शदों की करके सुहबत, देखिये खोटो खरो।
हिन्दू० ॥ ३ ॥

यह कहेता नित्यानन्द दोऊ, भ्रात चित देकर सुनो।
तब होय अति सुख अज्ञ नास बहुरि ना जन्मो मरो॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

—— o ——

१२ हम खुदा के नूर हैं।

पद राग सोहनी।

हिन्दू मुसलमीन भैया, हम खुदा के नूर हैं ॥ टेक ॥
शेरखाँ इस तन को जाने, सोई मुसलमीन है।
सोही माता औ पिता के, बीज का मजदूर है॥
हिन्दू० ॥ १ ॥

ना में हिन्दू हिन्दु भाई, भाई ! ना मैं मुसलमीन हूं।
सप्त धातू से बना, दुख रूप सो तन धूर है॥
हिन्दू० ॥ २ ॥

तुम खुदा के नूर हो, सो हम खुदा के नूर हैं।
अजन्मा वो महबूब हम, आशक जो वो मन्सूर है॥
हिन्दू० ॥ ३ ॥

महबूब नित्यानन्द तूं, ये मुर्शदों की सैन है।
वो आप रूप अनेक होके, सब जगह भर पूर है॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

—— o ——

इसमें खुदा को कर खुशी, जहाँ मौत बिन आई मरो ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥

मनि कबूली गर्भ में उसकी खबर तुमको नहीं ।
फस बैठा माया बीच में तुम काज बहु कीनो बुरो ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥

अब दोनों भाई हो संभल के, श्री राम खुदा को भजो ।
कर दूर झगड़ा चित्त का, अब शान्ति निज मति में धरो ॥
हिन्दू० ॥ ३ ॥

यह कहना निजानन्द तन मन और धन वारो तुम ॥
सब कर दो अर्पण अब खुदा के, तार भव सागर तिरो ॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

— ० —

११ फिकर का फाका करो ।

पद राग सोहनी ।

हिन्दू मुसलमीन भैया फिकर का फाका करो ॥ टेक ॥
फिकर माया को बुरो तबही तो तुम जन्मो मरो ।
इस ठगनी ने तुमको ठगा तुम संग इनि करक करो ॥
हिन्दू० ॥ १ ॥

फिकर उसका कीजिये फिर फिकर ना करना पड़े ।
विषयों के वश भय भीत होके, काहे को रोनो लगो ॥
हिन्दू० ॥ २ ॥

इस विषय विष की बेल लगते देख कर तिसको तजो ।

फिर मुर्शदों की करके सुहबत, देखिये खोटो खरो।
हिन्दू० ॥ ३ ॥
यह कहेता नित्यानन्द दोऊ, भ्रात चित देकर सुनो।
तब होय अति सुख अज्ञ नास बहुरि ना जन्मो मरो॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

—— ० ——

१२ हम खुदा के नूर हैं।

पद राग सोहनी।

हिन्दू मुसलमीन भैया, हम खुदा के नूर हैं ॥ टेक ॥
शेरखाँ इस तन को जाने, सोई मुसलमीन है।
सोही माता औ पिता के, बीज का मजदूर है॥
हिन्दू० ॥ १ ॥
ना मे हिन्दू हिन्दु भाई, भाई! ना मैं मुसलमीन हूं।
सप्त धातृ से बना, दुख रूप सो तन धूर है॥
हिन्दू० ॥ २ ॥
तुम खुदा के नूर हो, सो हम खुदा के नूर हे।
अजन्मा वो महबूब हम, आशक जो वो मन्सूर है॥
हिन्दू० ॥ ३ ॥
महबूब नित्यानन्द तूं, ये मुर्शदों की सैन हे।
वो आप रूप अनेक होके, सब जगह भर पूर हे॥
हिन्दू० ॥ ४ ॥

—— ० ——

१३ माता रूपी कुटिया ।

पद राग कालिंगड़ा ।

मोमन कुटिया लगी मुझ प्यारी ॥ टेक ॥
कुटिया में केवल नित्यानन्द यह भी गुरु बतलारी ॥
मो मन० ॥ १ ॥
कुटिया गुरु प्रगट एक सी है लखि निरखो नर नारी ॥
मो मन० ॥ २ ॥
कुटिया देखी चातुरि मो मन में, मोह भयो अति भारी ॥
मो मन० ॥ ३ ॥
कुटिया का अधिपति नित्यानन्द, बाल ब्याह सम नारी ॥
मो मन० ॥ ४ ॥

—— ० ——

१४ मंगल होय हमेश ।

पद राग होली बसन्त ।

मंगल होत हमेश, रैन दिन गुरु कुटी में सन्तों !
मंगल होत हमेश ॥ टेक ॥
गुरु कुटी में गुरु आतमा, जहाँ नहिं पंच कलेश !
मंगल मूरति गुरु कुटी में केशव गुरु महेश ॥
रैन दिन० ॥ १ ॥
पता चाल अगाध नम्र स्वतन्त्र आत्मा देश ।
मल विक्षेप दोष नहिं जिहि में जहाँ न तम का लेश ॥
रैन दिन० ॥ २ ॥

ज्योति वेद षट कहत प्रणामी जिमि मणि जान फणेश।
गुप्त अखंड जुपे तहॉं ज्योति, करे कहा तहॉं गेश॥
रैन दिन०॥ ३॥

कोट तहॉं चौमार नीर को, सन्मुख रहत दिनेश।
गुप्तेश्वर केशव नित्यानन्द सतत जपतु नरेश॥
रैन दिन०॥ ४॥

—— ० ——

१५ गुदड़ी खूब बनी।

प३ राग लावणी।

गोदडी खूब बनी भाई।
वासुदेव भगवान बना के नीचे बिछाई॥ टेक॥
ओं शीष पर लगे मॉंडणे, बुद्धि घभराई।
अकल नहीं कछु काम दई, तब खोल के फिंकाई॥
गोदड़ी०॥ १॥

तिया किया है बहुरि ज्ञात ते तिस में समाई।
दोय तीन की गम्य नहीं प्रत्यक्ष हि दिखलाई॥
गोदड़ी०॥ २॥

गुप्त रूप प्रत्यक्ष एक, दृष्टि गोचर आई।
श्वेत रक्त वर्णों ते न्यारी सब में समाई॥
गोदडी॥ ३॥

निरख नयन ते सत भक्त मन में हरषाई।
नित्यानन्द मय जान गोदडी शान्ति मति गाई॥
गोदडी०॥ ४॥

१७ पशुवत प्राणी को उपदेश ।

पद राग लावणी ।

सुन लंगडी कुत्ति,
यहाँ पर मत आओ जाओ गाम मे ॥ टेक ॥

तूं लंगडी मोकू नकटी दीखे,
नहीं है तेरे नाक ।
जूता उडा बहुत पडया,
तदपि नहिं टिके मुकाम में ॥ १ ॥

तूं लंगडी है बडो बावली,
क्यों करती है आश ।
आश करो कामी जीवन की,
कामी काग रलि वाम में ॥ २ ॥

तू लगडी है बड़ी खोडली,
भटके दिन अरु रात ।
सन्त महात्मा लगा समाधि,
मग्न रहे प्रभु नाम में ॥ ३ ॥

कहत नित्यानन्द सुनरी लगडी ।
मान हमारी बात ॥
निश कसर बस्ती मे रहो तुम,
रमज करो तहाँ धाम में ॥ ४ ॥

—— o ——

१८ कर्कशा रखा पाने पड़ी।

दादरा।

अजम की बिगड़ी पाले पड़ी।
करकशा रखा पान पड़ी ॥ टेक ॥

साड़ी भी घर में, लँगो भी घर में।
कम्बल कू ओढ़के पीयर चली ॥ १ ॥ अजम की० ॥
गेहूँ भी घर में चावल भी घर में।
सरसों को लेके भु भावन चली ॥ २ ॥ अजम की० ॥
फावड़ी भी घर में खुरपी भी घर में।
मूसल को लेके, नीदन चली ॥ ३ ॥ अजम की० ॥
बिन समझे, व्यभिचारी से रखा।
भवसागर म, डूबी पड़ी ॥ ४ ॥ अजम की० ॥
सब कुछ साधन है घर माहीं।
ऐसी लो सम्मुख लागी खड़ी ॥ ५ ॥ अजम की० ॥

---

१९ कार्य कारण की एकता।

कुण्डलिया छन्द।

वोही वैद्य वोही औषधी वोही रोग है तास।
करै निवृत्ति रोग की तोऊ रोग नहिं जात ॥
तोऊ रोग नहिं जात दोष तीनों में किसका।
वैद्य औषधी रोग शिष्य तीनों है तिसका ॥

कहे निज नित्यानन्द, निरोग जग में योगी ।
दिन मे सो सो वार, भोग के रोवे भोगी ॥

—— o ——

२० काल प्रभाव ।

कुण्डलिया छन्द ।

छोटे मोटे सब कहें, काटत है हम काल ।
नाश काल सबको करे, वृद्ध तरुण अरु बाल ॥
वृद्ध तरुण अरु बाल, काल के सभी चबीने ।
कोउक बचता शूर, भवन जो अपना चीने ॥
ये कहता नित्यानन्द, गुप्त पद जो कोउ जाने ।
तासू डर पत काल, देव आदी भय माने ॥

—— o ——

२१ जोगी भोगी रहस्य ।

जोगी भोगी से कहे, मैं तेरा शिरताज ।
मो विन तेरा एक भी, भोगी सरे न काज ॥
भोगी सरे न काज, लाज तुझको नहिं आवे ।
भोगे भोग अपार रसातल को तू जावे ॥
ये कहे अलमस्त पुकार, जोगी से भोगी छोटा ।
छोटा मोटा बन, वचन कहे मुख से खोटा ॥

—— o ——

१८ कर्कशा रंडा पाने पड़ी।

दादरा।

जनम की बिगड़ी पाने पड़ी।
करकशा रंडा पाने पड़ी॥ टेक॥

साड़ी भी घर में, लँगो भी घर में।
कम्बल कू ओढ़के पीयर चली॥ १॥ जनम की०॥
गेहूँ भी घर में, चावल भी घर में।
सरसों को लेके मु आवन चली॥ २॥ जनम की०॥
कमबड़ी भी घर में खुरपी भी घर में।
मूसल को लेके, नींदन चली॥ ३॥ जनम की०॥
बिन समझे, व्यभिचारी स रंडा।
भवसागर में डूबी पड़ी॥ ४॥ जनम की०॥
सब कुछ साधन है घर माहीं।
दूजी तो सम्मुख मागी बड़ी॥ ५॥ जनम की०॥

---

१६ कार्य कारण की एकता।

कुण्डलिया छन्द।

पानी पथ थोड़ी औषधी, याही राग है ताम।
करे निवृत्ति रोग की तोऊ नाग नाह माम॥
ताऊ रोग नहिं जात दोष तीनों में किसका।
पथ औषधी रोग शिष्य तीनों है तिसका॥

* कुण्डलिया छुन्द *

मन बुद्धि अहङ्कार चित्त, पुनः दश इन्द्रिय जाण।
शब्दादि भोगे विषय, सकल जाण तू प्राण॥
सकल जाण तू प्राण, क्रिया फिर कैसे होवे।
कोई हंसता मित्र, कोई शिर धुन धुन रोवे॥
कहे निज निन्यानन्द, गुरू तुझको समझावे।
तब तेरा कुल भरम, शीघ्रही जब जल जावे॥

—— ० ——

२५. आखिर का दिन (खम्भात)।

ॐ

दोहा।

गुरू गये गुजरात से, गुरूवार को भोर।
गुरूवार को पूज्य गुरु, पूजे कर शिर जोर॥१॥

* पद गजल *

आखिर का दिन आकर के कहे, खभात चलो, खभात चलो।
मत नार चलो, पंडोली चलो, खंभात चलो, खभात चलो॥
॥ टेक॥
यह बाल अवस्था पढ़ने की, घूमन में इसको मत खोवो।
यह शीघ्रही करे उद्धार तेरा, जा करके पढ़ो जाकरके पढो॥
खभात चलो, खभात चलो॥२॥
गुरु मात पिता ईश्वर की सदा, पूजन सुमरन सेवादि करो।

गुरुवार को पूज्य गुरूवर का, पूजन दरशन करके करना।
दरशन बिन पूजन नाय बने, परमाद तजो, परमाद तजो ॥
आखिर का दिन० ॥१॥
गुरु पूज्य चराचर विश्वपति, दरशन करतेहि करदे मुक्ति।
बिन दरशन नहिं होय मुक्ति, परमाद तजो, परमाद तजो ॥
आखिर का दिन० ॥२॥
सतसग करो, चाहे कूप पड़ो, चाहे दान करो, चाहे भक्त बनो।
दरशन करना, दरशन करना, परमाद तजो, परमाद तजो ॥
आखिर का दिन० ॥३॥
अविनाशी है आतम ब्रह्म अचल, गुरूणांगुरुः श्रुति चित्त कहे।
जड़जीव की जड़ में होय रति, परमाद तजो, परमाद तजो ॥
आखिर का दिन० ॥४॥

दोहा।

जड़ चेतन छिपते नहीं, देख दीखते साफ।
विद्यमान नित ईश स्वयं, जपे न जाप अजाप ॥

— 0 —

२७. आखिर का दिन (पिटलाद)।

\# गजल कव्वाली \#

आखिर का दिन आकरके कहे, पिटलाद चलो, गुजरात चलो।
मध्यदेश मालवा माहिं चलो, पिटलाद चलो, गुजरात चलो ॥
ग्रन्थी ग्रन्थों के पढ़ने से, बिन काटे आपहि आप कटे।
दोई का पडदा दिल पे न रहे, हकार तजो, हकार तजो ॥
आखिर का दिन० ॥१॥

(२)

रे! पानी में बगला हम देखा, सो बगला है अति अनूप।
अमर पुरुष पोढ़े बगले में, वाकू लागे रति न धूप॥
अधा अमर पुरुष को देखे, अंधा अमरा एक स्वरूप।
अमर देव का दर्शन करके, भयो अध भूपों का भूप॥

(३)

मुरदा पण्डित बन कर बैठा, मुरदा करता वाद विवाद।
रे मुर्दा भोजन करत विधि से, मुर्दा सब का लेत सवाद॥
मुर्दा तीन काल की जानत, जे लख मुर्दे की गति अगाध।
मुर्दा उडा बैठ पर्वत पे, अपने कुल कटुम्ब को लाद॥

(४)

अमली ध्यान धरे श्री हरि को, गृहस्थी कथे ज्ञान दिन रात।
त्यागी सुख मय देखा सन्तो, भोग भोगता भग भग बाथ॥
मूरख पंडित को समझावे, कन्या के जनमें सुत सात।
काना हसे देख अचरज को, ठगनी ठग दो मारे लात॥

(५)

कान कहे हित कारक वाणी, मुख निज सुने कान की बात।
पांव चले नहिं एक पांवडा, नयन धावता दीखत तात॥
गुदा खूब सूंघत पुष्पन को, घ्राण मेल त्यागे दिन रात।
रसना का रस चूसत सतो, उलटा सुलटा देख दिखात॥

पे जिसकी वस्तु जिसकी समझो, नहिं रकम पराई में राग करो
वैराग करो, विराग करो, हुकार तजो हुकार तजो ॥

आखिर का दिन० ॥२॥

गुरुदेव करे तब बाघ भगा, निष्कपटी जिज्ञासु की शुद्धि करे।
यह उत्तम वृत्ति धारण करना हुकार तजो, हुकार तजो ॥

आखिर का दिन० ॥३॥

ज्ञानी नहिं वाद विवाद करे, एक वाद विवाद अज्ञानी करे।
कर दूर घमंड घमंडी सुणो हुंकार तजो हुकार तजो ॥

आखिर का दिन० ॥४॥

ॐ तत्सत्।

—— ० ——

[१२] विपर्यय छन्द।

—— ० ——

१ विपर्यय छन्द।

रे! पानी में घंगला हम देखा पानी घंगला एकम एक।
अन्धे से अन्धा कहे वाणी अब कर विवेक अन्धा तूं देख ॥
केवल अमर देव घंगले में देख दीखता एक अनेक।
अमर देव से मिलने को भी आरम्भ करे अमंगल भेख ॥

(१०)

पुरुष एक चिता मध्य बैठा, चिता जलत वो देखत आप।
दाग्या राख करी हिल मिल के, चिता पुरुष की लगी न ताप॥
कर वैराग्य बैठे सब दाग्या, कुटुम्ब करे अतिशय सन्ताप।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, श्री गुरु पन्थ बतावत साफ॥

(११)

पूजन करत पुजारी जी की, ठाकुर जी महाराज हमेश।
एक देशी बहु पुजे पुजावे, सब देशी मे मल नहिं लेश॥
रति एक नहिं पुजे पुजावे, ठाकुर जी महाराज निरेश।
नित्यानन्द कहे गुरु घर का, विकट पंथ शठ करे कलेश॥

(१२)

झगडा करै परस्पर पडा, खावत खूब मन्दिर में माल।
तार नहीं तन ऊपर दीखे, लडत पुजारी जिमि कंगाल॥
ठाकुरजी जिनको नहिं दीखे ठोकत ताल बजावत गाल।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, गुरू बिना किमि जानत हाल॥

(१३)

मछली एक कीर को पकड्यो, कीर रोवता भर भर नैन।
मछली कहत कीर मैं तोकू, खाऊं मार तब होवत चैन॥
तू अरे कीर शत्रु सुन मेरा, मेरो कुटुम्ब मार्यो दिन रैन।
रे नहिं कीर! जिन्दा अब छोडूं, हसे नित्यानन्द सुन के बैन॥

(६)

बांझ भैंस को धरगायो सन्तों, भैंस एक दूण भी नाहिं खाय ।
दूध दुवे हांडी भर भर के, सो बन्ध्या पुत्र देखन को आय ॥
दूध पिये अवधूत ग्यासिया भैंस पदमनी मंगल गाय ।
पाड़ी एक देख अचरज की नित्यानन्द मन मन हरषाय ॥

(७)

अब कीड़ी चली सासरे सन्तों करके सोह सोला शृङ्गार ।
मीतम के पो गई भवन में खागई मिल पीतम को मार ॥
अमर भया चूड़ा तब वाको व्यभिचारी करती व्यभिचार ।
यार अनेक राखती सग में, नित्यानन्द सच कहता यार ॥

(८)

बरषा नहीं बरसती सन्तों ! झाड़ पहाड़ डूबे सब भांप ।
सूख गई गंगा जमुनादिक सब समुद्र सुख भये अपार ॥
सिंह एक बन में हम देखा वो अजा सिंहकी करी शिकार ।
पती भये विस्मित बन में सो देखे मौज नित्यानन्द यार ॥

(९)

बरषा नहीं बरसती सन्तों चिड़ी प्रेम से मल मल न्हाय ।
चिड़ी दूध गऊ का नित पीवे ग्वाल बाल कहता सत् जान ॥
चिड़ी गऊको निशि दिन राखी गऊ चिड़िया का राखत मान ।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी ज्ञानामृत रस कर तूं पान ॥

(१८)

माल तोलता निशीदन प्राणी, कर से पक्क तुले महिं बाल।
रोगी मौज करे दिल भर के, रहत निरोगी दुखी बेहाल॥
सत्य कहे वो पडे नरक में, असत्यवादी होवे महिपाल।
सत्गुरु का कोई होय जमूरा, नित्यानन्द कुल जानत हाल॥

(१९)

पिण्ड ब्रह्माण्ड जल रहे सन्तो, पवन बहुत चाली विपरीत।
ये स्थावर जगम सब प्राणी, दोऊ तपत है लागत शीत॥
तपत मौज से हसे प्रेम से, गावे रुचि २ शादी का गीत।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, जरख चडे डाकन पे मीत॥

(२०)

भूडी रांड परण के लाया, वन्ध्या पुत्र करता अभिमान।
श्वान श्वाननी मंगल गावहि, ते चील तोडनी नभ मे तान॥
नाग चीलको खागयो सुख से, उड्यो बैठ कर नाग विमान।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, श्री गुरु बिन होवे नहिं भान॥

(२१)

गर्दभ ज्ञान गोष्ठी करते, तीन लोक को तृणवत् त्याग।
रागी अति त्यागी बहु दीखत, सोवत जागत सोवत जाग॥
वेद वेदान्त सुमृति सुरति, पढ़े पढ़ावे रति न राग।
नित्यानद कहे गुरु घरको, दे गुरु भेद गुरु ढिग भाग॥

(१४)

फूला अमत करे नहिं आग, भो माता से लड़की कहे माग ।
रोटी करींहि हुयो पुनि राग है सुन्दर राग बिगाड़यो काम ॥
माता कहे लड़की सब त्याग तिसमें ललना करो न राग ।
कहता निस्यानन्द अब आग बैठा शाखि पर वाहन माग ॥

(१५)

इंजिन इंजिनियर को हांके, इंजिनेर से चलत न पेल ।
इंजिनियर इंजिन के तावे यो इंजिन देत हाथ से ठेल ॥
धकड़ भकड़ से इंजिनर को इंजिन हरि उठ देव धकेल ।
निस्यानन्द कहत सुन ज्ञानी इनके सिर पर बैठो बैल ॥

(१६)

सैन इंजिन सुन प्यारे, मेरे पर तू करत गुमान ।
इंजिन हसे सैन शरमावे इंजिन सैन दोऊ बिन काम ॥
वाद विवाद कर बिन मूं से भये परस्पर सब हैरान ।
निस्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, गरुड़ शोध हरि बैठा आन ॥

(१७)

एक निरंजन बन में सरसों, गिपाल सिंह का पकड़या कान ।
सिंह कहे सुं गिपाल सुनमा मैं बलहीन सुं है बलवान ॥
यो सिंह हाथ गिपाल न छोड़ कंपायत सिंह का अति प्राण ।
निस्यानन्द कहत सुन ज्ञानी हस चकयो ब्रह्मा पर ध्यान ॥

(१८)

माल तोलता निशीदन प्राणी, कर से पक तुले महिं वाल।
रोगी मौज करे दिल भर के, रहत निरोगी दुखी वेहाल॥
सत्य कहे वो पड़े नरक में, असत्यवादी होवे महिपाल।
सत्गुरु का कोई होय जमूरा, नित्यानन्द कुल जानत हाल॥

(१६)

पिण्ड ब्रह्माण्ड जल रहे सन्तो, पवन बहुत चाली विपरीत।
ये स्थावर जगम सब प्राणी, दोऊ तपत है लागत शीत॥
तपत मौज से हसे प्रेम से, गावे रुचि २ शादी का गीत।
नित्यानन्द कहत सुन ज्ञानी, जरख चडे डाकन पे मीत॥

(२०)

भूडी रांड परण के लाया, वन्ध्या पुत्र करता अभिमान।
श्वान श्वाननी मगल गावहि, ले चील तोड़नी नभ मे तान॥
नाग चीलको खागयो सुख से, उड्यो बैठ कर नाग विमान।
नित्यानन्द कहे गुरु घर को, श्री गुरु बिन होवे नहिं भान॥

(२१)

गर्दभ ज्ञान गोष्ठी करते, तीन लोक को तृणवत् त्याग।
रागी अति त्यागी बहु दीखत, सोवत जागत सोवत जाग॥
वेद वेदान्त सुमृति सुरति, पढ़े पढावे रति न राग।
नित्यानंद कहे गुरु घरको, दे गुरु भेद गुरु ढिग भाग॥

(२६)

हसती लीद रोवत है ऊंट, तस्कर ऊंट लिया वित लूट।
शियाल मृगादि पकड्यो ऊंट, बान्ध्यो ऊंट पकडकर खूंट॥
ऊंट देख समय गयो छूट, किडी धाय लठ लेकर कूट।
नित्यानन्द पकड कर भूंट, डाकन बिल्ली गिल बैठी ऊंट॥

(२७)

तस्कर शेठ! शेठ भयो चोर, ये अचरज देखो कहुं ओर।
हाट वाट पर करता जोर, निर्भय हुकुम करे मू मोर॥
ते नहिं मानत करता शोर, वो लुटे माल टाल तिथि भोर।
नित्यानन्द कहत भयो भोर, वस्ती मांहि मच्यो वहु शोर॥

(२८)

मछली पी गई सिन्धु को नीर, तोऊन व्यापी वो किञ्चित पीर।
यह लीला अद्भुत मतिधीर, मच्छी पकड जीम गयो कीर॥
शत्रू वसत निज सिंधु तीर, मिले राम गुरु अति गंभीर।
करो श्रीराम रावण की लीर, गर्जे हसे कूदत महावीर॥

(२९)

एक चोर घर में धस आयो, ताने पुनि वहु शोर मचायो।
दुष्ट रैन दिन लूटत माल, कोतवाल सब जानत हाल॥
चोर खाय रुच रुच के माल, गुप्त प्रगट लूटे तत्काल।
कोतवाल नृप काल हि काल, नित्यानन्द एक देवे न वाल॥

(३४)

मोहन को मोहन नहीं देखे, मोहन के मोहन रहे पास।
मोहन से मोहन मिलने को, मोहन मोहन करे हुलास॥
मोहन को मोहन ना मिलता, मोहन मोहन रहे उदास।
मोहन मोहन की कुल लीला, मोहन मोहन स्वय प्रकाश॥

(३५)

मोहन ध्यान धरे मोहन का, मोहन स्वामि मोहन दास।
मोहन का मोहन सुन प्यारे, मोहन मोहन होय न नास॥
मोहन मोहन मौन लगावे, मोहन को मोहन होय भास।
मोहन से मोह तूं उरता, मोहन मोहन कहता खास॥

(३६)

पद राग कल्याण।

तरुण भयो तत्काल,
सपूत सुत तरुण भयो तत्काल॥ टेक॥
ता सुत को उर क्षोभ न व्यापो भयो अति हर्ष विशाल॥१॥
सुत की माता मंगल गावे सखियन सग दे ताल॥२॥
काल कलेवो चटपट कीनो तब धन भयो मैं निहाल॥३॥
श्रीसत् गुरु सत् सुख नित्यानन्द निज काप दियो मोह जाल॥४॥

(३७)

विपर्यय दोहा।

मोहिनी मोहन को करे, मंगल अति हर्षाय।
मोहन मोहिनी देव को, दर्शन कर अक्ष जाय॥१॥

* ॐ *

दो शब्द

प० पू० अवधूत महाप्रभु श्री १०८ श्री नित्यानन्द जी महाराज के मुखारविन्द से प्रकाशित यह "श्रीरामविनोद" प्रथम "पद्मनाभ प्रिण्टिङ्ग वर्क्स पेटलाद" से हिन्दी अक्षरों में प्रकाशित हुआ था। पुनः गुजराती लिपि मे भी प्रकाशित हुवा। वह सब प्रतियां बहुत शीघ्र दुष्प्राप्य हो जाने से श्री महाप्रभु की आज्ञा से "नित्यानन्द विलास" के साथ संयुक्त कर इसे प्रकाशित किया जारहा है।

यद्यपि इस आवृत्ति के प्रूफ संशोधकों के सामने प्राचीन प्रकाशित प्रति आदर्श रूप से है, तथापि—प्रारम्भ के श्लोकों के अतिरिक्ति कहीं कहीं ह्रस्व दीर्घ का विचार कर जैसा का तैसा रहने दिया गया है। कारण—महा पुरुषों की शैली अगम्य अर्थ की बोधक होती है। ॐ।

—

* ॐ तत्सत् गुरुपरमात्मने नमः *

अथ पक्षपात रहित

* श्री रामविनोद *

॥ प्रारम्भ ॥

❀ मङ्गलाचरण ❀

श्लोक

गजानन भूतगणादि सेवितं, कपित्थजवूफलचारुभक्षणम् ।
उमासुत शोकविनाशकारकं नमामि विघ्नेश्वरपादपंकजम् ॥१॥

श्लोक

नीलांवरं श्यामलकोमलांगम् ।
सीतासमारोपित वामभागम् ॥
पाणौ महाशायकचारुचापम् ।
नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥२॥

श्लोक

अखण्डानंदबोधाय शिष्यसंतापहारिणे ।
सच्चिदानंदरूपाय श्रीरामगुरवे नमः ॥३॥

दोहा

रामनाम के वरण दो, एक रकार मकार ।
ररा सब में रम रह्यो, तू ममा में ही पुकार ॥१॥

दोहा

राम मया सद्गुरु दया साधुसंग जब होय ।
मन तब मायी आसे कछु भयो विष रस सोय ॥-॥

दोहा

राम भजन करता नहिं संतन गावना नाम ।
जो मुख से वसदा जपेहु मरे न एकहु काम ॥१॥

कवित्त

आगे राम पीछे राम दायें राम बाँये राम ।
ऊर्ध्व राम अध राम रामराम को पसारो है ॥१॥
बैठे राम उठे राम सोवे राम जागे राम ।
खाबो खावत पीवत कछु राम बिन न न्यारो है ॥२॥
देख राम दब राम बोले राम डोले राम ।
ध्यान राम ज्ञान राम राम राम म्हारो थारो है ॥ ॥
हममी राम तुममी राम येमी राम येमी राम ।
भीतर अरु बाहर सब राम को पसारो है ॥४॥

दोहा

रामदास मुख से जो कहे पुनि बन्धो नाम को दास ।
राम श्याम घट में बसेहु तदपि न रहे उदास ॥४॥

दोहा

राम नाम दूजा तजे भजे प्रेम से राम ।
जो सब को पैदा करे उससे राखो काम ॥५॥

दोहा

काम महा बलवान है ते दूजा जानो चाम।
लख तीजा शत्रु द्रव्य है याते भज श्रीराम ॥६॥

दोहा

महाघोर यह नर्क में सब को पटके अग।
तू याते भज श्रीराम को सब तजि खोटा सग ॥७॥

दोहा

जीत होय शीघ्र ही तब तू बचे नर्क से मीत।
श्रीरघुपति के ध्यान से तुरत शत्रु ले जीत ॥८॥

दोहा

जो आया सोही जायगा अपने आप मुकाम।
केवल सीताराम को है निज निश्चल धाम ॥९॥

दोहा

ते रोम रोम में रम रह्यो श्रीराम सच्चिदानद।
इत उत पामर ढूढता है छुनां दृष्टि से अध ॥१०॥

दोहा

श्रीराम बिना सूनी मढ़ी रे देख चाम की मीत।
चेत चेतावे सतगुरु तू जीन सके तो जीत ॥११॥

दोहा

अल्प मति मोरी अति अल्प प्रश्नऽखिल जाण।
कौन युक्ति कर होत है श्रीरघुपति को ध्यान ॥१२॥

दोहा

ये कर से भजता कुरुआ मुख से भजता काग।
सुरस्याम महामुनी करे श्रीरघुपति को जाग ॥१३॥

दोहा

ये काम चौन विष भोग को दे सबही मोगते तात।
देवदु अमोलक श्वास तू श्रीराम भजे बिन जात ॥१४॥

दोहा

कर मुख में सबही भजे रे श्वासा भजे न कोय।
पुनि श्वासा तज हरि भजे रमस्याम इमि होय ॥१५॥

दोहा

सुखी दुखी दोउ जगत में भासी सबही ठौर।
यो दुखी राम को ताहू को सुखी राम को मोर ॥१६॥

दोहा

लख सुखी बनाया राम ने मन करके देखो गोर।
प्रभु की सुध जिसको नहिं रह गया कोरमकोर ॥१७॥

दोहा

धन्य धन्य दुखिया तुझे वे धन्य तीर पितु मात।
तू किया नेह श्रीराम से सुखिया गड़ । मरकाल ॥१८॥

दोहा

तू सुखिया मोटा बस रहा अपने मन से श्रंग।
राम भजन करता नहिं वे लाग्या विषिये रंग ॥१९॥

दोहा

तू मानस देही पायके राम भजे नहिं तात।
जाय पडे भव चक्र में ते सहे अघोरी लात ॥२०॥

दोहा

सुखिया सुख में सुमरिये पुनि दोय घडी श्रीराम।
जिस कर तू सुखिया भयो तेही तज भजता वाम ॥२१॥

दोहा

जिसने सुंदर तन दियो वो दीनो सुदर संग।
जप सुंदर सियाराम को कह्यो मान मम अग ॥२२॥

दोहा

दुखी होय तब सब भजे श्रीसियाराम को जे तात।
वो सुमरे सुमरन नहिं ते सुमरन दंभ कहात ॥२३॥

दोहा

निष्कपटी होवे तब मिले श्रीराम तत्काल।
तेरे हृदय बीच्च मे कपट कूटको साल ॥२४॥

दोहा

दूर नहीं नजदीक है सियाराम रघुवीर।
ज्वर मे कडवी लागती वो सब को प्यारे खीर ॥२५॥

दोहा

रोग नहीं मुज में रति मैं हूँ अति निरोग।
ध्यान तज्यो सियाराम को भोगन लाग्यो भोग ॥२६॥

दोहा

भोग त्याग मुझ को लग्यो त भोग पाप को मूल ।
थाप्यो नहिं सियाराम का कहि विधि भयू सूल ॥२७॥

दोहा

यही रोग मुझ को लग्यो भौर नहीं कोउ रोग ।
धूटी दीपा सियाराम की श्रीगुरु करो निरोग ॥२८॥

दोहा

जे भोगी से जोगी भये सुन भागी मेरी बात ।
त्याग भाग संसार का सियाराम मज तात ॥२९॥

दोहा

राम भजन करना सदा फिर करना साधु संग ।
तब पीने को मुझ को मिले वे प्याला मर मर भंग ॥३०॥

दोहा

रे राग रहे नहिं देहि में तब कंचन काया होय ।
आप सपोहु सियाराम को मन उपद्रव द कोय ॥३१॥

दोहा

मंग भवानी सब हरे मूल सहित अज्ञान ।
गुरु राम पद में मिले वे देहि राम को जान ॥३२॥

दोहा

राम रतन तुमको मिले तब हुए दारिद्र होय ।
फिर निश्चित रहने सदा फिर कबहु नाये सोय ॥३३॥

दोहा

वे कर्ण घ्राण चक्षु त्वचा रसना करत पुकार।
तू बिना ध्यान रघुवीर के कबहु न होय उद्धार ॥३४॥

दोहा

राम भजन सबसे बडो रे ज्या से बडो न कोय।
भजन करेहु जे प्रेम से मनोकाम सिद्ध होय ॥३५॥

दोहा

पुनि स्वाद तजे संसार का राम भजन जब होय।
बिना भजन भगवान के कबहु न निर्भय सोय ॥३६॥

दोहा

सपनेहु में भी सुख नहीं रे जाग्रत में किमि होय।
राम भजन जे जन तजे शिर धुन धुन वो रोय ॥३७॥

दोहा

राम भजन जे जन करे उनको है धन्य भाग।
रे प्रेम लग्यो भगवान में रति न जग में राग ॥३८॥

दोहा

देह गले अभिमान तब राम भजन जब होय।
वे देह दृष्टि छूटेहु बिना तू बहे मूढ़ बिन तोय ॥३९॥

दोहा

श्रीराम अमर बूटी खरी जे जन कीनी वो पान।
सुनो सकल नर नारी वे जिनके भये कल्याण ॥४०॥

दोहा

और बूटी जग की सकल सबही माया समान।
ध अमर राम बूटी लगी सुजन सुनो दे ध्यान ॥४१॥

दोहा

सत बूटी मिलना कठिन मुश्किल करना पान।
श्रीराम कृपा होवे जब सरे सकल सब काम ॥४२॥

दोहा

अमर बूटी जिसको मिले श्रीगुरु कृपा जब होय।
पुनि राम गुरु प्यारा नहीं मूरख समझेहु सोय ॥४३॥

दोहा

सत्य सत्य पुनि सत्य कहु सत्य राम रघुबीर।
अमर बूटी संतत पीये जग में सज्जन धीर ॥४४॥

दोहा

श्री राम सच्चिदानंद को दे सज्जन धरते ध्यान।
दुर्जन नहि सुमरे रति तु मान चाहे सम्मान ॥४५॥

दोहा

शठ मान बड़ाई में फसे दुर्जन जग में जीव।
केहि विध सुमरे राम को श्री भक्त राम का शीव ॥४६॥

दोहा

श्रीशिव बराबर राम का नहीं भक्त कोउ और।
कश्चित भक्त कोउ जगत में है धनी कोटमकोर ॥४७॥

दोहा

तिलक भाल शिरपै जटा वा गले में माला डाल ।
श्री सियाराम सुमर्या नहीं वृथा धर्यो शिर भार ॥४८॥

दोहा

सुमरन पैसा को करेहु भजे न मुख से राम ।
स्वांग बनाया संत का ते तजे मात पितु धाम ॥४९॥

दोहा

अष्ट प्रहर चौसठ घडी जे रहे भजन में लीन ।
राम तजे नहिं जाणि जिंमि जेहि विधि जल की मीन ॥५०॥

दोहा

लख मच्छि जे त्यागे नीर को तुरत प्राण दे त्याग ।
यहि विधि संत शिरोमणी भजे राम भख साग ॥५१॥

दोहा

सत भेख जग में धर्योहु पुनि खाते फिरते माल ।
श्री सियाराम सुमर्या नहीं रह गये मूढ कगाल ॥५२॥

दोहा

माल मिले झांकु भगेहु जैसे भगते श्वान ।
राम भजन में आलसी निर्लज सत वे जान ॥५३॥

दोहा

जिनके चित चिंता घणी रति न चित निश्चिन्त ।
प्रेम नहीं रति राम में है ऐसे सन्त अनन्त ॥५४॥

दोहा

ऊपर स्वांग बनावते भीतर कोरम कोर।
दास कहावे श्रीराम को र करके दुखो गीर ॥५४॥

दोहा

नकली भेष बनाय के ते बातें फिरते भाव।
रति प्रेम नहिं राम में उनके हाथ बेहाल ॥५५॥

दोहा

समझे नहिं पागल अरा को समझावे ते तात।
राम भजन तजि रोवते जो माया को दिन रात ॥५७॥

दोहा

श्री रामदास कहता बनहु सब माया के जो दास।
अन्त समय तन त्याग के ते होय नर्क में बास ॥५८॥

दोहा

पुनि सन्त सदा एकांत में करते हैं शुभ विचार।
सार एक श्रीसियाराम है है जग मिथ्या असार ॥५९॥

दोहा

बिन विवेक भासेहु नहीं जग में जो सार असार।
कर विवेक अब देखिये श्रीसियाराम एक तार ॥६०॥

दोहा

चारों खानी में रमण्यो श्रीगुरु रूप से राम।
सच्चे सद्गुरु जब मिले दरशे श्रीघनश्याम ॥६१॥

दोहा

मलीन दृष्टि से दीखता सब जग थार मलीन ।
अखिल राम सूझे नहीं जल में बसती मीन ॥६२॥

दोहा

पर दिव्य दृष्टि होवे जब रे दीखे दिव्य स्वरूप ।
अखिल चराचर राम है लीला ललित अनूप ॥६३॥

दोहा

सतगुरु सांई जब मिले जो होय महा अति पुण्य ।
श्री जगत राम न्यारो नहीं दरशे अखिल अभिन्न ॥६४॥

दोहा

श्रीगुरु की नित पूजा करे रे धरेहु प्रेम से ध्यान ।
उनकी जे कृपा कटाक्ष सें पुनि होय राम को ज्ञान ॥६५॥

दोहा

कहो कौन देहकू राम है कौन जगत को जीव ।
गुप्त भेद गुरू से मिले हि श्रीगुरु हमारे शीव ॥६६॥

दोहा

चोटी नहिं गुरु काटते ते दे न कान में फूंक ।
कठी नहिं गले बांधते बांधे उन मुख थूक ॥६७॥

दोहा

सत काज करते नहि करते अति अनीत ।
राम भजन कीना नहीं सब आयु गई बीत ॥६८॥

दोहा

ते खेलहिं खेलहिं मूरखता रे भ्राता फोगट माल।
राम भजन का सुख नहीं वृथा खोयो सब काल ॥६९॥

दोहा

लख भेद साधु साधु नहीं रे भेद साधु जग जास।
श्रीगुरु ने श्रीमुख से कहे मोहि सियाराम की भाष ॥७०॥

दोहा

रे मुक्ति नहीं उनसे मिल मिले नर्क तत्काल।
तू पावे भज सियाराम को लख गुरु सब कथा समाल ॥७१॥

दोहा

ऐसी गुरु साखी फिर सुनो सत्य मम बात।
सुख क्रिया मुदे नहीं राम भज महि तात ॥७२॥

दोहा

श्रीराम भजे मुझसे सदा जो कर न कोनेहु संग।
रहता जो नित्य एकांत में मन निर्मल जिमि गंग ॥७३॥

दोहा

स्थावर अरु जंगम सब सियाराम मय जाण।
सैन लखाई मैं श्रीगुरु पाया पद निर्वाण ॥७४॥

दोहा

या जग के बीच में श्री बैठ या राजाराम।
राज्य कर निराकी का कर सत्य सब काम ॥७५॥

दोहा

पञ्च ज्ञान इन्द्रिय लखौ रे जिनसे होवे ज्ञान।
पंच कर्म इन्द्रिय सदा वे धरे राम को ध्यान ॥७६॥

दोहा

त्रिलोकीकेऽखिल नाथ को जे पामर जाणे दूर।
देखे नहि सियाराम को सब मे वे भरपूर ॥७७॥

दोहा

शून्य देह मे देव का जाणो अखिल प्रकाश।
राम ढूंडने को फिरे बन के दासी दास ॥७८॥

दोहा

मन बुद्धि अहकार चित्त पुनि महाशत्रू जे जाण।
तू प्रथम जीत शत्रू फिर श्रीराम राम कर गान ॥७९॥

दोहा

सुण शत्रून के जीत्या विना रे कभी न होवत चैन।
राम भजन बनता नहीं येह सुनो सत्य मम बेन ॥८०॥

दोहा

सब इन्द्रिय बस मे करे तब भजे फिर श्रीराम।
वे तुरत ताप तीनों नसे सरे सकल सब काम ॥८१॥

दोहा

जलता है तीनोंहु ताप में वे दे दुःख पंच क्लेश।
भजन बने नहिं राम का फिरता जो देश विदेश ॥८२॥

दोहा

जिनको कहते हैं सूरमा वश कीने रघुवीर।
अखड प्रभु के संग रहे भए महामति धीर ॥९०॥

दोहा

श्रीराम कृपा जिन पै करे जो शरणागत होय।
जनम मरण फांसी हरे दे द्वैत मूल सें खोय ॥९१॥

दोहा

केवल दर्शन राम का जिनको संतत होय।
महापुण्य जिसने किया वोही सुख भर सोय ॥९२॥

दोहा

भक्ति करना महा कठिन नाम धराना सहेल।
श्री राम नहि सुमरे कभी मर कर होवे बेल ॥९३॥

दोहा

लख खरो कमावे देह से पर खावे खोटो तात।
राम तजा तब पशु बन्या निज खावे डंडा लात ॥९४॥

दोहा

खोटीहि भक्ति जो करेहै जिनका होय यह हाल।
भज असली भक्ति जो करे रे जिनसे डरपे काल ॥९५॥

दोहा

असली नकली जे युगल में महा ते अन्तरो जाण।
असली सुमरे राम को नकली दुष्ट पिछान ॥९६॥

दोहा

यह दुष्ट दृष्टि से देख के करे न मुख से बात ।
सुमर राम मुख से सदा तू तज दुष्ट का साथ ॥९७॥

दोहा

दुर्जन से दुर्बुद्धि दुखी शुभ सज्जन हो मग ।
सज्जन सुमर राम को तज दुर्जन को संग ॥९८॥

दोहा

ये दुर्जन के सत्संग से चित्त नहिं उन्नति होय ।
सब राम भजन तज के फिर चौरासी में जो रोय ॥९९॥

दोहा

है संत भक्त संसार में होय जो दिल से साफ ।
जिनकी राम परमात्मा मिथ्या हरे निज ताप ॥१००॥

दोहा

श्रीराम सच्चिदानन्द घन निर्गुण सगुण स्वरूप ।
कर दर्शन अति प्रेम से लगा चातुरि चित्त रूप ॥१०१॥

दोहा

पुनि आगे कोउ खाली नहीं जहाँ देखो तहाँ राम ।
तदपि दर्शन है कठिन रहे गुप्त घनश्याम ॥१०२॥

दोहा

प्रेम शुद्ध पंथ जाय बिना मिले श्रीराम नहीं कोय ।
सुण मिल भेद भजन स तब आनन्द घन होय ॥१०३॥

दोहा

लख भेदू बसे ब्रह्मांड मे गुप्त प्रगट सब ठौर।
उन बिन दर्शन राम का रे करा सके नहिं और ॥१०४॥

दोहा

अब देखो तुलसीदास को वे मिले वीर हनुमान।
तब ही मिले श्री रघुपति जानत सकल जहान ॥१०५॥

दोहा

वचन प्रमाणिक मैं कहूँ कहूँ प्रत्यक्ष प्रमाण ॥
तुलसी को रघुवीर मिले चित्रकूट में जे जाण ॥१०६॥

दोहा

मिलेहि भेद भेदून सँ श्रीरघुपति को जान।
तुलसी भक्त विभीषण भक्तवीर हनुमान ॥१०७॥

दोहा

कविता राम विनोद की ये कीनी कवि नवीन।
पूरी कविता कर कवि वो भया प्रभु में लीन ॥१०८॥

दोहा

कोई दृष्टि दोष जो होय तो कविजन लेवो सुधार।
इति श्रीरामविनोद को कहुँ निज सत्य उच्चार ॥१०९॥

इति श्री रामविनोद सम्पूर्णम्।

* ॐ शान्तिः * ॐ शान्ति. * ॐ शान्तिः *

ॐ श्री-नित्य-आनंद-श्रुति।

प्रणव ध्वनि पद राग रासदा।

आदि मंत्र ॐकार गुरु-मुख से लेकर

जप मन्त्र अखिल विवेकी निरंतर ॥ टेक ॥

यही योग वागीश करे महा-मुनि-वर,

भक्ति मुक्ति सर्व सिद्धि सुभे व प्रदाय हर ॥१॥

महा मन्त्र य है, प्रणव-सादि-ईश्वर

यही ध्यान धनी का, धनी तू धनी-धर ॥२॥

दीक्षा गुरु दे शिष्य ही गुरु-कर,

गुरु मंत्र केवल सिद्ध करते चतुर-नर ॥३॥

जीवन्मुक्त यही होता है जो जागर

गुरु-सो गुरु सत्य कहते बराबर ॥४॥

आत्मचिन्तन, पद राग रासदा।

शिवोऽहं शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं।

रटाकर — रटाकर, रटाकर — रटाकर ॥ टेक ॥

शिवोऽहं शिवोऽहं अस्मि शिवोऽहं।

रटाकर — रटाकर, रटाकर — रटाकर ॥१॥

सजातीय वृत्ति कर, विजातीय वृत्ति तज ।
तू समवृत्ति कर, दिव्य दृष्टि सु-मित्र ।
शिवोऽह शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं ॥२॥
जो तू बना है, सन्यासी तो ब्राह्मण ।
तो जितेन्द्रिय हो तू, न विरागी हो तू ।
शिवोऽह शिवोऽहं, शिवोऽहं शिवोऽहं ॥३॥
मूल मन्त्रको आनन्द, है तू अखण्ड एकशान्त ।
है निर्विघ्न आत्मा, तू स्वय साक्षी चेतन ।
शिवोऽह शिवोऽह, शिवोऽहं शिवोऽहं ॥४॥
महा विरक्त अकर्मी, होते है विपश्चित् ।
सुणे हमी तो वही है, जो वोही तो हमी है ॥५॥
रटाकर — रटाकर, रटाकर — रटाकर ।
शिवोऽहं शिवोऽह, शिवोऽहं शिवोऽहं ॥

तत्सत्

अह ब्रह्मास्मि, अह ब्रह्मास्मि, अह ब्रह्मास्मि,
अह ब्रह्मास्मि ।
मै ही हू मैं ही हूं, मैं ही हू मैं ही हू ॥ टेक ॥
ऋग्वेद प्रज्ञान दब्रह्म गुरू—मुख महा वाक्य ।
सुण्या निज नित्यानन्द ! मै ही हूं मैं ही हूँ ।

अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि ॥१॥

यजुर्वेद अहं ब्रह्म अस्मि गुरु—मुख महा वाक्य।
सुणया निज नित्यानन्द! मैं ही हूँ मैं ही हूँ।
अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि,
अहं ब्रह्मास्मि ॥२॥

सामवेद तत्त्वमसि गुरु—मुख महावाक्य।
सुणया निज नित्यानन्द! मैं ही हूँ मैं ही हूँ।
अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि
अहं ब्रह्मास्मि ॥३॥

अथर्ववेद अयमात्मा ब्रह्म गुरु—मुख महावाक्य।
सुणया निज नित्यानन्द! मैं ही हूँ मैं ही हूँ।
अहं ब्रह्मास्मि, अहं ब्रह्मास्मि अहं ब्रह्मास्मि
अहं ब्रह्मास्मि ॥४॥

हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत् हरिः ॐ तत्सत्
हरिः ॐ तत्सत्।
महा पुरुष गुरु ने गाये गवायें हरि ॐ अस्मि—
हरिः ॐ तत्सत् ॥ टेक ॥
उन्हीं का भजन है, है अधिकार उनको।
नर नर—हरि का दर्शन करा जावें। हरिः ॐ ॥१॥

ध्यानी अज्ञानी, ज्ञानी—विज्ञानी।
विष्णु-मय-विश्व का, दर्शन करावें। हरिः ॐ ॥२॥
हरि ही गुरू हैं गुरू ही अमर है।
गुरू ही गुरू को कृपया दिखावें। हरिः ॐ ॥३॥
स्वयं विश्वंभर, हूँ वाच्य—वाचक।
मेरा हि मेरे को, आनद आवे। हरिः ॐ ॥४॥

---

* ॐ *

* श्रीनित्यानन्दाय नमः *

जीवन सिद्धान्त

दोहा।

महादेव सति दत्त-गुरु, महावीर गण गाय।
कच्छप नन्दीगण निगुण, रुच रुच मगल गाय ॥१॥
लेख अलेख लखे नहीं, लखता लेख अलेख।
लेख अंध है अफुर है, कर विवेक तू देख ॥२॥
स्वयॅ विवेकी पुरुष तू, देखे तुझको कौन ?
आप आप को देख तूं, अनायास होय मौन ॥३॥
जीव नहीं तू ब्रह्म है, ब्रह्म नही तूं जीव।
जीव ब्रह्म दोनों नहीं, साक्षी तूं निज शीव ॥४॥

कल्पित लेख अलेख दाऊ, श्री गुरु दीन दयाल ।
लोप किया सुन कर भक्तो, नास्या सम तत्काल ॥५॥

शिष्य-शंका ।

बहुरि भयो भ्रम मोर मति दीनबन्धु भगवान् ।
गुरु-गम गम पकड़ना कठिन कहत सन्त सुजान ॥६॥
लेख अलेख अनित्य नित, भाखे श्रीमुख बैन ।
याते भ्रम मति में भयो संशय रहत दिन रैन ॥७॥
शीघ्रहि कीजै शान्ति प्रभु, शिष्य आपको जान ।
कलेश चित-चिन्ता हरो दो निज ज्ञान विज्ञान ॥८॥

गुरु-उत्तर ।

तीन लोक के नाथ का करो सफ का ज्ञान ।
हम तुम वक्तर ग्रस्त है तुम-हम हम तुम जान ॥९॥
लेख प्रत्यक्ष दिखावही सम्मुख पुरुष अलेख ।
पुतरी माहि तू मांस की कर विवाद फिर देख ॥१०॥
जड़ चेतन है विषम सम करें विपाकित बाध ।
सम्यक् ज्ञान विज्ञान से हाय निरन्तर मोद ॥११॥

* * * *

गुरु का प्रेमी भक्त बन हो मन से निर्मेल ।
हँस हँस के फिर कीजिये गुरु घर की गुरु सेल ॥
ॐ तत्सत्

[१४] ककक्षरी ।

कक्का केवल आत्मा, शिव कल्याण स्वरूप ।
नाम रूप की गम नहीं, ऐसा रूप अनूप ॥१॥
खख्खा खोजो जासकूं, खो निज विषय विकार ।
सत् गुरु चरणे जाइये, तब होवे निस्तार ॥२॥
गग्गा गुण जाये नहीं, निर्गुण गुणातीत ।
ऐसो नित्यानद् निज, लखो होय तब जीत ॥३॥
घघ्घा घन निर्मल सदा, नित सुख आतम राम ।
अचल सनातन मानिये, भजो ताहि निष्काम ॥४॥
ङङ्ङा विलम्ब न कीजिये, सद्गुरु खोजे जाय ।
करो वचन विश्वास तब, गुप्त आतमा पाय ॥५॥
चच्चा च्यारु ज्ञान के, कहे गुरु साधन आठ ।
साधन जे साधे प्रिये, छुटे हमेशा ठाठ ॥६॥
छछ्छा छे चव आठ दस, कहे निज श्रुति पुकार ।
जीव सदा शिव रूप है, यही हमारा सार ॥७॥
जज्जा जगमग जुप रही, ज्योति आतमराम ।
पच्च कोष वपु तीनको, नहीं जास में काम ॥८॥
झझ्झा झांकी श्याम की, देखो अति अनूप ।
दूजा हुवा न होय अब, कहो दउ कोनकी ऊप ॥९॥
ञञा न्यारा मत भजो, अन्तर बाहिर एक ।
सोही सच्चिदानंद है, दिव्य दृष्टि कर देख ॥१०॥
टट्टा टाले तब टले, चौरासी का फेर ।
ब्रह्म आतमा एक है, लखो न कीजे देर ॥११॥

ठट्ठा ठाकुर जी बसे, काया मंदिर मांय ।
तामें मन को जोड़िये, क्यों शठ इत उत धाय ॥१२॥
डड्डा डाकी डोंग सब त्याग करो चित दूर ।
भये ऊर्ध्व दशहू दिशा, नित्यानन्द भरपूर ॥१३॥
ढड्ढा ढोंगी पुरुष को संग न कीजे अंग ।
बहुत गई थोड़ी रही अब कुछ कर सत्संग ॥१४॥
णण्णा नारायण सदा, सोहं परम प्रकाश ।
संतत सत्संग कीजिये तबहीं होय आभास ॥१५॥
तत्ता ताला लग रहा, कूंची गुरु के हाथ ।
सत सुख भी गुरु से मिले, मार असत् के लात ॥१६॥
थथ्था थाग है नहीं, पंच कोश, वपु आप ।
तामें निज पद चीन्हिये तभी होय कल्याण ॥१७॥
दद्दा दाह शत्रु सकल हो अतिशय हुशियार ।
तामें विलम्ब न कीजिये, काम क्रोध रिपु मार ॥१८॥
धध्धा धन्य उस पुरुष को, करता निरभय राज ।
राज करे भय से मरे, उसका सर्यो न काज ॥१९॥
नन्ना नाना मन करे नाय समय अनमोल ।
नर नारायण रूप तू, देख हृदय का खोल ॥२०॥
पप्पा पल भर म लख, बहुरि छोर अज्ञान ।
काम मध्य मद में फसय, हाय मूरख तू जान ॥२१॥
फफ्फा फिर फिर देखिये, फिर नित प्रति आनन्द ।
स्वच्छा से जग में फिरत होय सदा निर्द्वन्द ॥२२॥
बब्बा ब्रह्मानंद का भोगो सतत भोग ।
पुन्य पुंज सबके मिल्यो तबहि भया संयोग ॥२३॥

भम्भा भारी कष्ट को, देना मन परधान।
मार तमाचा गाल पे, तुझे करे हैरान ॥२४॥
मम्मा माया श्याम की, करती खेल अनेक।
श्याम अकर्ता भोक्ता, करके देख विवेक ॥२५॥
यय्या यामे लेश भी, करो न शंका धीर।
मूल तूल तबही नसै, रहे न लेशहु पीर ॥२६॥
रर्रा राग विराग को, कीजे चित्त से दूर।
पिंड और ब्रह्मांड में, लखो हरी निज दूर ॥२७॥
लल्ला लाखी जासकी, कभी न होवे लुप्त।
लुप्त ज्योति खट जानिये, सो कभि रहे न गुप्त ॥२८।
वव्वा वा बिन है नहीं, घट मठ खाली ठाम।
अस्ति भाति प्रिय आतमा, तहां रूप नहिं नाम ॥२९॥
शश्शा सागर मध्य जो, लहेरो फेन तरंग।
ज्यों आत्मा मे जानिये, जीव चराचर अंग ॥३०॥
षष्षा सार असार को, रती न तुझको भान।
तुझको अपने आपका, रती मात्र नहिं ज्ञान ॥३१॥
सस्सा सकल शरीर में, अनुगत आतम एक।
सो तो से प्रथक नहीं, तू शिव एक अनेक ॥३२॥
हहहा हाजिर रहे सदा, साक्षी नित्यानन्द।
रैन दिवस जहां पर नहीं, तहां न भानु चन्द ॥३३॥
लल्ला लाल अमोल को, करे कोउ व्यापार।
मृग तृष्णा के नीर सम, वह लखे पदारथ चार ॥३४॥
क्षक्षा छाया धूप में, अक्षय नित्यानन्द।
बिन देखे दीखे नहीं, कौन मुक्त को बन्ध ॥३५॥

धन्य ताका धन्य है, जो देखे नित्यानन्द ।
महा पुरुष ताको कहे, शुभ ताकी छड़ सुगन्ध ॥१६॥
धन्य ज्ञानी जन सदा, देखे नित्यानन्द ।
सज्जन मन जिनका कहीं, आनन्दन के कन्द ॥१७॥

दोहा

कक्का आदि वर्ण है, प्रथम पढ़ सब कोय ।
कक्का सब कारज करे, कक्का सब गुण होय ॥१८॥
सम्यक् दृष्टि से लखे, पूरण परमानन्द ।
वर्ण अर्थ पण्डित पढ़े, सो पण्डित है धन्य ॥१९॥

— o —

नवीन (पद) भजन

व्यापक-गुणानन्द ।

जगदीश्वर व्यापक गुणानन्द,
महा प्रभु केशव गुरु गुरुवर गोपति हर गोविन्द ॥टेक॥
एक अनेक आपही विधिहर आपहि सुन्दर चंद ।
आपहि नर नारायण नरहरि नहिं रति भेद की गंध ॥१॥
हाटक एक अनेक दागीना, नहिं सोना ते भिन्न ।
इन्द्र कुबेर आपही गणपत नहिं समझे रहस्य मतिमंद ॥२॥
माने भेद भेदवादी जन सो दुख सहे अनन्त ।
भक्त अभेद निरन्तर भजत, रहत सदा निर्द्वन्द्व ॥३॥

चेतन पूर्ण ब्रह्म नित्यानन्द, मोक्ष मूर्ति भगवन्त।
ऐसी भक्ति करो भक्त जन, आनन्द के कन्द ॥४॥

दोहा।

कहां काशी कहां काशमीर, खुरासान गुजरात।
तुलसी ऐसे जीव को, प्रारब्ध ले जात ॥१॥
प्रारब्ध को जड कहे, छोडो जड की आस।
चेतन करके जड फिरे, जड चेतन का दास ॥२॥

० —

केशव नन्द किशोर।

प्राण पति! केशव नन्द किशोर।
आपहि कृष्ण कन्हैया मोहन, तस्कर माखन चोर ॥टेक॥
देखे आप, आप अपने को, द्रष्टा दृश्य न होय।
बजे मनोहर बंसी चैन की, करें मोद घन मोर ॥१॥
ॐ इति एकाक्षर केशव, अखण्ड ज्योति परब्रह्म।
आपहि भक्ति भक्त गुरु श्री हरि, वरुण श्याम अरु गोर ॥२॥
आपहि कवि, आपही कविता, करो विविध विध शोर।
आपहि सुनो आपही गावो, दिवस शाम निशि भोर ॥३॥
गुप्त प्रगट लीला सब करते, हो व्यापक सब ठौर।
जय जय जय अन्तर्यामिन् को, तुमहि मोर अरु तोर ॥४॥

—— ० ——

केशव केवल आतमा, शुद्ध सच्चिदानन्द।
तीन लोक के नाथ में, नहिं मोक्ष नहिं बन्ध ॥१॥

—— ० ——

पाणि पाद पायू नही, नहिं उपस्थ मुख अग।
विविध क्रिया आपहि करे, होकर सदा असंग ॥४॥
मन बुद्धि अहकार चित, प्राण नहीं उपप्राण।
कर्ता नहीं करावता, निज नित्यानन्द जाण ॥५॥

ॐकार बिन्दुसयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः ।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमोनमः ॥१॥

सत्य मानविवर्जित श्रुतिगिरामाद्य जगत्कारणं,

व्याप्त-स्थावरजङ्गम मुनिवरैर्ध्यात निरुद्धेन्द्रियैः ।

अर्काग्नीन्दुमय शताक्षरवपुस्तारात्मक सन्ततं,

नित्यानन्दगुणालय गुणपर वन्दामहे तन्महः ॥

श्री ॐ

दो शब्द

इस छोटी सी पुस्तिका में वार्तारूप से थोडे में जिज्ञासु जनों को "वेदान्त–रत्न" का बोध कराया गया है। केवल वेदान्त तत्त्व ही नहीं, चारो वर्ण, चारों अवस्था और चारों आश्रमवाले भक्तों तथा सन्यासियों को यथाप्रसंग सरल युक्ति द्वारा व्यावहारिक, नैतिक तथा धार्मिक बोध बतलाते हुये वेदान्त–मार्ग की ओर क्यों और कैसे अग्रसर हो कर स्व-स्वरूप की प्राप्ति की जाय, इसका दिग्-दर्शन कराया गया है। अ वश्यकता है केवल श्रद्धा भक्ति के साथ इस ग्रन्थ रत्न के श्रवण, मनन तथा निदि यासन पूर्वक कृति में लाने को।

बालक का प्रथम गुरु माता ही है। माता कैसी होनी चाहिये इसका उत्तम उदाहरण मोहिनी है, जिसने राणी मदालसा का आदर्श ग्रहण किया है। जो शिक्षा बाल्यावस्था मे दीजाती है वह सुलभता से संस्कार रूप से जमजाती है, और आगे जाकर श्रेय–मार्ग मे सहायिका होती है। इसलिये बाल्यावस्था में ही मोहिनी ने अपने पुत्र कचरा को परम–पुरुपार्थ की सहायक, सर्व विद्याओं को अग्रसर जो ब्रह्म-विद्या है, उसका बोध कराया है। साथ ही चारो वर्णो मे ब्राह्मण जो शिक्षा–गुरु होते हैं उन्हें स्वत किस प्रकार का होना चाहिये, इसका आदेश करते हुए तीनों वर्णो के कर्तव्यों को बतलाया है कि–उन्हें अपने प्रत्येक आश्रम में क्या कर्तव्य है और वर्तमान काल में क्या करने से क्या से क्या बनगये हैं।

वास्तव में हमें क्या करना चाहिये, यह बतलाते हुए चतुर्थ आश्रम में चारों प्रकार के भक्त तथा सन्यासियों का क्या कर्तव्य है यह बात भी मास्टरी जी तथा परमअवधूत श्री जड़भरत महाराज के दृष्टान्त में पुष्ट की है। "वस्तु अच्छी है और उसे प्राप्त करना चाहिये" इस उद्देश्य से कोई उन आश्रमों में प्रवेश कर जाते, पर जबतक युक्त आचरण प्रारम्भ नहीं करें, तबतक इष्ट वस्तु की प्राप्ति कभी नहीं कर सकते। बल्कि उल्टे पतित होकर बन्धन में फँस जाते हैं। उनकी दशा कैसी होती है, यह बात शुष्क-वेदान्ती महात्मा के दृष्टान्त में दर्शायी गयी है।

यदि सद्भाग्य से कोई इस सीढ़ी को पार भी कर गया, तो उसे आगे जाकर अहंकार रूपी भूत मिल जाता है जो बिना पछाड़े नहीं रहता। उससे सावधान रहने के लिये बनना बनाना से बिलग रहने का गुरु-शिष्य का दृष्टान्त देकर समझाया है। और अन्त में सर्वोपरि सिद्धान्त स्वस्वरूप की प्राप्ति का मार्ग बतलाया है। इस प्रकार यह ग्रन्थ साधारण वार्ता पुस्तक नहीं वरन् परम अवधूत सद्गुरुदेव स्वयं नारायणस्वरूप श्रीमहाप्रभुजी श्री नित्यानन्द जी महाराज की अमृत वाणी है।

जिज्ञासुओं का परम सद्भाग्य है कि-महाप्रभु जी ने इस प्रकार की कृपा की। जनता इससे पूर्ण लाभ प्राप्त कर इस हेतु से यह ग्रन्थरत्न पुस्तक रूप में प्रकाशित किया जाता है। आशा है कि भक्तगुजन इससे यथेष्ट लाभ प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे। इस इच्छा के साथ ॐ तत्सत्।

गुरुवार, दीपमालिका
संवत् १९९०

विनीत—
प्रकाशक

॥ ॐ ॥

वेदान्तरत्न-जननी-सुत-उपदेश

(कचरा मोहिनी सम्वाद)

पद—

बेटा भणे मति हो, आपा माँगो खावाँगा। टेक॥
निशाल के आगे बेटा तू, कहता है जावाँगा।
दुष्ट पाण्ड्यो पकड़ लेने, फिर कैसे आवाँगा॥ १॥
चाल खेत मे मेरे संग मे, पक्षी उड़ावाँगा।
लीलो लीलो तोड़ बाजरो, आपा दोनु पावाँगा॥ २॥
बैठ एकान्त प्रभु का बेटा, गुणगण गावाँगा।
पटक धूल लिखने पढ़ने पे, अपना जन्म सुधरावाँगा॥ ३॥
पढ़ना महल कठिन है गुणना, गुण्या बिन पढकर शरमावाँगा।
कहत कवी वाणी भण सुन्दर, पुत्र तन धन पंकावाँगा॥ ४॥

अर्व (धः) ऊर्ध्व के मध्य एक अलौकिक ग्राम था। उस ग्राम में एक मूलचन्द नामक वैश्य भक्त रहता था। उसकी स्त्री का नाम "मोहिनी" था। दोनु स्त्री पुरुष महापुरुषों की निष्कामता

स अत्यन्त सदा भक्ति करते थे। काल पाके उस मूलचन्द भक्त की स्त्री मोहिनी के सीमत रहा और काल पाके उसकी कुक्षि से एक पुत्र पैदा हुआ। उसका नाम "कचरा" रक्खा। और जब जब कचरा को माँ दूध पिलावे और रमावे तब ऊपर लिक्खा मजन मय अर्थ के प्रेम रीति स अपने बच्चे के कान में सुनावे कि—

"हे पुत्र! विद्या (लौकिक) अज्ञान(१) से तेरा यह नर-नारायण शरीर है जो पाँच—पचास, सौ, दोसौ, हजार की की कीमत का होजावेगा—और जिस नारायण ने यह सुन्दर तन बनाया है, सो अमूल्य है, इसका कोई भी मोल नहीं। ऐसा जिसने अमूल्य शरीर बनाया है उसको भूल करके अज्ञानी जीव सैकड़ों रुपया खर्च करके अनात्म विद्या पढ़ते हैं। जो पुरुष उभय लोक से भ्रष्ट हुए हैं, और उनके कुछ हाथ पल्ले नहीं पड़ा है। यात हे पुत्र! तूं अपने घर में ही रमणा,(२) बाहिर नहीं रमणा।

कदाचित् बाहिर रमे तो, निशाल के आगे जहां गाँव के छबका छबकी भण्ते हैं वहां तुम पदवा रहता है जो तेरेकूं पकड़लेगा, और अपनी पूर्व विद्या अज्ञान का संस्कार गेरेगा। याते हे पुत्र! तू निरचल होके अपने घर में ही रम और मेरे संग में अपणों खेत पे चल। अपने बाजरा बाया है, वहां पक्षी उड़ावेंगा और दोनूं माँ बेटा छोले छीले बाजरो चोख के खावेंगा। हे पुत्र! मेरा कहेणा मान, सुख पावेगा। भणेगा तो कहीं आगे पे तेरेकूं गुलामगीरी करणी पड़ेगी तब तूं अत्यन्त पस्तावेगा(३) और सिर धुन धुन के रोवेगा।

---

(१) पढ़ने स (२) खेलना।

(३) पछतावेगा।

याते, हे बेटा ! उठ चाल, एकान्त जगे है, दोनूं मां बेटा बैठ के प्रभु का गुण-गण गावांगा और प्रसन्न करके, प्रभु का स्वरूप कूं प्राप्त होवांगा। तब हे बेटा ! जन्म मरणरूपी चक्कर से आपां छुटांगा। येही जन्म सुधारणा है, याते भणे मत। रोहीदास, कबीरदास, धना भगत, गोरो कुंभार, सेन भगत, पीपा भगत, गरीबदास, दादूजी महाराज, रामचरण जी महाराज, अजामिल, प्रह्लाद, ध्रुवजी,सगालसा कहाँतक कहूँ इनसे आदि लेके और बहुत से भक्त हुए है,बिना पढे ये महन्तभक्त एक अक्षर के न जाननेवाले परमात्मा कू प्रसन्न करके परमात्मा के स्वरूप में लीन हुए हैं। बिना पढने का हे पुत्र ! शीघ्र ही काम बनता है, याते-मेरे वचनो में श्रद्धा कर, जाते तेरो भी शीघ्र ही उद्धार होजायगो।

हे पुत्र ! तेरे प्रति मैं तेरी माता सत्य वचन सुनाती हूँ, तू मेरे वचनों को खोटा मत समझना, याते तू लिखने पढने पे सात मुट्ठी धूली पटक और प्रभु को प्रसन्न करने का जो साधन मैं तेरे कूँ बताती हूँ सो तू खबरदार होकर कर। और मेरे वचनों मे श्रद्धा कर। जो कदाचित् मेरे वचनो में तू अचल श्रद्धा नही करेगा तो तेरा चौरासी का चक्कर नही टूटेगा। तू मेरा पुत्र है मैं तेरी माता हूं, मैं मेरा फ़र्ज अदा करतीहूँ। हे पुत्र ! तू बच्चा है, याते तेरे कूँ मेरे वचनो का ख्याल नहीं है।

हे पुत्र ! एक मदालसा नाम राणी थी। उसकी कुक्षि से सात पुत्र हुए थे जिनको हे पुत्र ! राणी मदालसा एक अद्भुत

मंत्र सुनायी थी, सो मंत्र मैं तेरे कुं सुनाती हूं, तू एकाग्र चित्त होकर के मेरी गोद में बैठ, तरे सुणने योग्य है।

एक समय तेरा पिता और मैं तेरे कू गोद में लेकर के महापुरुषों के दर्शन कुं गये थे। तब वहाँ पर सत्संग में महापुरुषन के मुखारविंद से राणी मदालसा का इतिहास सुणने में आया। सो इतिहास कैसा है कि जिसके सुणने से और विचार करने से वा निश्चय करने से विद्या भजन की तर्फ लक्ष नहीं लगावेगा। क्योंकि जो ऐसे रहस्य को नहीं जाने, वो पुरुष अपने बालबच्चों को ऐसी अनात्म विद्या पढ़ाते हैं कि जिस विद्या कुं पढ़ने से उस जीव की महा दुर्गति होती है। क्योंकि मदालसा जैसी माता होना महा कठिण है, जिसने अपने पुत्रन को राज्य नहीं करने दिया और विद्या भी भजन होनी। क्योंकि राज्य में भी वा विद्या से भी मदालसा राणी के पास एक अमूल्य वस्तु थी, सो अपने पुत्रन को दे दे कर महावन में तपश्चर्या करने के निमित्त भेज दती थी। उन पुत्रन में से एक पुत्र को अपने पास रखा और एक चांदी का तावीज बनवाके उस में मदालसा ने अमूल्य रकम रखी और अपने पुत्र से कहा कि—'हे पुत्र ! जब तेरे पर महा विपत्ति आवे पर तब तू इस तावीज को खोल कर मैंने उस में जो अमूल्य वस्तु रखी है सो तू तेरा हृदय रूपी तिजोरी में रख लेना

और शीघ्र ही ये अनात्म–राज कूँ त्याग के महावन–खण्ड मे आके अचल धाम में तू रहना। वहाँ पर किसी का जोर जुल्म नहीं"।

पुत्रोवाच—हे माता! मदालसा राणी ने अपने पुत्रों को ऐसा कौन पदार्थ दिया था, जिसके बल से ये सातो भाई राजपाट सर्व त्याग के शीघ्र ही महा भयकर वन कूँ चले गये, और अडग पदवी कूँ प्राप्त हुए। सो मन्त्र हे माता! मेरे प्रति कहो। मैं आपका पुत्र हू, आप मेरी माता हो। मैं आपके मुखारविंद से उस मत्र को सुनना चाहता हूं।

मातोवाच—हे पुत्र! मदालसा राणी ने जो अपने पुत्रों को मत्र दिया है, सो मन्त्र महा गुप्त है तेरी बुद्धि अल्प है, याते तू भणे मत मदालसा राणी ने पुत्रों को जो मन्त्र दिया था सो मन्त्र मैं तेरे को सुनाऊगी इति।

हे पुत्र! पढ्या सब गाम के लडकन कूँ पढाता है, तद प उस के बाल बच्चों का व उसके घरका काम महा मुश्किल से चलता है और रात दिवस चिन्ता के सागर में स्नान करता है। उसको अपने आप का होसला नहीं, क्योंकि पढने वाले और पढाने वाले, हे पुत्र! द्वार २ पै एक २ पैसे के लिये अत्यन्त मुहताज हो जाते हैं। और गृहस्थियो के दरवाजे २ पै जाके अज्ञानी जीव

बिना पठित के सामने दीनता उठाते हैं। पढ़ करके कोई बड़ा फल प्राप्त नहीं किया। हे पुत्र ! विद्या कूँ पढ़ने वाला महा कष्ट कूँ पाता है। तब हे पुत्र ! विद्या पढ़ने वाले क्यों नहीं महा कष्ट का उठावें ?

हे पुत्र ! जितने यह नादान और नादानी करते हैं, केवल उनकी अत्यन्त मूर्खता है। जब विद्या नहीं पढ़े थे तब भी महा दुखी थे, और विद्या भण करके भी महादुःख रूपी पदवी प्राप्त की, और हे पुत्र ! अन्त में भी महादुःख को प्राप्त हुए हैं। ऐसे मूर्खों की मूर्खता के पाछे मत लग। मेरा कहना मान, विद्या मत भण।

एक कोई हिरण्यकशिपु नामक राजा था, उसके पुत्र का नाम प्रह्लाद था, पिताजी ने पढ़ाने के निमित्त उस कूँ अत्यन्त ताड़नाएँ कीं, तथापि—हिरण्यकशिपु का पुत्र प्रह्लाद विद्या भण्या नहीं।

और एक द्वितीय इतिहास —उत्तानपाद राजा की छोटी राणी का लड़का ध्रुवजी था। उसको पाँच वर्ष की अल्प अवस्था में उसकी माताजी सुनीति ने भजन न करके प्रभू कूँ प्रसन्न करने के निमित्त महा घोर भयंकर वन में भेज दिया विद्या नहीं भणाई। हे पुत्र ! तेरे कूँ प्यार सुणना हो तो महापुरुषों के सत्संग में जा। वे महापुरुष तेरे कू ऐसे इतिहास विस्तारपूर्वक

के अपने मुखारविंद से अनेक सुनावेंगे । यातें हे बेटा ! भण मत, अपणे मांग खाँवागा ।

पुत्रोवाच —हे माता ! मदालसा राणी ने जो अपने पुत्रों के निमित्त गुप्त मंत्र दिया था, वो मेरे प्रति सुणावो । मेरे कूँ अत्यन्त जिज्ञासा हुई है । हे मातु श्री ! आप कहती हो कि "तू बच्चा है याते तेरे कूँ इसके रहस्य का पता नहीं लगेगा, इस वास्ते नहीं कहती हूँ" । सो हे माता ! मैं अब उसी मत्र कूँ आपके मुखारविन्द से सुनना चाहता हू, मेरे कू अत्यन्त जिज्ञासा हुई है । हे मातुश्री ! मेरे ऊपर दया की दृष्टि करके, वा करुणा करके वह गुरु मत्र मुझे सुनाओ ।

मातोवाच —हे पुत्र शान्ति रख, तेरे सिवाय मेरे कू दूसरा कोई प्यारा नहीं तेरे को जो मदालसा राणी ने अपने पुत्रन के प्रति जो मत्र सुणाया था, सो हे बेटा ! वही मंत्र अब मैं तेरे कूं सुणाती हूँ । सावधान होके एकाग्रचित्त होय करके मेरे निकट निश्चल होके बैठ और सुण ।

श्लोक —

शुद्धोऽसि बुद्धोऽसि निरञ्जनोऽसि ।
संसारमाया परिवर्जितोऽसि ॥
संसारस्वप्नं त्यज मोहनिद्रां ,
मदालसा वाक्यमुवाच पुत्रम् ॥१।

हे पुत्र ! तू अत्यन्त शुद्ध स्वरूप है, व ज्ञान स्वरूप है, व निरञ्जन निराकार है। हे पुत्र ! यह संसार माया है, यातें तू मोहरूपी निद्रा म जाग, इसके मोह में मत फँस। मैं तेरी माता मदालसा जो ये शुभ मंत्र सुणावी हूं; इसके सुमरण करने से, वा विवेक करके इसके रहस्य को जाणनेसे हे पुत्र ! इस दुःख रूप संसार से तुम्हारा शीघ्र ही उद्धार हवेगा। जैसे राणी मदालसा के पुत्रों का माता के वचनों में श्रद्धा करने से तत्काल ही ज्ञान बना है और अचल धाम को प्राप्त हुये हैं। यातें तू मेरी मत, माया मांगी लावोगा। और हे पुत्र ! जो मानोगा तो पूर्व लिखे हाल जो मदालसा का हुआ है, वैसा ही तेरा भी होगा। हे पुत्र ! यह मन्त्र मदालसा राणी ने जो अपने पुत्रन कूं दिया था, सो मैंने तेरे को सुणाया तेरी समझ में आया या नहीं ? नहीं आया हो तो हे पुत्र ! तू मेरे से पूछ, मैं तेरे प्रति फिर कहूंगी तू मेरे प्राण से भी प्यारा एक पुत्र है इसमें मैंने तेरे कू यह मन्त्र सुनाया है।

पुत्रोवाच—हे माता ! पढ़नवाला और पढ़ानवाला परमात्मा कूं प्रसन्न क्यूं नहीं कर सकते हैं ? हे मातु श्री ! इसमें कौन कारण है ? सो कहो मेरे कूं ऐसी शंका होती है, शीघ्र ही मेरी शंका का समाधान कीजिये।

मातोवाच—हे पुत्र ! जो तू शंका करता है, इसकी शान्ति के निमित्त जो महापुरुषों के मुखारविन्द से मैंने सुना है, सो तेरे प्रति सुनाता हूँ—शान्ति रख सुण—

यस्य नास्ति स्वय प्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम ।

लोचनाभ्या विहीनस्य, दर्पण कि करिष्यति ॥१॥

हे पुत्र ! जिन्होंने अपनी बुद्धि को पेट के निमित्त वेचदी, स्वय बुद्धिहीन हैं,याते हे पुत्र ! शास्त्रों को कोई दूषण नहीं। शास्त्रों मे जो लिखा है सो महापुरुषो के मुखारविन्दो के वचन हैं,सो वचन सत्य हैं,सत्य का कभी अभाव नहीं होता सत्य को त्रिकालावाध कहते हैं। याते दूषण पढने वाले और पढाने वाले में है। एक पेट के निमित्त तेली के वैल की नाई रैन दिन इधर उधर फिरता है, कामना पूर्ण होती नहीं, सुख से निद्रा आती नहीं, सुख से भोजन करते नहीं और सुखी देह से रहते नहीं। हे पुत्र ! जिसके बुद्धि रूपी लोचन फूट गये हैं उनको शास्त्र के गुप्त रहस्य का पता लगता नहीं। जैसे किसी पुरुष के दोनों नेत्र फूट जाँय और वह अपना मुख दर्पण में देखना चाहे तो हे पुत्र ! वो स्पष्ट अपने मुख को कैसे देख सकता है ? हे पुत्र, दर्पण तो ज्यों का त्यों स्वच्छ है। परन्तु-उसके नेत्र फूटे हुए हैं, दर्पण कू दूषण नहीं। इसी प्रकार से हे पुत्र, पढने वाले या पढाने वाले प्रभू कू प्रसन्न क्यों नहीं करते, ऐसो तै ने शका करी कि इसमें कौन कारणता है, सो हे पुत्र ! जो कारणता थी सो मैंने तेरे कू स्पष्ट कही है, अपनी वृत्ति से तूभी विचार कर और भरो मत, अपन दोनू माँ बेटा माग खावाँगा ॥इति॥

पुत्रोवाच —हे मातुश्री ! मेरे कू जो तैंने वचन कहे सो मेरी बुद्धि में ठस गये हैं। परन्तु-हे मातु श्री ! एक मेरे कूं शका

होती है कि, तीनों वर्णों का पूज्य चौथा ब्राह्मण है व विद्या बहुत पढ़ते हैं और बहुत पढ़ाते हैं, परन्तु—उनके चेहरे पर प्रसन्नता मुझको देखने में नहीं आती। हे माता जी! जो तामी सबसे गुप्त रहस्य को जानती थी सो यह नहीं जानते? या—क्या? इति॥

मातोवाच—हे पुत्र! तीनों वर्णों का पूज्य चौथा ब्राह्मण पुस्तकों में जो अक्षर लिखे हैं जो उनका स्पष्टार्थ है सो ही जानते हैं, जो उसमें सारभूत वस्तु है सो अक्षरों से वा मर्म से अत्यन्त गुप्त है। इस वास्ते हे बेटा! वे मान के पक्के हो गये हैं पात तू—'यम् सारभूतं तदुप 'सितव्यं॥' तब तेरा काम बनेगा। और पण्डित की नाई तू पढ़ेगा तो तेरे मुख पर भी प्रसन्नता देखने में नहीं आवेगी। हे पुत्र! वे पण्डितजन विद्या तो पढ़ते हैं, परन्तु—गुणते नहीं। यातें हे बेटा! गुणया बिना विद्या का पढ़ना केवल वृथा है। हे पुत्र वे पण्डित जन पूरे पूरे भार वाहक हो रहे हैं, जाकी सिर पर भार धर रखा हैं, फिर से भार नहीं उतारते, यातें उनके मुख पै प्रसन्नता नहीं है। हे पुत्र! सार वस्तु प्राप्त किये बिना असार वस्तु से मुख पै प्रसन्नता नहीं आती है। केवल कष्ट सहकर दुःख-रूप व्यतीत होता है। सो सुन शंका की उसका उत्तर मैंने मेरी मति के अनुसार हे पुत्र! तेरे से कहा तूने श्रवण किया या नहीं? याते हे बेटा! मेरा मत, आपों दानों मां बेटा भोग त्यागोंगा॥इति॥

॥ जो सारभूत वस्तु है वही उपासना करने योग्य है।

पुत्रोवाच --हे मातु श्री ! मेरे को तेरे वचन श्रवण करके वहुत आनन्द हुआ है । हे मातुश्री ! तेरे वचनो को श्रवण करके मेरी वुद्धि पवित्र हुई है और जैसे वे पूर्व लिखे विना पढे भक्त हुए हैं और प्रभु कूं प्रसन्न किया है और अनात्म देह का परित्याग करके अन्त मे परमात्मा के स्वरूप मे लीन हुए हैं, वैसे ही हे मातु श्री ! मैं भी तेरी आज्ञानुसार करूंगा । परन्तु-मैं वच्चा हू, मेरा मन मुकाम पर नहीं है,चंचल वहुत है। याते मेरा मन निश्चल होय ऐसी युक्ति, हे मातु श्री ! मुझको शीघ्र ही वता, अव देरी न कर, मैं तेरे सन्मुख हाथ जोड़ कर खड़ा हूँ-दया कर, और मेरा मन निश्चल होने की युक्ति मुझे वता ॥इति॥

मातोवाच —हे पुत्र, जो तूने मन के निश्चल करने की युक्ति पूछी है,सो तू हे पुत्र,मेरे कूं'मन'वता। हे पुत्र! मन नाम मानने का है, याते तू दृष्टि खोल के देख । तेरा मन नहीं है, मन पंच भूतो का है । तेरा धन नहीं, यह सप्त धातु जो जड़ है उस का पदार्थ है। ऐसे ही पच भूतों के समष्टि सतोगुण अश से मन की उत्पत्ति हुई है। सोहे पुत्र ! जब कारण भी जड़ है,तव उसका कार्य जड़ क्यों नहीं होगा ? याते हे पुत्र ! मन भी जड़ है,तेरानहीं । तेरी वस्तु हो तो उसके निश्चल करने का यत्न कर। तेरी वस्तु मेरे कू इतने पदार्थो में कोई देखने में नहीं आती है। हे पुत्र, तू भी मेरी नाईं निर्विकल्प निजबोधरूप जो आत्मा है ऐसा देखेगा तव तू भी निर्विकार

होके संसार सागर में सुख न पावेगा । तब तेरे कूँ तीन काल में भी तन मन धन इनका पता नहीं लगेगा । यातें तू मेरी जैसी दिव्य दृष्टि प्राप्त करने का साधन संग्रह कर । थक जाता है, समय बहुत थोड़ा है जहाँ से आये हैं वहाँ को जाना है । श्रेष्ठ पुरुष में मत लगे । मेरा वचन मान । पिता भया मत—हे पुत्र ! आपा भोगी जायगा ।।इति।।

पुत्रोवाच—हे मातु श्री ! मैं कौन हूँ ? मैं साकार हूँ या निराकार हूँ ? या इनसे कोई अतिरिक्त हूँ ? मेरे कूँ मेरी बुद्धि में समझ आवे ऐसा समझा । अब मेरी बहिर्मुखी-वृत्ति का अभाव हुआ है और प्रभू को प्रसन्न करने का मेरा भाव हुआ है यातें अब तंग मत कर । मेरे को दास ही समझा । तेरे वचन सुण सुण करके मैं नामर्द बच्चा मर्द होगया हूँ ।। इति ।।

मातोवाच—हे पुत्र ! तू कहता है कि—मैं कौन हूँ ? सो हे पुत्र ! तू सच्चिदानन्द परब्रह्म जीवात्मा है । तेरे में दुःख रूप पदार्थ का लेश भी नहीं है । केवल तेरे प्रकाश कू पाय करके यह सब दृश्यमान पदार्थ प्रकाशमान हो रहे हैं । तेरा प्रकाश करने वाला इनमें कोई नहीं, क्योंकि स्वरूप से वो जड़ हैं जड़ वस्तु वो अपने आपकू भी नहीं जानती वो पराये पदार्थन कू कैसे जानेगी ? यातें हे पुत्र ! तू तीन लोक चौदह भुवन का स्वामी है । जो तू ने शंका करी कि—मैं साकार हूँ या निराकार या इनसे अतिरिक्त हूँ ? सो हे बेटा ! तू केवल शिव कल्याण स्वरूप है । ये जो पण्डितजन विद्या पढ़ते हैं या पढ़ाते हैं सो तेरी ही बनाई हुई विद्या है । उसको

भण करके अपना जीवन पूरा करते है। तेरे स्वरूप मे पढना गुणना कुछ नही, अपने स्वरूप कूं पहिचान, तेरी सब भ्रान्ति दूर हो जायगी। याते हे बेटा! तू भणे मत, आपा माँगी खावाँगा॥इति॥

पुत्रोवाच—हे मातु श्री! मेरे कूं शीघ्र ही आज्ञा दे, मै प्रभू को प्रसन्न करने के निमित्त और अपने स्वरूप की प्राप्ति करने निमित्त महा घोर भयङ्कर वन में जाता हूँ। एकान्त देश विना या एकाग्र वृत्ति किये विना मैं मेरे स्वरूप का यथार्थ बोध प्राप्त नहीं कर सकता, गडबड में गड़बड़ हो जाती है, गुप्त स्वरूप का पता लगता नहीं। हे मातु श्री! मै महाजन का लड़का हूँ, सो महाजन कैसे होते है, सो सुण—

दोहा—वणिया वणिया सब कहे, वणिया बड़ी बलाय।
दिवस शहर के बीच मे, निर्भय लूटे खाय॥१॥
बणिया वणिया सब कहे, वणिया कोऊ न एक।
कपट कूट नखशिख भरे, ऐसे वणिक् अनेक॥२॥
बणज करे सो वाणियो, बणज करै बनि जाय।
बिगर बणज को वाणियो, इत उत धक्का खाय॥३॥
सो कपटी सो लापर्वा, सो ठग्गन ठग एक।
इतनो वाणक जब बणे, तब होय वाणियो एक॥४॥

हे मातुश्री! ऐसे भाइयों के बीच में मैंने जन्म लिया है। मैं भी इनके बीच में रहणे से अनेक अनर्थ करूँगा। याते मेरे कू

इनका व्यवहार देख करके अत्यन्त भयभीत हुआ है। हम जैसे हैं, वैसे तुलसीदास जी महाराज भी कहते हैं—

दोहा—तुलसी कबहुँ न कीजिये, धर्मकपुत्र विश्वास।

मीठा बोले मन हरे, रहे दास का दास ॥१॥

इन महात्मा जी के वचन सुनके, हे माता! मैं बहुत लज्जित हुआ हूँ। जिस जाति में मैंने जन्म लिया है ऐसी जाति में नारायण किसी कू जन्म न दे।

"हुई कमाई, हराम पे नजर"

एक का सौ, सौका हजार, हजार का लाख ऐसे ही अनात्म धन्धा में सब समय पूरा करता है। अब मेरे कू आज्ञा दे, मैं तेरे वचनों का पालन करूँगा। न आज्ञा देगी! तो मेरा कुसूर नहीं है॥ इति॥

मातोवाच—हे पुत्र! तेरे धन्य भाग्य हैं जो तैंने तेरे ही मुख से मेरे को बहुत प्यारे लगे हैं, मेरे को ऐसे वचन कहे हैं सो तेरा काम बाम हो होवेगा। "तेरे कूं संसार में पूर्ण वैराग्य हुआ है" ऐसा मेरी मति में मेरे कूं निश्चय हुआ है। याते हे बेटा! भजन कर, मायाँ मोगी आवेगा।

पुत्रोवाच—हे मातुश्री! अब मेरा किसी में चित्त नहीं लगता तेरे में का प्रेम नहीं, और मेरे पिता जी में भी मेरे कूं प्रेम नहीं और इस घर में भी मेरे कूं प्रेम नहीं। मेरे कू प्रेम बहुत

प्रभु के प्रसन्न करणे का वा प्रभु के स्वरूप प्राप्त करने का लग्या है, और किसी पदार्थ मे मेरा प्रेम नहीं । सब तेरी कृपा है, तू मेरी माता मेरी गुरू है तेरी कृपा से सब काम मेरा शीघ्र ही होगा ।

मातोवाच —हे पुत्र ! अब तू पूरा वैरागी हुआ है, तेरी जुबान से मुझको मालूम पड़ता है और तेरी व्यक्ति से भी मेरे कूं मालुम पड़ता है । जैसा तेरे मुख से तू कहता है, वैसा ही मेरे कू तू दीखता है । हे पुत्र ! तेरे स्वरूप का कोई आदि अन्त नहीं हैं दत्त भगवान् ने भी ऐसा ही कहा है .—

श्लोकः—आत्मैव केवलं सर्वं, भेदाभेदो न विद्यते ॥
अस्ति नास्ति कथं ब्रूयां, विस्मयः प्रतिभातिमे ॥

(अवधूत गीता १–४)

अर्थात् —सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे एक आत्मा ही केवल सत्यरूप है । आत्मा से भिन्न दूसरा कोई भी पदार्थ सत्य नहीं है, किन्तु मिथ्या है । और सर्वरूप आत्मा ही है, क्योंकि–कल्पित पदार्थ की सत्ता अधिष्ठान से भिन्न नहीं होती है । इस वास्ते सम्पूर्ण विश्व आत्मा से भिन्न नहीं है और अभिन्न भी नही कह सकते हैं, क्योकि सम्पूर्ण विश्व चक्षु इन्द्रिय करके दिखाई पड़ता है । यदि अभिन्न हो, तब आत्मा की तरह कदापि दिखाई न पड़े । और दिखाई पड़ता है, इस वास्ते अनिर्वचनीय है ।

जिसका सत्य असत्य से कुछ भी निर्वचन न हो सके, उसी का नाम अनिर्वचनीय है । जैसे शुक्ति में रजत, आकाश मे नीलता,

रज्जु में सर्प, यह सब और अनिर्वचनीय है क्योंकि—सत्य होवे तो अधिष्ठान के ज्ञान से इनका नाश न हो, और यदि असत्य होवे तो इनकी प्रतीति न हो। परन्तु—इनकी प्रतीति होती है, और इनका नाश भी होता है। इस वास्ते यह अनिर्वचनीय है, और अनिर्वचनीय पदार्थ का अपने अधिष्ठान के साथ भेद अभेद भी नहीं कहा जाता है क्योंकि 'सत्य रूप' 'आनन्द रूप 'ज्ञान-रूप' चेतन अधिष्ठान ब्रह्म के साथ असत्रूप, दुःखरूप, जड़रूप प्रपंच का अभेद कदापि—नहीं हो सकता है, और भेद भी नहीं हो सकता है, क्योंकि—सत्य असत्य के अभेद में कोई दृष्टान्त नहीं मिलता है। इस वास्ते यह जगत् 'नास्ति' और 'अस्ति दोनों रूपों से नहीं कहा जाता है। इसी वास्ते विस्मय की तरह अर्थात् आश्चर्य की तरह) यह जगत् हमको प्रतीत होता है, अर्थात्—बिना हुए (मृग तृष्णा की तरह) प्रतीत होता है' ।

तू अस्ति भाति प्रिय रूप से सब जगत् परिपूर्ण है। तेरे बिना अणुमात्र जगत् भी भासे नहीं, तू चेतन पुरुष है तेरी चेतनता कभी लुप्त नहीं होती, तेरा स्वरूप अखण्ड है, जिसका कभी खण्ड नहीं होता। प्यारे हे बेटा! तू भय मत खावो मोगी जावोगा। इति।

पुत्रोवाच—हे मातु श्री! अब मेरे को मेरे सिवाय तीन लोक चौदा भुवन में दूसरा कोई नहीं दीखता। सबका मैं साक्षी हूं

मेरा साक्षी कोई नहीं। इतने वचन कचरा ने अपनी माता के प्रति कहे और चुप होगया। इति।

मातोवाच.––हे पुत्र! तूने मौन किससे लगाई है? तेरे कूँ मालुम है या नहीं मौन चार प्रकार की होती है, उस मे से तेने कौन सी मौन लगाई है? हे पुत्र! तू तेरी मौन खोल। और जिससे तेने मौन लगाई है? सो पदार्थ कौन है वो मेरे कूँ वता। हे पुत्र! तेरा स्वरूप "अवाङ् मनस गोचर है", तेरे कूं तीन लोक मे कोई दुःख देने वाला पदार्थ नहीं है, फिर हे पुत्र! तू मूर्ख की नाई जडत्व भाव फूं कैसे प्राप्त हुआ है? हे पुत्र! अन्तरङ्ग वृत्ति करके तू अपणे आपकूं देख और वहिरंग का अभाव कर। जवतक वहिरङ्ग वृत्ति का अभाव नहीं करेगा तव तक तेरी अन्तरङ्ग वृत्ति होणा असम्भव है। क्योंकि–हे पुत्र! एक म्यान मे दो तरवार नहीं रहतीं, एक म्यान में एक ही तरवार रहती है। हे पुत्र! तू साड़े तीन हाथ का क्यूं वनता है? हे पुत्र! तेरा स्वरूप शून्य नहीं तू शून्य का साक्षी है। शून्य तेरे कू नहीं जान सकती, शून्य तेरे करके सिद्ध होती है। देख! अवधूत महाराज भी यही कहते हैं:—

श्लोक —

सर्वं शून्यमशून्यञ्च, सत्यासत्यं न विद्यते॥
स्वभावभावतः प्रोक्तं, शास्त्रसंवित्ति–पूर्वकम्॥

(अवधूत गीता–१–७६)

अर्थात्—उस आत्मा में सम्पूर्ण जगत् शून्य की तरह है और आप उस शून्य से रहित है; किन्तु शून्य का भी साक्षी है। उस चेतन आत्मा में सत्य असत्य ये दोनों भी विद्यमान नहीं हैं, और शास्त्रोपदान पूर्वक स्वभाव से ही विद्वानों ने भावरूप करके कथन किया है।

मात हे पुत्र ! तू महापुरुषों का संग कर; और अपने अन्तःकरण से सब वासनाओं को दूर कर ! तेरा अन्तःकरण रूपी कपड़ा जब स्वच्छ होयगा तब हे बेटा ! तेरे कूं अति सुख होवेगा ! यासे हे बेटा ! भयो मत, भागो भाँगी जावोगा ॥इति॥

पुत्रोवाच—हे मातुश्री ! आज के चौथ रोज मैं तेरी आज्ञा से महापुरुषों की सभा में सत्संग करने के लिये गया था। हे माता ! सत्संग के तुल्य और कोई वस्तु जगत में नहीं आती। महात्मा तुलसीदास जी भी यही कहते हैं—

तात स्वर्ग अपवर्गसुख धरिए तुला इक अंग।
तुले न ताही सकल मिलि, जो सुख लव सत्संग ॥१॥
एक घड़ी आधी घड़ी आधी में पुनि आध।
तुलसी संगति साधु की, हरे कोटि अपराध ॥२॥

इस से आदि लेके अनेक ग्रंथों में अनेक महापुरुषों ने सत्संग की महिमा वर्णन की है। सत्संग करने से वा सन्तों के वचनों में श्रद्धा करने से, हे माता ! जड़बुद्धि व जड़दृष्टि का शीघ्र ही

अभाव हो जाता है। जब से मेरे कूं तूने कही, तब से मैंने हे मातु श्री ! नियम पूर्वक जहाँ २ महापुरुषों को सुणता हूँ उसी जगह पर मैं शीघ्र ही जाता हूँ और एकान्त बैठ के जो महापुरुष श्रीमुख से बोलते हैं, उसकूं श्रवण करता हूँ। तैंने कहा कि विना पढ़ेला परमात्मा कू प्रसन्न करके परमात्मा मे लीन हुए हैं, सो यथार्थ है। परन्तु हे मातुश्री ! कल के रोज महापुरुषन के मुखारविन्द से जो कथा श्रवण करने में आई सो तेरे कूँ सुनाता हू, श्रवण कर—

याज्ञवल्क्य, वामदेव, जड भरत, गुरु वशिष्ठ, शृङ्गी ऋषि, गौतम ऋषि इनसे आदि लेके और भी पढेलन का बहुत सा नाम लिया,परन्तु हे माता ! मेरे कूं इतना ही याद रहा। हे माता ! यह सब पढे ते हुए हैं, मामूली विद्या नहीं पढे थे, वरन् वे पुरुष विद्या के सागर थे, उनके लिखे हुए ग्रन्थ आज भी भरतखण्ड में मौजूद हैं और वे पुरुष निश्चल पद कूं प्राप्त हुए हैं। तू कैसे कहती है कि विना पढ़े प्रभु कू प्रसन्न करके प्रभु के स्वरूप में लीन हुए हैं। याते हे माता ! यह मेरी यत किंचित् शका है,उसका समाधान कीजिए। मेरे को तेरे समझाए विना स्वय अनुभव नहीं होता, याते शीघ्र ही समझा ॥ इति ॥

मातोवाच —हे पुत्र ! जिन पुरुषों का तूने नाम लिया है वो पुरुष बराबर विद्या के सागर ही हुए हैं इसमें सशय नहीं, तू सत्य वचन ही बोलता है। परन्तु हे बेटा, वे पुरुष केवल विद्या नहीं पढे थे, विद्या पढकर गुणी था और जो गुप्त रहस्य है सो गुण या, विना प्राप्त

करना असम्भव है। आज कल के पुरुष इनके लिखे ग्रन्थों को पढ़ते हैं व अर्थ भी अपनी मति के अनुसार लगाते हैं परन्तु गुप्त रहस्य को नहीं जानते। यातें विद्या भय के केवल मदान्ध हो जाते हैं। वे पुरुष गुप्त रहस्य को प्राप्त नहीं कर सकते। क्योंकि विद्या पढ़ने से व विद्या का गुप्त रहस्य जानने से इस जीव की चौरासी छूटती है। जब तक गुप्त रहस्य को नहीं जानते केवल अनात्मपदार्थ प्राप्त करके खाली विद्वानों का नाम रखाते हैं और गांव २ में कथा भागवत करते हैं। ये मूर्खता का लक्षण है। हे वेद्य! पण्डितजनों की सम दृष्टि होती है, विषम दृष्टि नहीं होती। क्योंकि—भगवत् गीता में भी मुख से श्रीकृष्ण भगवान पण्डितों के लक्षण वर्णन किये हैं वे लक्षण इन पुरुषों में नहीं आते, वे पुरुष विद्या का केवल अपमान करते हैं और अनधिकारियों को ब्रह्मविद्या का बोध कराते हैं और इन पुरुषों से याचना करते हैं। क्योंकि इनको कुछही बोध नहीं होता। जो बोध होता तो अज्ञानी जीवों की व पण्डितजन आशा क्यूं करते? यातें सिद्ध होता है कि ये पण्डित जन पुरुष भी अज्ञानियों के बड़े भाई हैं, खाली पण्डितों का नाम रखाया है, पण्डितों का जैसा उन पुरुषों में गुण नहीं। यातें ये पुरुष आशा के पात्र बन रहे हैं। हे पद्म! अभय पद को प्राप्त करना पण्डित जनों का वा ब्राह्मणों का मुख्य धर्म है। इस धर्म का इन पुरुषों को किञ्चिन्मात्र भी ख्याल नों

होना, तो वे पूरुष महान्ध नहीं होते। याते सिद्ध होता है कि-उनको गुप्त रहस्य का पता नहीं। गुप्त पद का पता लगणा महा कठिण है। हे पुत्र! जो तेने शंका की उसका मैंने तेरे प्रति मेरी मति के अनुसार समाधान किया। अब तेरे कूं जो शंका हो सो और पूछ, मैं तेरे पर बड़ी प्रसन्न हूं। हे पुत्र! याते तू भणे मत, आपां माँगी खावाँगा। इति।

पुत्रोवाचः—हे मातु श्री! मेरे कू जो ते अध्यात्म विद्या सुणाई सो अध्यात्म विद्या कैसी है कि-जिसको अग्नि जला नहीं सकतो, पाणी गला नहीं सकता, पृथ्वी शोषण नहीं कर सकती, आकाश अवकाश दे नहीं सकता, वायु रोक नहीं सकता। ऐसी अध्यात्म विद्या है; जिसकी मैं एक मुख से महिमा वर्णन नहीं कर सकता। उस विद्या का हे मातु श्री! तेरी कृपा से मेरे कू कुछ रहस्य मिला है। याते—अब मैं समाधि लगाता हूँ तू मेरे को आज्ञा दे। तेरी आज्ञा बिना मै कुछ नहीं कर सकता, क्योंकि तू मेरी गुरू है, तू जो वचन मेरे कूं कहेगी उस वचन का मैं पालन करूँगा। इति।

मातोवाच.—हे पुत्र जो तेने अध्यात्म विद्या की महिमा करी सो अध्यात्म विद्या महिमा करणे के योग्य ही है। परन्तु—बेटा तेने जो कहा कि-मैं समाधि लगाता हूँ, सो तू समाधि किससे लगाता है? महात्मा श्री तुलसीदास की तो साखी है कि—

जड़ चेतन गुण दोष मय, विश्व कीन करतार ।
संत हंस गुण गहहि पय परिहरि बारि बिकार ॥

यातें सन्तों की जैसी हंस कीसी वृत्ति कर। जैसे हंस बारि का परित्याग करके स्वच्छ दुग्ध का पान करता है, वैसे तू भी अनात्म पदार्थों का तरफ से मौन लगा और दूध का भी दूध जो तेरा स्वरूप है, उसका प्रेम पूर्वक पान कर।

हे पुत्र ! एक 'जड़' और दूसरा 'चेतन' दो पदार्थ ब्रह्माण्ड में हमारे में आते हैं। हे पुत्र ! जड़ में समाधि लगाणा असम्भव है, क्योंकि वो स्वरूप से ही जड़ है। जिसको अपने आप का ज्ञान नहीं, वह दूसरे पदार्थ कूं कैसे प्रकाश कर सकते हैं ? यातें जड़ में समाधि लग नहीं सकती। क्योंकि—वो निरंजन निराकार है। यातें—हे बेटा ! तू किसकी समाधि लगाता है ? मेरे कूं बता।

इन दोनूं पदार्थों से तीसरा पदार्थ मेरी दृष्टि में वा सुनने में आता नहीं तेरेकूं समाधि लगाने की भावना कैसे उत्पन्न हुई ? हे पुत्र ! कोई मूर्खों का तेरे कूं सत्संग तो नहीं हुआ ? मेरे कूं ऐसा निश्चय होता है कि—हे बेटा ! तू बच्चा है तेरे कूं किसी मूर्ख ने बहका दिया है; यातें—हे पुत्र ! जो कुछ सच्चा हाल हो; सो मेरे कूं कह। हे पुत्र ! पातञ्जल सूत्र में भगवान् पतञ्जली ने समाधि का मार्ग बताया है परन्तु—उस ऋषि के आशय कूं अज्ञानी जीव नहीं जान सकते, क्योंकि वो गुप्त रहस्य है।

केवल हठ करके आपणी आयु कूँ बर्बाद करते है, समाधि का उनकूँ पूरा पूरा पता नहीं—

"योगश्चित्तवृत्तिनिरोध"

और. अध्यात्मविद्या ह्यधिका, साधु संगम मेव च ।
वासनाया: परित्यागश्चित्तवृत्तिनिरोधनम् ।।

हे पुत्र ! जो वसिष्ट भगवान् ने उपरोक्त श्लोक श्रीराम परमात्मा के प्रति कहा है और दत्त भगवान् ने भी वैसा श्रीमुख से कहा है, सो हे पुत्र ! तूभी उस श्लोक में लिखे मूजिब करेगा, तब तेरे कूँ समाधि का पता लगेगा । याते तू बारम्बार विचार कर और पाखण्डियों का संग छोड । महापुरुषों का निष्कपटी होकर सत्सग कर । तू समाधि का सिद्ध करनेवाला है, तेरे कूँ समाधि सिद्ध करनेवाली नहीं है । हे पुत्र ! मरी हुई गौ का दूध नहीं निकलता जिन्दी गौ का सब दूध निकालते हैं, याते समाधि की वासना दूर कर और अपने स्वरूप को देख । जड से क्यों सिर फोडता है ? तिलों बिना तेल नहीं निकलता । समाधि का अष्टाँग है । वह जड है । हे पुत्र ! कुछ विचार कर, क्यों मेरा शिर पचाता है ? याते हे बेटा ! भणे मत आपाँ मागी खावाँगा ।। इति ।।

पुत्रोवाच —हे मातु श्री ! जो तैंने समाधि का प्रकरण सुनाया सो मैंने साँगापाँग श्रवण किया । अब हे मातु श्री ! मेरे

कूँ समाधि की तरफ से अत्यन्त वैराग्य हुआ है, मैं सत्य कहता हूँ, मेरी रति मात्र राग नहीं। हे माता ! अब मैं सबका साक्षी व सब का द्रष्टा व सब पदार्थों का प्रकाश करने वाला हूँ। ऐसा तू भी कहती है और महापुरुष भी कहते हैं और मैंने भी अन्वय व्यतिरेक करके जाण्या है। अब हे माता ! मैं तेरे से किसी बात की शंका करूंगा नहीं। क्योंकि मैं शंका करता हूँ तब तेरे कूँ हे माता दु:ख होता है, शंका का समाधान करना महाकठिन है। तेरी कृपा से मैं निशंक हुआ हूँ, मैं कपरा नहीं, मैं कपरा का जानन्वाला हूँ। हे माता ! तेरी कृपा से मेरे को ऐसा अनुभव हुआ है, याते मेरी तरे को बारम्बार नमस्कार है। हे मातु श्री ! अज्ञान जीवों की नाईं मैंने अज्ञानी बन-बन के तेरे से अनेक प्रकार की शंकायें करी, तथापि हे माता ! मेरी तरफ से तेरे कूँ रति मात्र भी घृणा उत्पन्न नहीं हुई। याते हे माता ! आपकी जय हो ! जय हो !! जय हो !!!—

धन्य धन्य माता तुझे, धन्य मोर बड़ भाग।
कथा कही अद्भुत सरस, सुण कर कीनो राग ॥१॥
ले आज्ञा सुत मात से, गये राज को त्याग।
राणी धन्य मदालसा, रति न कीनो राग ॥२॥

हे माता ! अब मेरे को भी शीघ्र ही आज्ञा दीजिए, मैं भी महाघोर बन में जाऊँगा। प्रभु के भजन करने का एकान्त स्थान होता है—मेरे को निश्चय हुआ है तू मेरे से ममता मत करे मैं

तेरा पुत्र नहीं, तू मेरी माता नहीं। हे मातु श्री! भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, विचार व जीवन-मुक्ति का विचार आनन्द संघात का संग त्यागे विना नहीं आता है, याते हे मातु श्री! मेरे कूं आज्ञाकर

॥ इति ॥

मातोवाच—हे पुत्र! तू एकान्त स्थल मे जाने की जिज्ञासा करता है, और मुझसे बात तू ब्रह्म-ज्ञान की करता है। हे पुत्र! तू वाचकज्ञानी तो नहीं है? हे पुत्र! वाचक-ज्ञान से तेरा कोई कार्य सरेगा नहीं। हे पुत्र! ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक सापेक्ष्य ज्ञान होता है, और दूसरा निरपेक्ष्य ज्ञान होता है। किसी की सहायता से जो ज्ञान होता है सो सापेक्ष्य ज्ञान कहा जाता है, और जहा किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं सो निरपेक्ष्य ज्ञान कहा जाता है, याते हे पुत्र! तेरे वचनों से ऐसा सिद्ध होता है, किन्तु किसी की सहायता लेकर के ऐसा वचन बोलता है। स्वयं–विज्ञानियों की नाई नहीं बोलता, याते हे पुत्र! तू सत्य वचन बोल और प्रभु कूँ प्रथम प्रसन्न कर। हे पुत्र! प्रभु को प्रसन्न करने की यही तेरे कूँ युक्ति बताती हूँ। पूर्व भी तेरे कूं अनेक युक्तियाँ बताई थीं।

हे पुत्र! तन, मन, धन, वाचा प्रभु के अर्पण किये बिना प्रभु प्रसन्न नहीं होता। याते तैने तन, मन, धन, वाचा प्रभु के अर्पण करी या नहीं? तेरे वचनों से सिद्ध होता है कि—तेरे को

पूरा पूरा देहाभिमान है। हे पुत्र ! भक्ति व ज्ञान देहाभिमान के गले बिना दोनूं पदार्थों की सिद्धि नहीं होती, यातें तेरे कूं भक्त व ज्ञानी बनना हो तो पूर्व अवस्था में जैसे भक्त और ज्ञानी हुए हैं सो हे पुत्र, वे निष्कपटी हुए हैं; तेरी नाईं वाचाल नहीं हुए। हे पुत्र ! अब तू मेरा वचन मान और अब वर्गों से ममत्व हटा तत्पश्चात् हे पुत्र ! तेरे पर प्रभु स्वतः ही प्रसन्न होवेंगे। तब तब तेरा बोल चाल, बैठ-उठ भक्त अवस्था की नाईं नहीं रहेगी। यातें हमारे कूं तेरे व्यवहार से मालूम पड़ जायगी तेरे कहने की कोई अपेक्षा नहीं रहेगी।

भक्त व ज्ञानी का हे पुत्र ! व्यवहार से पता लगता है। उनको मुख से कहने से वाचक-ज्ञानी कहा जाता है, यातें हे पुत्र, कुछ समझ और अपने मन मायौं दोनू मां बेटा माँगी जावांगा।

पुत्रोवाच —हे मातु श्री ! जो तैंने मदालसा की कथा मेरे प्रति सुनाई, सो हे माता ! मैंने प्रेम से श्रवण करी और हे माता ! भक्तों व ज्ञानियों का जो स्वरूप कहा सो भी मैंने प्रेम से श्रवण करा। हे माता ! मेरे कूं मेरी देह में बहुत दिनों से प्रेम है, अब तेरी कृपा से मैं उस देह से प्रेम शनै शनै हटाऊँगा और भक्तों की नाईं मैं भी तन मन, धन आपा प्रभु के अर्पण करूँगा।

हे माता ! मेरे कूं यह मालूम नहीं था कि—यह प्रभु की है। हे मातुश्री ! पूर्व अवस्था में तैंने मेरे कूं उपदेश किया था,

परन्तु हे माता, वह उपदेश मेरी बुद्धि से विस्मरण होगया और हे माता ! अब मेरे भणने से अत्यन्त घृणा हुई है। हे माता ! मैं तो एक प्रभु का नाम ही भणूँगा। मेरी राग भणने पर अब रति मात्र नहीं है। केवल तेरे वचनों में मेरी राग है। हे माता तू मेरी गुरु है। हे माता ! पूर्व अवस्था में जो वचन मैंने तेरे कूं कहा था सो हे माता—निश्यात्मक बुद्धि से नहीं कहा था, तू मेरे अन्दर के हाल जानती है, याते मेरी गुरु है। तेरे कोई बात छिपी नहीं। हे माता ! अब मैं भिक्षा माग के खाऊँगा और तेरे वचनों का पालन करूँगा, मेरे को प्रभु प्रसन्न करने की सरलयुक्ति बता। पूर्व जो भक्त हुए हैं, उन्होंने मेहनत करके दो पैसा पैदा करके अपने बाल-बच्चों को पाला है, और अपने प्राणों की शान्ति करी है। भक्तों का काम माग के खाने का नहीं। भिक्षा माग करके खाना केवल सन्तों का काम है। भक्तों का काम नहीं ! हे माता ! अब जो आगे तू कहे सो मैं करूँ। इति ।।

मातोवाच —

हे पुत्र तेरे कूं भक्त होना हो तो परम भक्त श्रीमारुतीजी महाराज हुये हैं। वे प्रभु की शरण अष्ट प्रहर चौंसठ घड़ी रहे हैं। हे पुत्र, देह—दृष्टि से वे प्रभु के दास थे, और जीव—दृष्टि से प्रभु के अंश थे और आत्मदृष्टि से वह प्रभु की आत्मा ही थे, ऐसी उनकी दृढ़ निश्चल मति थी।

देहबुद्ध्या तु दासोऽहं, जीवबुद्ध्या त्वदंशक ।
आत्मबुद्ध्या त्वमेवाहं, इति मे निश्चिता मतिः ॥

तब हे पुत्र ! प्रभु उनके ऊपर अत्यन्त प्रसन्न हुए थे। हे पुत्र ! तेरे को भक्त बनना हो तो क्षमा के खाना और मारुती जी की नाई तू भी प्रभु को जैसे मारुती जी ने प्रसन्न किया, वैसे तू भी करना; यह भक्तों के लक्षण हैं। सामान्य रीति से दर्शाया है। हे पुत्र ! और ज्ञानी बनना, हो तो जड़ भरत महाराज की नाई बनना। एक कोई चोरों का राजा था। देवी के बलिदान के निमित्त किसी आदमी की उस जरूरत हुई थी। उसने अपने जल्लादों को हुक्म दिया कि कोई लावारिसी आदमी हूँ पकड़ के लाओ। अल्लाद अपने स्वामी का आज्ञा लेकर राजा की बस्ती स दस कोस लगी पर एक महाभयंकर झाड़ी थी, वहाँ जल्लाद गए। उस झाड़ी में परमहंस जड़ भरत कैसा है कि उनके शरीर पर हिन्दु का चिन्ह—यही व्यवस्था स रहने थ अल्लादों न महाराज—शरीर कू देखा, और निश्चय किया कि बराबर य लावारिसी पुरुष है, इसको ले चलो। जो राजा न कहा वह सब अरज का मिल हुआ है। चलो—देरी मत करो। उन जल्लादों ने महाराज शरीर का दोनों भुजायें पकड़ली और राजा के पास ले गए। हे पुत्र ! जल्लादों न महाराज शरीर का नगाकरके राजा के सम्मुख खड़ा कर दिया। राजा

ने हुक्म दिया कि इनकूं बगीचे में ले जाओ और इनकूँ स्नान कराओ, सुन्दर खाना खिलाओ, रात्रि कूं नौ बजे देवी के बलिदान के समय जल्लादो ! तुम इनको लाना। हे पुत्र ! रात्रि के नौ बजे जब देवी बलिदान का समय हुआ तब जल्लाद महाराज श्रीकूं देवी के मन्दिर मे लाये और लाकर के देवो के सन्मुख खड़ा कर दिया। हे पुत्र ! राजा ने अपने पुरोहित से कहा—इस पुरुप का शोश काट के देवो को चढ़ाओ। समय होगया है—देरी मत करो, देवी नाराज हो जायगी। हे पुत्र ! इतना वचन राजा का सुन करके राज-पुरोहित ने जल्लादो से कहा कि इसका सिर तलवार से काटो। हुक्म देते ही जल्लाद महाराज श्री का सिर काटने को खड़े हुये, और म्यान से तलवार काढने लगे। हे पुत्र ! उस समय देवी-मन्दिर में हजारों आदमी बैठे हुये थे। हे पुत्र ! महाराज श्री ज्ञान-विज्ञान की मूर्ति थे, देवी कम्पायमान होकर—महाराज श्री-को देख करके राजा को उस सभा में बोलती भई—'हे राजा ! तू अधा तो नहीं है। तू मेरे कूं किसका बलिदान देता है ? हे अज्ञानी राजन् ! ये अवधूत जड़ भरत साक्षात् त्रिभुवन नाथ हैं। तेरे कूं इनका पता नहीं। याते तू अपने हाथ जोड के इनके चरणों मे पड और अपनी माफी चाह, नहिं तो यह जड भरत तेरे कू और मेरे कू भस्म कर देंगे। हे राजन् ! तू और

मैं इन महापुरुषों के संकल्प से बने हुए हैं, तू इस सड़ामा राज्य को प्राप्त करके महान्ध हुआ है। महात्मा जड़ भरत के बड़प्पन को तेरे को पता नहीं। हे राजन! तेरे जल्लादों ने व तेरे नौकरों ने व तेरे वजीर ने व मैंने महाराज की बहुत ताड़ना की है, तदपि महापुरुष जड़ भरत अपने निश्चय से नहीं हटे हैं, ये ही इनमें एक बड़ा भारी बड़प्पन है। हे राजन! मैंने कितनी ताड़ना की तदपि महाराज श्री मधुर होकर के सब तेरे तरफ देखते रहे और तेरे से कुछ भी नहीं कहा। हे पुत्र! ज्ञानी बनना हो तो महापुरुष जड़ भरत की नाईं बनना। ख्याली ज्ञानियों का नाम नहीं रखवाना, ख्याली ज्ञानियों की तो बात नहीं करना। पुत्र! जान सब को प्यारा है। शीश कटने की तैयारी हुई और जल्लाद ने हाथ में खड्ग म्यान में से काढ़ भी लिया, तथापि महापुरुष अपने मुख से कुछ नहीं बोलते भये। और हे राजन! इनकी पूजा कर और क्षमा मांग। राजा ने तद्वत् किया अस्तु, हे पुत्र! देख, राजा रहूगण की सभा में अभाव पकड़ कर लाये, तब भी महाराज आनन्दमय थे और सभा में लेकर के खड़ा किया तब भी आनन्दमय थे। हे पुत्र! जड़ भरत महापुरुष को देह में रत्ति-मात्र अध्यास नहीं था। केवल अपने आप में मगन थे। हे पुत्र! जड़ भरत व राजा रहूगण की कथा भागवत में लिखी हुई है। मैं पढ़ी हुई नहीं हूँ। महापुरुषों के सत्संग में यह इतिहास मैंने श्रवण किया था। जितनी मेरे को याद थी

इतनी मैंने तेरे कूं सुनाई। हे पुत्र! ज्ञानी बनना हो तो जड़ भरत की नाईं बनना। ज्ञानी बनना सहज नहीं।

देहाभिमानं गलते, विद्यते परमात्मने।
यत्र यत्र मनोयाति, तत्र तत्र समाधयः ॥१॥

हे पुत्र! जड़ भरत की सब पदार्थों मे समबुद्धि थी। ज्ञानी पुरुष किसी से भय मानते नहीं। वह पुरुष निर्भय पदवी कूं प्राप्त हुए हैं, और स्थावर जंगम दृष्यमान जड़, वर्ग पदार्थ उनको सब शून्य दीखते हैं। वह स्वयं चेतन पुरुष हैं शून्य के साक्षी को चेतन कहते हैं। हे पुत्र! तैंने कहा कि—मैं भणूंगा नहीं। मेरे को भणने की तरफ़ से अत्यन्त घृणा हुई है, सो हे पुत्र! कहने से कुछ नहीं होता। करके दिखावेगा तब मैं स्वयं जानलूंगी। जैसे परमभक्त मारुतीजी महाराज व ज्ञान—विज्ञान की मूर्त्ति अवधूत जड़ भरत जी महाराज इन्होंने जैसा कहा वैसा करके दिखाया।

हे पुत्र! तूं भी करना हो तो ऐसा ही करना, नहीं तो उभय लोक से भ्रष्ट हो जायगा। मैं तेरी माता मोहिनी यह तेरे प्रति सत्य कहती हूँ। तू एकान्त मे बैठ करके मेरे ऊपर कहे हुए वचनों का विचार कर।

पुत्रोवाचः—

हे मातुश्री। तैंने भक्तों की व ज्ञानियों की मेरे कूं कथा

में इन महापुरुषों के संकल्प से बने हुए हैं, तू इस सहासा राज्य को प्राप्त करके महान्ध हुआ है। महात्मा जड़ भरत के बड़प्पन का तेरे को पता नहीं। हे राजन्! तेरे जल्लादों ने व तेरे नौकरों ने व तेरे वजीर ने व तेने महाराज की बहुत ताड़ना की है, तदपि महापुरुष जड़ भरत अपने निश्चय से नहीं हटे हैं, ये ही इनमें एक बड़ा भारी बड़प्पन है। हे राजन्! तैने कितनी नादानी की तदपि महाराज भी अफुर होकर के सब तेरे दुःख सहते रहे और तेरे से कुछ भी नहीं कहा। हे पुत्र! स्वामी बनना हो तो महापुरुष जड़ भरत की नाई बनना। झूठी ज्ञानियों का नाम नहीं रखवाना, झूठी ज्ञानियों की सी बात नहीं करना। पुत्र! जान सब को प्यारा है। शीश कटन की तैयारी हुई और जल्लाद ने हाथ में खड्ग म्यान में से काढ़ भी लिया, तथापि महापुरुष अपने मुख से कुछ नहीं बोलते भये। और हे राजन्! इनकी पूजा कर और क्षमा मांग। राजा ने तद्वत् किया अस्तु हे पुत्र! देख, राजा रहूगण की सभा में जल्लाद पकड़ कर ले गये, तब भी महाराज आनन्दमय थे, और सभा में लेकर के खड़ा किया तब भी आनन्दमय थे। हे पुत्र! जड़ भरत महापुरुष को देह में रंचि-मात्र अध्यास नहीं था। केवल अपने आप में मगन थे। हे पुत्र! जड़ भरत व राजा रहूगण की कथा भागवत में लिखी हुई है। मैं पढ़ी हुई नहीं हूं। महापुरुषों के सत्संग में यह इतिहास मैंने श्रवण किया था। जितनी मेरे को याद थी

हे पुत्र ! निश्चय में फ़र्क नहीं । तेरे को भक्त बनना है वा सन्त बनना है ? शीघ्र ही बोल । हे पुत्र ! तू गृहस्थ नहीं है—तू सन्त है । भले मैं तेरे कूं वारम्वार कहती हूँ कि तू भरणे मत आपां माँगी खावांगा । तेरे स्त्री नहीं, तेरे पुत्र नहीं, तेरी माता मैं मोहिनी नहीं । हे पुत्र ! तू गृहस्थो कोई जगह से सिद्ध नहीं होता तू मेरे को सन्त दीखता है याते मैं तेरे कूं वारम्वार कहती हूँ हे बेटा ! मरणे मत आपां दोनों माँ—बेटा माँगी खवाँगा ऐसा बोध करती रही । तेरी अक्ल अब मुकाम पर आई है तत्पश्चात् तैंने ऐसी मेरे से शंका करी है । हे पुत्र ! जो तूने शंका की उसका तेरे कूं मैंने समाधान किया । अब हे पुत्र ! शीघ्र ही तू निर्द्वन्द हो करके जैसे रानी मदालसा के पुत्र, घर से निकल करके महाघोर वन को गए थे । ऐसे ही तू भी लकडी मट्टी के घर से व हाड के साढ़े तीन हाथ के घर से उपराम वृत्ति करके महाघोर वन को जा । वहां जीवन-मुक्ति का आनन्द लेना । हे पुत्र ! तपोभूमि मे गए बिना तप की सिद्धि नहीं होती है । तेरे मेरे में ममता रतिमात्र नहीं है । हे पुत्र ! ममता किसमें करता है ? सो मेरे कू बता । इतने वचन कचरा अपनी मातुश्री का सुन करके और जो गुप्त तत्व का बोध अपनी मातुश्री ने किया था सो अपनी बुद्धि में दृढ निश्चय करके वनमें जाने को तैयार हुआ । उक्त वचन सुन करके कचरा की माता कचरा से बोलती भई कि—हे पुत्र ! तेरे को मैं एक कथा और सुनाती हूँ—तू श्रवण कर—

सुनायी। सो कथा कैसी है, जिसके श्रवण करते ही मेरे रोमांच खड़े होगए हैं। हे मातुश्री! भक्तों ने कमा के खाया है और प्रभु को प्रसन्न किया है। अनर्थ उन्होंने अपनी जिन्दगी में कोई किया नहीं। हे मातुश्री! मैं मूलचन्द भक्त का लड़का हूं। तू कहती है कि आपां मांगी खावांगा, मतो मत। सो हे माता! भक्त मांग के खाते नहीं, कमा के खाते हैं सो हे माता! मेरे कूं तू ऐसा बोध क्यों करता है कि—आपां दोनूं मां-बेटा मांगी खावांगा? हे मातुश्री! मैं तेरे इस गुप्त आशय कूं नहीं समझा-मेरे को सुलझा करके समझा।

मातोवाच—

हे पुत्र! जो तैंने कहा कि "*भक्त मांग के नहीं खाते हैं, कमा* के खाते हैं और मेरे कूं मांग के खाने का तू बोध क्यों करती है?" ऐसी जो तैंने शंका करी है, सो हे पुत्र! तेरे को भक्त बनना है या सन्त बनना है? सन्त बनना हो तो पूर्व सन्तों के स्मरण करे हैं—वैसे और भक्त बनना हो तो पूर्व भक्तों के स्मरण करे हैं वैसा हो। हे पुत्र! दोनों में से जो तेरे को अच्छा दीखे सोकर। हे पुत्र। सन्त में और भक्त में व्यवहार से भेदा सा कुछ दीखता है, और परमार्थ से भक्त की और सन्त की निश्चयात्मक बुद्धि एक ही है।

भक्त-भक्ति-भगवन्त गुरु, चतुर नाम वपु एक।
जिनके पद वन्दन किए, नाशत विघ्न अनेक॥

हे पुत्र ! निश्चय मे फ़र्क नहीं । तेरे को भक्त बनना है वा सन्त बनना है ? शीघ्र हो बोल । हे पुत्र ! तू गृहस्थ नहीं है—तू सन्त है । भले मै तेरे कूं बारम्बार कहती हूँ कि तू भरणे मत आपां माँगी खावागां । तेरे स्त्री नही,तेरे पुत्र नहीं, तेरी माता मैं मोहिनी नहीं । हे पुत्र ! तू गृहस्थो कोई जगह से सिद्ध नहीं होता तू मेरे को सन्त दीखता है याते मैं तेरे कूं बारम्बार कहती हूँ हे बेटा ! मरणे मत आपां दोनों माँ—बेटा माँगी खावाँगां ऐसा बोध करती रही । तेरी अक्ल अब मुकाम पर आई है तत्पश्चात् तैंने ऐसी मेरे से शंका करी है । हे पुत्र ! जो तूने शका की उसका तेरे कूं मैंने समाधान किया । अब हे पुत्र ! शीघ्र ही तू निर्द्वन्द हो करके जैसे रानी मदालसा के पुत्र, घर से निकल करके महाघोर वन को गए थे । ऐसे ही तू भी लकड़ी मट्टी के घर से व हाड के साढ़े तीन हाथ के घर से उपराम वृत्ति करके महाघोर बन को जा । वहां जीवन-मुक्ति का आनन्द लेना । हे पुत्र ! तपोभूमि में गए बिना तप की सिद्धि नहीं होती है । तेरे मेरे में ममता रतिमात्र नहीं है । हे पुत्र ! ममता किसमे करता है ? सो मेरे कूं बता । इतने वचन कचरा अपनी मातुश्री का सुन करके और जो गुप्त तत्व का बोध अपनी मातुश्री ने किया था सो अपनी बुद्धि में दृढ निश्चय करके वनमें जाने को तैयार हुआ । उक्त वचन सुन करके कचरा की माता कचरा से बोलती भई कि—हे पुत्र ! तेरे को मैं एक कथा और सुनाती हूँ—तू श्रवण कर—

एक कोई गृहस्थ था, सो वो अपने गृहस्थाश्रम कूं त्याग करके महापुरुषों के शरण जा करके सन्यास को लेता भया, कोई काल तक उस पुरुष ने तीर्थों में वास किया और बड़े बड़े महापुरुषों का सत्संग किया। अध्यात्म-विद्या के ग्रन्थों का अवलोकन किया। हे पुत्र! तीन वर्ष तक उस पुरुष ने तीर्थों में निवास किया। काल पा करके एक दिन मन में विचार किया कि देशान्तर में विचरें। महात्मा वहाँ से दूसरे दिन चल दिये। और फिरते पाँच सात वर्ष व्यतीत हुए। तब महात्मा का शरीर वृद्ध होगया। तो एक ग्राम से दो कोस खेती ऊपर एक झाड़ी थी वहाँ महात्मा जा करके बैठ गये, और अपने रहने के लिए जगह साफ करने लगे, अपने हाथों से छोटी सी झोंपड़ा बनाई, अनेक प्रकार के झाड़ लगाये। और अपनी झोंपड़ी से पच्चीस कदम खेती के ऊपर अपने हाथों से एक छोटा सा तालाब खोदा। उस तालाब में पानी बारहोंमास तक रहने लगा। हे पुत्र! महात्मा-पुरुष के रहने से वह जगह बहुत ही रमणीक हो गई और हरिजन बहुत से आने जाने लगे और बहुत सी गौ भैंस, बकरी, पशु इत्यादि पानी पीने को आने लगे, हरिजन महापुरुष की सेवा भी करने लगे। एक दिन एक वृद्ध गौ पानी पीने का उस तालाब में आई, गर्मी के दिन थे, पानी उस तालाब में थोड़ा रह गया था। और कीचड़ बहुत था। उस कीचड़ में गौ का दोनों अगला और

पिछला पग गच गए। पानी पीने न पाई और अधबिच में उसने प्राण त्याग दिया। प्राण त्यागते ही हत्या आई और महात्मा जी से जाकर बोली कि "हे महात्मा जी ! मैं हत्या हू, तुमने तुम्हारे हाथन से तालाब खोदा है। उस तालाब में आज गऊ कीचड़ में गच करके मर गई है, याते ताऊाब के बनानेवाले आप हो, मैं हत्या आपके लगूंगी"। हत्या का वचन सुन करके महात्माजी बोलते भये। "हे हत्या ! हाथों के देवता इन्द्र हैं उसने हो ताऊाब खोदा है मैंने नहीं खोदा। मैं असग पुरुष हूँ। हे हत्या तू इन्द्र के पास जा और इन्द्र के ही लग"। इतने वचन हत्या महापुरुषन का सुन करके शीघ्र ही इन्द्र के पास गई। और इन्द्र से कहने लगी कि "हे इन्द्र ! मैं हत्या हू तैंने तेरे हाथ से ताऊाब खोदा है, उसमे आज गऊ मर गई है, मैं तेरे लगूंगी"। इतने वचन इन्द्र हत्या का सुन करके इन्द्र हत्या से बोलता भया'—

हे हत्या ! इस महात्मा ने (तीस + सात) = सैंतीस वर्ष फकीरी करी तदपि हत्या, अन्त मे अनात्म पदार्थों मे ममत्व करके तालाब, बगीचा व मढी, चेला-चेली पदार्थ इकट्ठा करने लगा। अब सिर पे हत्या आके पड़ी तब वेदान्ती बना और तेरे मे कहने लगा कि हाथा का देवता इन्द्र है, उसके जाकर तू लग, मैं सच्चिदानन्द हूँ। हे हत्या ! यह महात्मा अपने मुख से सत्य वचन नहीं बोलता। तद्दन ? असत्य बोलता है। हे हत्या !तू मेरे

एक कोई गृहस्थ था, सो वो अपने गृहस्थाश्रम कूं त्याग करके महापुरुषों के सरण आ करके सन्यास को लेता भया, कोई काल तक उस पुरुष ने तीर्थों में वास किया और बड़े बड़े महापुरुषों का सत्संग किया। अध्यात्म-विद्या के ग्रन्थों का अवलोकन किया। हे पुत्र! तीन वर्ष तक उस पुरुष ने तीर्थों में निवास किया। काल पा करके एक दिन मन में विचार किया कि देशान्तर में विचरें। महात्मा वहाँ से दूसरे दिन चल दिये। और फिरते २ पाँच सात वर्ष व्यतीत हुए। तब महात्मा का शरीर वृद्ध होगया। सो एक ग्राम से दो कोस टेकरी ऊपर एक झाड़ी थी वहाँ महात्मा आ करके बैठ गये, और अपने रहने के लिए जगह साफ करने लगे, अपने हाथों से छोटी सी झोंपड़ी बनाई, अनेक प्रकार के झाड़ लगाये। और अपनी झोंपड़ी से पच्चीस कदम टेकरी के ऊपर अपने हाथों से एक छोटा सा तालाब खोदा। उस तालाब में पानी बारहोंमास तक रहने लगा। हे पुत्र! महात्मा-पुरुष के रहने से वह जगह बहुत ही रमणीय हो गई और हरिजन बहुत से आने जाने लगे, और बहुत सी गौ भैंस, बकरी पशु इत्यादि पानी पीने को आने लगे, हरिजन महापुरुष की सेवा भी करने लगे। एक दिन एक वृद्ध गौ पानी पीने का उस तालाब में आई, गर्मी के दिन थे, पानी उस तालाब में थोड़ा रह गया था। और कीचड़ बहुत था। उस कीचड़ में गौ का दोनों अगला और

पिछला पग गच गए। पानी पीने न पाई और अधबिच मे उसने प्राण त्याग दिया। प्राण त्यागते ही हत्या आई और महात्मा जी से जाकर बोली कि "हे महात्मा जी! मैं हत्या हू, तुमने तुम्हारे हाथन से तालाब खोदा है। उस तालाब में आज गऊ कीचड़ में गच करके मर गई है, याते ताळाब के बनानेवाले आप हो, मैं हत्या आपके लगूंगी"। हत्या का वचन सुन करके महात्माजी बोलते भये। "हे हत्या! हाथों के देवता इन्द्र हैं उसने ही ताळाब खोदा है मैंने नहीं खोदा। मैं असंग पुरुष हूँ। हे हत्या तू इन्द्र के पास जा और इन्द्र के ही लग"। इतने वचन हत्या महापुरुषन का सुन करके शीघ्र ही इन्द्र के पास गई। और इन्द्र से कहने लगी कि "हे इन्द्र! मैं हत्या हू. तैने तेरे हाथ से ताळाब खोदा है, उसमे आज गऊ मर गई है, मैं तेरे लगूंगी"। इतने वचन इन्द्र हत्या का सुन करके इन्द्र हत्या से बोलता भया —

हे हत्या! इस महात्मा ने (तीस + सात) = सैंतीस वर्ष फ़कीरी करी तदपि हत्या, अन्त मे अनात्म पदार्थों में ममत्व करके तालाब, बगीचा व मढी, चेला-चेली पदार्थ इकट्ठा करने लगा। अब सिर पे हत्या आके पडी तब वेदान्ती बना और तेरे मे कहने लगा कि हाथा का देवता इन्द्र है, उसके जाकर तू लग, मैं सच्चिदानन्द हूँ। हे हत्या! यह महात्मा अपने मुख से सत्य वचन नहीं बोलता। तहन? असत्य बोलता है। हे हत्या! तू मेरे

एक कोई गृहस्थ था, सो वो अपने गृहस्थाश्रम कूं त्याग करके महापुरुषों के शरण आ करके सन्यास को लता भया, कोई काल तक उस पुरुष ने तीर्थों में वास किया और बड़े बड़े महापुरुषों का सत्संग किया। अध्यात्म-विद्या के ग्रन्थों का अवलोकन किया। हे पुत्र! तीन वर्ष तक उस पुरुष ने तीर्थों में निवास किया। काल पा करके एक दिन मन में विचार किया कि देशान्तर में विचरें। महात्मा वहाँ से दूसरे दिन चल दिए। और फिरते पाँच सात वर्ष व्यतीत हुए। तब महात्मा का शरीर वृद्ध होगया। सो एक ग्राम से दो कोस दूरी ऊपर एक झाड़ी थी वहाँ महात्मा आ करके बैठ गए, और अपने रहने के लिए जगह साफ करने लगे, अपने हाथों से छोटी सी झोंपड़ी बनाई, अनेक प्रकार के झाड़ लगाए। और अपनी झोंपड़ी से पच्चीस कदम दूरी के ऊपर अपने हाथों से एक छोटा सा तालाब खोदा। उस तालाब में पानी बारहोंमास तक रहने लगा। हे पुत्र! महात्मा-पुरुष के रहने से वह जगह बहुत ही रमणीय हो गई और हरिजन बहुत से आने जाने लगे और बहुत सी गौ भैंस, बकरी, पशु इत्यादि पानी पीने को आने लगे, हरिजन महापुरुष की सेवा भी करने लगे। एक दिन एक वृद्ध गौ पानी पीने को उस तालाब में आई गर्मी के दिन थे, पानी उस तालाब में थोड़ा रह गया था। और कीचड़ बहुत था। उस कीचड़ में गौ का दोनों अगला और

हे पुत्र ! दूसरी कथा और श्रवण कर—एक कोई महात्मा थे, उसने एक गृहस्थ के लड़का को अपना चेला बनाया। महात्मा कैसे थे—साक्षात् विष्णु रूप थे। अपने शिष्य पर जब प्रसन्न होते तब अपने श्री मुख से ऐसे वचन बोलते—"शिष्य ! कुछ बनना नहीं, जो कुछ बनेगा तो अत्यन्त मार खायगा। एक दिन दोनूं गुरू-शिष्य हरिद्वार को यात्रा करने के निमित्त निकले। रास्ते में दिन अस्त होगया, थोड़ी छेटी ऊपर एक बगीचा था, उसमें दोनू गुरु चेला गये, वहां पर एक अमीर आदमी की कोठी बन रही थी। उस कोठी में जाकर के दोनूं गुरु चेला अपना आसन लगा-कर रात्रि कू सोये, मध्य रात्रि के बारह बजे उस कोठी का अधिपति अपने नौकरों को संग मे लेकर के गाड़ी में बैठ करके बगीचे मे आया। नौकरो को हुक्म दिया कि माया जाके देखो कोई आदमी है तो नहीं ? नौकर अपने मालिक के हुक्म से अन्दर गये और देखा तो दो पुरुष नंगे होकर के सो रहे थे। नौकर उनकूं देख करके डर गया। बाहर आकर के अपने मालिक से कहने लगा—हे स्वामिन् ! माया दो नंगे सो रहे हैं। उस अमीर ने अपने चपरासी कूँ हुक्म दिया कि उनको मारो और बाहर निकालो। चपरासी ने जाके कहा कि तुम कौन हो ? उस समय हे पुत्र ! गुरु महाराज कुछ भी नहीं बोलते भये चुप चाप बाहर चले गये और चेला के दो चार हराटर मारे। चपरासी

संग में चल। यह महात्मा अपने मुख से ही आप ही मेरे-मेरे स कहेगा कि मैंने साक्षात मेरे हाथों से खोदा है-मैंने बगीचा मेरे हाथों से लगाया है, मैंने पानी पीने की की कुण्डी मेरे हाथों खोदी-मैंने मढ़ी मेरे हाथों बाँधी इत्यादि। हे हत्या! ऐसे वचन यह सन्त अपने मुख स बोलेगा। इतने वचन सुन करके हत्या इन्द्र-संग में महात्माजी की मढ़ी पर आयी? इन्द्र ने वृद्ध ब्राह्मण का रूप धारण किया। बगीचे के मार्ग जा करके बैठ गया। हत्या कू बगीचे के बाहर बिठा दी, थोड़ा काल पाकर के महात्मा बगीचे में टहलते २ जहाँ इन्द्र ब्राह्मण का रूप धारण करके बैठा था-वहां आया और ब्राह्मण को देख करके अम्ब जल पूछता भया, इन्द्र के पास महात्मा बैठ गया। इन्द्र महात्मा स पूछता भया हे सन्त जी! यह मढ़ी, यह बगीचा, यह कुण्डी, यह तालाब किसने बनाये हैं। इतने वचन महात्मा के सुन करके (महात्मान) श्रीमुख से कहा—

हे ब्राह्मण! यह तालाब मैंने मेरे हाथों खोदा है, ऐसे ही मढ़ी, कुण्डी, बगीचा मैंने मेरे हाथ स बनाया है—ऐसे वचन इन्द्र के सन्मुख महात्मा न कहे। इन्द्र ने शीघ्र बाहर से हत्या को बुलाई और कहने लगे कि हे हत्या! यह महात्मा सुर कर्त्ता ब्रह्म बनता है और अपने सिर पर पड़ती है, तब मेरे सिर पर पटकता है, जो कुछ इसने मुख स कहा है सो तैने भी श्रवण किया है। याते हे हत्या! अब तू इस महात्मा के लग। मैं मेरे भवन को जाता हूँ। इतने वचन कह कर के इन्द्र अपने भवन कूँ गये।

पुत्र-मित्र है, दयारूपी जिनके भगिनी है और संयम जिनके भ्राता हैं, और शय्या जिनकी सकल भूमि है। दसो दिशा जिनके वस्त्र हैं। ज्ञानरूपी अमृत का वह अष्टप्रहर पान करते हैं। हे पुत्र, जिन महापुरुषों को ऐसा कुटुम्ब प्राप्त होगया है—वह महापुरुष किसी को भय देते नहीं, किसी से भय मानते नहीं।

पद राग मल्हार

मों सम कौन बडो घरबारी।
जा घर में सपनेहु दु:ख नाहीं, केवल सुख अति भारी ।।टेक।
पिता हमारा धीरज कहिये, क्षमा मोर महतारी।
शान्ति अर्ध अंग सखि मोरी, विसरे वो नाहि विसारी ।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी ।। १ ।।
सत्य हमारा परम मित्र है, बहिन दया सम वारी।
साधन संपन्न अनुज मोर मन, मया करी त्रिपुरारी ।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी ।। २ ।।
शय्या सकल भूमि लेटन को, वसन दिशा दश धारी।
ज्ञानामृत भोजन रुचि रुचि करू, श्रीगुरु की बलिहारी ।।
मों सम कौन बड़ो घरबारी ।। ३ ।।
मम सम कुटुम्ब होय खिल जाके, वो जोगी अरुनारी।
वो जोगी निर्भय नित्यानन्द, भय युत दुनिया दारी ।।
मो सम कौन बड़ो घरबारी ।। ४ ।।

— —

पुत्र-मित्र है, दयारूपी जिनके भगिनी है और संयम जिनके भ्राता हैं, और शय्या जिनकी सकल भूमि है। दसो दिशा जिनके वस्त्र हैं। ज्ञानरूपी अमृत का वह अष्टप्रहर पान करते हैं। हे पुत्र, जिन महापुरुषों को ऐसा कुटुम्ब प्राप्त होगया है—वह महापुरुष किसी को भय देते नहीं, किसी से भय मानते नहीं।

पद राग मल्हार

मों सम कौन वडो घरवारी।
जा घर में सपनेहु दु:ख नाहीं, केवल सुख अति भारी ॥टेक।
पिता हमारा धीरज कहिये, क्षमा मोर महतारी।
शान्ति अर्ध अंग सखि मोरी, विसरे वो नाहि विसारी ॥
मों सम कौन वडो घरवारी ॥ १ ॥
सत्य हमारा परम मित्र है, वहिन दया सम वारी।
साधन संपन्न अनुज मोर मन, मया करी त्रिपुरारी ॥
मों सम कौन वडो घरवारी ॥ २ ॥
शय्या सकल भूमि लेटन को, वसन दिशा दश धारी।
ज्ञानामृत भोजन रुचि रुचि करू, श्रीगुरु की वलिहारी ॥
मों सम कौन वडो घरवारी ॥ ३ ॥
मम सम कुटुम्ब होय खिल जाके, वो जोगी अरुनारी।
वो जोगी निर्भय नित्यानन्द, भय युत दुनिया दारी ॥
मों सम कौन वडो घरवारी ॥ ४ ॥

— —

हैं कि तेरे कूं वे अपने फंदे में लेलेंगे। अच्छे पुरुषों का सहवास होना महा दुर्लभ है। इतना वचन कचरा की माता कचरा को कह करके चुप होगई। इति ॥

पुत्रोवाच—

हे मातु श्री! मेरे ऊपर तेरी अत्यन्त कृपा है। मेरे कूं तू वारवार मेरे सुधार के लिये समझाती है। हे माता! मेरे को तेरे वचन बहुत प्रिय लगते हैं जो तैने कथा आज श्रवण कराई, ऐसी कथा मैंने कभी श्रवण करी नहीं। हे माता! तैने जो कथा सुनाई सो कथा नहीं है—महान् मन्त्र हैं! हे माता! मेरा कोई पूर्वला तपोबल बहुत प्रबल है, उसके प्रताप से मेरे को ऐसी कथा श्रवण करने में आयी है। हे माता! अब मैं वन को जाऊँगा, मेरे को शीघ्र आज्ञा दे। मेरा चित्त अब यहाँ लगता नहीं। चित्त-वृत्ति उपराम बहुत होगई है। महावन में महापुरुष रहते हैं, उनका मैं सत्संग करूंगा, और उनके चरणों में ही रहूँगा। भिक्षावृत्ति करके मेरे प्राणों की शान्ति करूंगा!

हे मातुश्री! तेरी भेंट करने कूं मेरे कूं कोई पदार्थ सुन्दर दीखता नहीं। याते हे माता, अब कौनसा ऐसा पदार्थ है जो मैं भेंट करूँ? मेरे को ऐसा कोई नहीं दीखता जो हे मातुश्री, मैं तेरी भेंट करता। हे माता, सब पदार्थ अनात्म हैं—अनित्य हैं, जड हैं, दुःख रूप हैं। याते हे माता! ऐसे पदार्थों का भेंट करना नहीं

बनता है। हे माता! अब मेरे कूं आज्ञा दे, इतने वचन कहता अपनी माता कूं कह करके चुप होगया॥ इति॥

भावार्थ—

हे पुत्र! तू वारम्वार वन में जाने की आज्ञा मांगता है याते तेरे कूं धन्य है। वन में दो प्रकार के संत रहते हैं। एक संत जो निर्विकल्प समाधि में अखंड स्थित रहते हैं, और दूसरे संत ऋद्धि—सिद्धियों की उपासना करते हैं। हे पुत्र, वह ऋद्धि—सिद्धि की उपासना करके सब जगमा रामको देते हैं। तदपि ऋद्धि-सिद्धि उन पर प्रसन्न नहीं होती, क्योंकि ऋद्धि सिद्धि परमात्मा के चरणारविन्द की दासी है। परमात्मा कूं प्रसन्न किए बिना ऋद्धि-सिद्ध उन पर प्रसन्न नहीं होती उनके कब्जे में नहीं होती। हे पुत्र! झाटा नाम सिद्धों का रखवा करके मदारी की नाई अनेक खेल उन जीवों को दिखाते हैं। हे पुत्र! वे सब मदारी के बड़े भाई हैं, क्योंकि गाँव गाँव में जैसे मदारी अनेक खेल करता है, तैसे वे महात्मा भी झूठी—सिद्धि लोगों कू दिखा करके उनका द्रव्य हरते हैं। हे पुत्र! जो उनको सच्ची सिद्धि प्राप्त हो जाती तो मदारी की नाईं गाँव—गाँव में वह संत दो—दो पैसे के लिए नहीं भटकते। याते सिद्ध होता है कि वह नकली संत हैं। करने का काम उन्होंने नहीं किया। आपने भी अधोगति कूं जाने का यत्न किया और उनके सत्संगियों को भी अधोगति में जाने का दी

बोध किया । हे पुत्र ! सच्चे महापुरुषों के चरणों में ऋद्धि-सिद्धि हरदम हाथ जोड़ के खड़ी रहती है । तद्‌पि वह महापुरुष दृष्टि खोल के उनकी तरफ झाकते भी नहीं । क्योंकि ऋद्धि-सिद्ध से महापुरुषों को कुछ भी प्रयोजन नहीं । हे पुत्र ! उन महापुरुषों कूं ऋद्धि-सिद्धि का जो स्वामी है, उसमें प्रेम है । ऋद्धि-सिद्ध मे प्रेम नहीं, ऋद्धि-सिद्धि इस जीव कूं उभय लोक से भ्रष्ट करने वाली है । चौरासी से उस जीव का उद्धार नहीं होता, याते हे पुत्र ! तू तो महापुरुषों का सत्सग करना और प्रभु को प्रसन्न्न करना । प्रभु को प्रसन्न करने से अष्टसिद्धि नवनिधि व तेतीस कोटि देवता सब तेरी सेवा करेंगे । जो प्रभु कूं प्रसन्न नहीं करते हैं, घर त्याग के सत होते हैं, उनको अष्टसिद्धि नवऋद्धि व तेंतीस कोटि देवता उन जीवों कूं महादु ख देते हैं और घोरानघोर नर्क में पड़ते हैं । हे पुत्र ! अष्टसिद्धि नव ऋद्धि व तेंतीस कोटि देवता प्रभु की सेना हैं । प्रभु कूं प्रसन्न किये बिना या उनके स्वरूप की प्राप्ति हुए बिना कोई प्रसन्न नहीं होते । हे पुत्र ! अब तू कुछ तप करने लायक़ हुआ है । हे पुत्र ! तू भी ध्रुव जी महाराज की नाईं अब बन में जा, मेरी तेरे को आज्ञा है । मेरा उपदेश भूलना नहीं । हे पुत्र ! मेरा उपदेश भूल जायगा तो चौरासी में तेली के बैल की नाईं इधर उधर फिरता ही रहेगा । चौरासी छुटाना महा कठिन है । बड़े बड़े ऋषि महर्षियों को तप करने के समय विघ्न हुए हैं । हे बेटा ! अपनी धीरता से हटना नहीं । मेरे दूध

करता है । हे माता ! अब मेरे कूं आज्ञा दे, इतने वचन कहती अपनी माता कूं कह करके चुप होगया ॥ इति ॥

माताजी वाक्य'—

हे पुत्र ! तू बारम्बार वन में जाने की आज्ञा मांगता है यातें तेरे कूं धन्य हैं । वन में दो प्रकार के संत रहते हैं । एक संत तो निर्विकल्प समाधि में अखंड स्थित रहते हैं, और दूसरे संत ऋद्धि-सिद्धियों की उपासना करते हैं । हे पुत्र, यह ऋद्धि-सिद्धि की उपासना करके सब जन्मा रामको देते हैं । तद्यपि ऋद्धि-सिद्धि उन पर प्रसन्न नहीं होती, क्योंकि ऋद्धि सिद्धि परमात्मा के चरणारविन्द की दासी है । परमात्मा कूं प्रसन्न किए बिना ऋद्धि-सिद्ध उन पर प्रसन्न नहीं होती उनके कब्जे में नहीं होती । हे पुत्र ! खोटा नाम सिद्धों का रखना करके मदारी की न्ई अनेक खेल उन जीवों को दिखाते हैं । हे पुत्र ! वे सब मदारी के बड़े भाई हैं, क्योंकि गाँव गाँव में जैसे मदारी अनेक खेल करता है, वैसे वे महात्मा भी झूठी-सिद्धि लोगों कूं दिखा करके उनका द्रव्य हरते हैं । हे पुत्र ! जो उनको सच्ची सिद्धि प्राप्त हो जाती तो मदारी की भाई गाँव-गाँव में वह संत दो-दो पैसे के लिए नहीं भटकते । यातें सिद्ध होता है कि वह नामकी संत हैं । करने का काम उन्होंने नहीं किया । आपने भी अधोगति कूं जाने का यत्न किया और उनके सत्संगियों को भी अधोगति में जान का ही

बोध किया। हे पुत्र ! सच्चे महापुरुषों के चरणों में ऋद्धि-सिद्धि हरदम हाथ जोड़ के खड़ी रहती है। तदपि वह महापुरुष दृष्टि खोल के उनकी तरफ झांकते भी नहीं। क्योंकि ऋद्धि-सिद्ध से महापुरुषों को कुछ भी प्रयोजन नहीं। हे पुत्र ! उन महापुरुषों कूं ऋद्धि-सिद्धि का जो स्वामी है, उसमें प्रेम है। ऋद्धि-सिद्ध मे प्रेम नहीं, ऋद्धि-सिद्धि इस जीव कूं उभय लोक से भ्रष्ट करने वाली है। चौरासी से उस जीव का उद्धार नहीं होता, याते हे पुत्र ! तू तो महापुरुषों का सत्सग करना और प्रभु को प्रसन्न्न करना। प्रभु को प्रसन्न करने से अष्टसिद्धि नवनिधि व तेतीस कोटि देवता सब तेरी सेवा करेंगे। जो प्रभु कूं प्रसन्न नहीं करते हैं, घर त्याग के सत होते हैं, उनको अष्टसिद्धि नवऋद्धि व तेंतीस कोटि देवता उन जीवों कूं महादुःख देते हैं और घोरानघोर नर्क में पड़ते हैं। हे पुत्र ! अष्टसिद्धि नव ऋद्धि व तेंतीस कोटि देवता प्रभु की सेना हैं। प्रभु कूं प्रसन्न किये विना या उनके स्वरूप की प्राप्ति हुए विना कोई प्रसन्न नहीं होते। हे पुत्र ! अव तू कुछ तप करने लायक हुआ है। हे पुत्र ! तू भी ध्रुव जी महाराज को नाई अब बन में जा, मेरी तेरे को आज्ञा है। मेरा उपदेश भूलना नहीं। हे पुत्र ! मेरा उपदेश भूल जायगा तो चौरासी में तेली के बैल की नाई इधर उधर फिरता ही रहेगा। चौरासी छुटाना महा कठिन है। बड़े बड़े ऋषि महर्षियों को तप करने के समय विघ्न हुए हैं। हे बेटा ! अपनी धीरता से हटना नहीं। मेरे दूध

को समझना नहीं। हे पुत्र ! शूरमा रण में आते हैं, शत्रु को मार के पीछे मुख मोड़ते हैं। उनकी हे पुत्र, इस लोक में व परलोक में जय जय होती है। हे पुत्र ! कायर शूरमा—शत्रु कू देख के मुख मोड़ के भागता है, उसकू उभय लोक में मुख दिखाने की कहीं जगह नहीं रहती। याते हे पुत्र ! असली शूरमा बनना और महा शत्रु जो अज्ञान है, ज्ञानरूपी खड्ग से उसको मारना। हे पुत्र ! अब कहाँ तक तेर कूं उपदेश करूं ? महापुरुषों का सत्संग करना महापुरुष तेर का अलौकिक उपदेश करते रहेंगे। जबतक तेरी देह है तब तक महापुरुषों के चरणारविन्दों को छोड़ना नहीं। हे पुत्र ! महापुरुष प्रभु के प्यारे हैं। तेरे को प्रभु से शीघ्र ही मिलावेंगे। इतना वचन कचरा की माता कचरा से कह करके—कचरा कूं वन जाने की आज्ञा देती भई—

पुत्रवाक्य—

हे मातुश्री ! मैं आपको साष्टांग दंडवत् करता हूं। आपकी मैं पुष्प व चन्दनादि से पूजा करता हूं। मेरे मस्तक पे हाथ रख, मेरे को आशीर्वाद दे। इतना वचन कचरा अपनी माता से कह करके निःसंग हो करके एक माटी का खपरा हाथ में ले करके घर से निकला और दरवाजे के बाहर आकर के जिस बस्ती में कचरा रहता था उस बस्ती को साष्टांग प्रणाम कर, बाद में कचरा निःसंग हो करके महा भयंकर वन को चला गया, जिस वन में महापुरुष रहते थे। वहां पर जाके महापुरुषों के चरणों में

पड़ा, और महापुरुषो की नाई कचरा भी तप करने लगा। थोड़े ही दिनो मे कचरा का महा कठिन तप देख करके प्रभु प्रसन्न हुए और कचरा को पुचकार के कचरा की माता ने जो उपदेश वोध किया था, सोई वोध कचरा कूं प्रभु ने किया। कचरा प्रभु की कृपा से वा इनकी माता की कृपा से प्रभु के स्वरूप में लीन हुआ और प्रभु अन्तर्ध्यान हुए। इति

॥ तत्सत् ॥

को छमाना नहीं । हे पुत्र ! शूरमा रण में जाते हैं, शत्रु को मार के पीछे मुख मोड़ते हैं। उनकी हे पुत्र, इस लोक में व परलोक में भी जय होती है। हे पुत्र ! कायर शूरमा-शत्रु को देख के मुख मोड़ के भागता है, उसकी समय लोक में मुख दिखाने को कहीं जगह नहीं रहती। याते हे पुत्र ! असली शूरमा बनना और महा शत्रु जो अज्ञान है, ज्ञानरूपी खड्ग से उसको मारना। हे पुत्र ! अब कहाँ तक तेरे को उपदेश करूं ? महापुरुषों का सत्संग करना महापुरुष तेरे को अलौकिक उपदेश करते रहेंगे। जबतक तेरी वह है तब तक महापुरुषों के चरणारविन्दों को छोड़ना नहीं। हे पुत्र ! महापुरुष प्रभु के प्यारे हैं। तेरे को प्रभु से शीघ्र ही मिलावेंगे। इतना वचन कपरा की माता कपरा से कह करके-कपरा को वन जाने की आज्ञा देती भई—

पुत्रोवाच—

हे माताजी ! मैं आपको साष्टांग दंडवत् करता हूँ। आपकी मैं पुष्प व चन्दनादि से पूजा करता हूँ। मेरे मस्तक पे हाथ रख, मेरे को आशीर्वाद दे। इतना वचन कपरा अपनी माता से कह करके, निर्भय हो करके एक माटी का खपरा हाथ में ले करके घर से निकला और दरवाजे के बाहर आकर के जिस बस्ती में कपरा रहता था उस बस्ती को साष्टांग प्रणाम कर, बाद में कपरा निर्भय हो करके महा भयंकर वन को चला गया, जिस वन में महापुरुष रहते थे। वहाँ पर जाके महापुरुषों के चरणों में

* मंगलम् *

ॐ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च।

(यजुर्वेद)

भावार्थ—हे प्रभो ! आपस्वय मंगल-स्वरूप हो और सर्व को मंगल के दाता हो, अतः आपको नमस्कार है।

हे प्रभो ! आप स्वय सुख-स्वरूप हो और सर्व को सुख के देनेवाले हो, अत आपको नमस्कार है।

हे प्रभो आपस्वयं कल्याण-स्वरूप हो और सर्व को कल्याण के प्रदाता हो, अत आपको नमस्कार है।

मनुष्य जीवन की सफलता के अर्थ

बापजी का उपदेश

अर्थात्

श्रीमत्परमहंस परिब्राजकाचार्य परमअवधूत

पूज्यपाद बापजी श्रीनित्यानन्दजी

महाराज के सारगर्भित

वचनामृत ।

निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है, तब जीवत्व-भाव दूर होकर वह शिवत्व भाव को प्राप्त होता है। शिवत्व-भाव से तात्पर्य त्रिकालाबाध कल्याणरूप स्वस्वरूप (आत्मा) ही से है। यही उक्त योजना का चौथा अंग है।

शिव का वाह्यरूप भी अत्यन्त विचारणीय है, केशर चन्दनादि-लेपन, मुक्ताहार भूषण, पीताम्बर धारण, रम्य कैलाश-निवास, अमृतपान आदि सांसारिक दृष्टि से जिस प्रकार रुचिकर दिखाई देते हैं, उसी प्रकार शिव की सम-दृष्टि में भस्मलेपन, सर्पहार, बाघाम्बर धारण, श्मशान निवास तथा विष-पान भी प्रियकर है। अर्थात्, उनकी दृष्टि में इसके लिए विपरीत भाव किंचित् मात्र भी नहीं है, इसीलिए शिव को कल्याण अर्थात्-परम-आनन्द-स्वरूप कहते हैं।

समदृष्टि की प्राप्ति गंगा के अविच्छिन्न प्रवाह के समान स त शुभ संकल्प, शुभ विचार द्वारा होती है। समदृष्टि की परिपाक अवस्था होने पर अन्तर दृष्टि, जिसे ज्ञान-चक्षु कहते हैं प्राप्त होती है। इसी को शिव का तीसरा नेत्र कहा है। ज्ञान-चक्षु ही मनुष्य जीवन की सफलता का कारण है। यह परमगोपनीय 'शिव-तत्त्व' केवल वाह्य-साधन तथा उपचारादि से ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिज्ञासा सहित परम पुरुपार्थ द्वारा अनुभवगम्य है, जिसका दिग्दर्शन इस छोटी सी पुस्तक मे उत्तम रूप से कराया गया है।

विज्ञप्ति

संसार में सब प्रकार के दुःखों का सदा के लिए निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति कौन नहीं चाहता ? सभी चाहते हैं, परन्तु इसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? यहा मुख्य प्रश्न है।

शिव स्वयं कल्याण-स्वरूप हैं, जिनकी उपासना से उक्त स्थिति प्राप्त हो सकती है, परन्तु, 'शिव उपासना' संबन्धी प्रधान गरिमा के गूढ़ तत्त्वों का वास्तविक रहस्य तत्त्वदर्शी महापुरुष ही जानते हैं।

श्रीमत्-परमहंस शिव-स्वरूप परम अवधूत बाप जी श्री नित्यानन्दजी महाराज ने कुछ श्रद्धालु विद्यार्थियों पर दया करके उन्हें 'शिव उपासना' का सुन्दर क्रम बहुत ही संक्षेप से ऐसे शब्दों में बताया है कि जिसका प्रभाव हृदय पर सहज ही में पड़े बिना नहीं रहता।

यह क्रम योजना चार अङ्गों में विभक्त है —

(१) प्रथम अंग सामान्य स्थिति का है। इस स्थिति में मनुष्य शंकर का निवास कैलाश किंवा शिव लोक में मान कर प्रतिमा आदि के आधार से सदा पूजादि करते हैं, इस प्रकार के उपासकों में जिनका मन भक्ति-भाव से निर्मल हो जाता है उन्हें (२) दूसरे अंग में प्रवेश करने का मार्ग प्राप्त होता है इस अंग में बुद्धि स्थिर होकर श्रद्धा द्वारा ईश्वर की अभिमुखता प्राप्त होती है। (३) शिव का स्पष्ट स्वरूप हृद्गत होने से शिव की अवस्था दूर होती है। जिसे वेदान्त में विक्षेपनाश कहते हैं, यह तीसरा अंग है। इस स्थिति को पार करने पर। (४) अन्त

निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है, तब जीवत्त्व-भाव दूर होकर वह शिवत्व भाव को प्राप्त होता है। शिवत्व-भाव से तात्पर्य त्रिकालाबाध कल्याणरूप स्वस्वरूप (आत्मा) ही से है। यही उक्त योजना का चौथा अंग है।

शिव का बाह्यरूप भी अत्यन्त विचारणीय है, केशर चन्दनादि-लेपन, मुक्ताहार भूषण, पीताम्बर धारण, रम्य कैलाश-निवास, अमृतपान आदि सासारिक दृष्टि से जिस प्रकार रुचिकर दिखाई देते हैं, उसी प्रकार शिव की सम-दृष्टि में भस्मलेपन, सर्पहार, बाघाम्बर धारण, स्मशान निवास तथा विष-पान भी प्रियकर है। अर्थात्, उनकी दृष्टि में इसके लिए विपरीत भाव किंचित् मात्र भी नहीं है, इसीलिए शिव को कल्याण अर्थात्—परम-आनन्द-स्वरूप कहते हैं।

समदृष्टि की प्राप्ति गंगा के अविच्छिन्न प्रवाह के समान स त शुभ सकल्प, शुभ विचार द्वारा होती है। समदृष्टि की परिपाक अवस्था होने पर अन्तर दृष्टि, जिसे ज्ञान-चक्षु कहते हैं प्राप्त होती है। इसी को शिव का तीसरा नेत्र कहा है। ज्ञान-चक्षु ही मनुष्य जीवन की सफलता का कारण है। यह परमगोपनीय 'शिव-तत्त्व' केवल बाह्य-साधन तथा उपचारादि से ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिज्ञासा सहित परम पुरुपार्थ द्वारा अनुभवगम्य है, जिसका दिग्दर्शन इस छोटी सी पुस्तक मे उत्तम रूप से कराया गया है।

विज्ञप्ति

संसार में सब प्रकार के दुःखों का सदा के लिए निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति कौन नहीं चाहता ? सभी चाहते हैं, परन्तु इसकी प्राप्ति कैसे हो सकती है ? यही मुख्य प्रश्न है ।

शिव स्वयं कल्याण-स्वरूप हैं, जिनकी उपासना से उक्त स्थिति प्राप्त हो सकती है, परन्तु, 'शिव-उपासना' संबन्धी प्रचीन परिपाटी के गूढ़ तत्त्वों का वास्तविक रहस्य तत्त्वदर्शी महापुरुष ही जानते हैं ।

श्रीमत्-परमहंस शिव-स्वरूप, परम अवधूत बापजी श्री नित्यानन्दजी महाराज ने कुछ श्रद्धालु विद्यार्थियों पर दया करके उन्हें, शिव उपासना का सुन्दर क्रम बहुत ही संक्षेप से ऐसे शब्दों में बताया है कि जिसका प्रभाव हृदय पर सहज ही में पड़े बिना नहीं रहता ।

यह क्रम उपासना चार अङ्गों में विभक्त है —

(१) प्रथम अंग सामान्य स्थिति का है । इस स्थिति में मनुष्य शङ्कर का निवास कैलाश किंवा शिव लोक में मान कर प्रतिमा आदि के आधार से सदा पूजादि करते हैं, इस प्रकार के उपासकों में जिनका मन भक्ति भाव से निर्मल हो जाता है उन्हें; (२) दूसरे अंग में प्रवेश करने का योग प्राप्त होता है इस अंग में बुद्धि स्थिर होकर श्रद्धा द्वारा ईश्वर की अभिमुखता प्राप्त होती है । (३) शिव का स्पष्ट स्वरूप हृद्गत होने से चित्त की चंचलता दूर होती है । जिसे वेदान्त में विक्षेपनाश कहते हैं, यह तीसरा अंग है । इस स्थिति को पार करने पर । (४) भक्त

निर्वाण अवस्था का अनुभव करता है, तब जीवत्व-भाव दूर होकर वह शिवत्व भाव को प्राप्त होता है। शिवत्व-भाव से तात्पर्य त्रिकालावाध कल्याणरूप स्वस्वरूप (आत्मा) ही से है। यही उक्त योजना का चौथा अंग है।

शिव का वाह्यरूप भी अत्यन्त विचारणीय है, केशर चन्दनादि-लेपन, मुक्ताहार भूषण, पीताम्बर धारण, रम्य कैलाश-निवास, अमृतपान आदि सासारिक दृष्टि से जिस प्रकार रुचिकर दिखाई देते हैं, उसी प्रकार शिव की सम-दृष्टि मे भस्मलेपन, सर्पहार, बाघाम्बर धारण, स्मशान निवास तथा विष-पान भी प्रियकर है। अर्थात्, उनकी दृष्टि में इसके लिए विपरीत भाव किंचित् मात्र भी नहीं है, इसीलिए शिव को कल्याण अर्थात्-परम-आनन्द-स्वरूप कहते हैं।

समदृष्टि की प्राप्ति गंगा के अविच्छिन्न प्रवाह के समान स त शुभ सकल्प, शुभ विचार द्वारा होती है। समदृष्टि की परिपाक अवस्था होने पर अन्तर दृष्टि, जिसे ज्ञान-चक्षु कहते हैं प्राप्त होती है। इसी को शिव का तीसरा नेत्र कहा है। ज्ञान-चक्षु ही मनुष्य जीवन की सफलता का कारण है। यह परमगोपनीय 'शिव-तत्त्व' केवल वाह्य-साधन तथा उपचारादि से ही प्राप्त नहीं होता, किन्तु जिज्ञासा सहित परम पुरुषार्थ द्वारा अनुभवगम्य है, जिसका दिग्दर्शन इस छोटी सी पुस्तक मे उत्तम रूप से कराया गया है।

यह पुस्तक केवल विद्यार्थियों ही के उपयोगी नहीं वरन् मनुष्यमात्र को लाभकारी है।

मानवयोनि पाके विषय-भोग-रत-रह कर अमूल्य जीवन को वृथा नष्ट न करते, शिव-तत्त्व (शिवस्वरूप) प्राप्त करना ही परम कर्तव्य है। जिस समय से मनुष्य इस ओर सार्थक रुचि से प्रवृत्त होता है, तभी से उसकी इस दशा की सच्ची विद्यार्थी अवस्था आरम्भ होती है। ऐसे जिज्ञासुजन को उनके कर्म पथ प्रदर्शन में यह पुस्तक सहायकारी हो, इस सद् इच्छा से यह प्रकाशित करने में आई है।

इस पुस्तक में सूत्रवत् बताये हुए सिद्धान्तों को विशेष रूप से जानने की जिन्हें उत्कण्ठा हो, उनके लिए भगवान् कृष्ण ने गीता में स्पष्ट मार्ग बताया है—

तद्विद्धि प्रणिपातेन, परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं, ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥

अर्थात् भली प्रकार दण्डवत् प्रणाम तथा सेवा करके निष्कपट भाव से किये हुए प्रश्न द्वारा इस ज्ञान को जान तत्त्वदर्शी महात्मा अर्थात् मर्म के जानने वाले ज्ञानी जन तुझे इस ज्ञान का उपदेश करेंगे।

विनीत—

प्रकाशक

मनुष्य जीवन की सफलता के अर्थ—

बापजी का उपदेश

(१) ज्ञान चक्षु

सर्वत्रावस्थितं शान्तं, न प्रपश्येद् जनार्दनम् ।
ज्ञानचक्षुर्विहीन त्वात्, अंधः सूर्यमिमोघताम् ॥

भावार्थ—सूर्य के प्रत्यक्ष विद्यमान होते हुये भी जिस प्रकार अन्धे मनुष्य को वह दिखाई नहीं पड़ता उसी प्रकार शान्ति प्रदाता जनार्दन (ब्रह्म) सर्वत्र उपस्थित होते हुए भी ज्ञानरूपी नेत्र हीन मनुष्यो को भान नहीं होते हैं ।

उक्त श्लोक का यह आशय है कि मनुष्य जन्म पाकर ज्ञान संपादन द्वारा जीवन को सफल करना उसका परम कर्तव्य है ,

(२) विद्या की महत्ता

जीवन की सफलता बिना ज्ञान के होती नहीं । और ज्ञानविद्या के बिना प्राप्त नहीं होता है, इस लिए मनुष्य का सब से प्रथम कर्तव्य 'विद्या' प्राप्त करना ही है । कविवर हरदयाल जी ने यथार्थ ही कहा है :—

सब भूषण को शुभ भूषण है,
यह ब्रह्ममयी है वाणि सरारा ।
नर को यदि सुन्दर वेग करे,
बपु सार जिस फल देवहि चारा ॥
चतुरानन चौदह भौन रचे,
पर ना विद्या सम ताहि संसारा ।
भर तासे सदैव पढ़ विद्या,
हरप्यारू चहे सु पदारथ चारा ॥

अर्थात्—ब्रह्मा ने चौदह भुवन की रचना की परन्तु, उन सब में विद्या के समान कोई भी वस्तु नहीं क्योंकि विद्या सब भूषणों में उत्तम प्रकार से प्रगति देनेवाली और आत्मा को सफल करने वाली है, इसलिए कवि हरप्यारू कहते हैं कि—जो मनुष्य चारों पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चाहें वे सदैव विद्याभ्यास करें यह का यह उदार वाणीरूपी उपदेश है ।

(३) विद्या के मुख्य भेद

विद्या दो प्रकार की होती है, एक परा, दूसरी अपरा । परा (लौकिक) से बुद्धि का विकास होकर के सांसारिक कार्यों में कुशलता प्राप्त होती है, और कुछ अंशों में परा विद्या अपरा विद्या की साधक भी हुआ करती है । अपरा विद्या से ब्रह्म का साक्षात् ज्ञान होता है ।

(४) परा विद्या

"विद्या ददाति विनयम्"

विद्या से विनय प्राप्त होता है। यदि विद्या पढ़ने पर भी विनय प्राप्त नहीं हुआ तो वह विद्या नहीं, किन्तु अविद्या ही है।

"विनयाद्याति पात्रताम्"

विनय से पात्रता आती है। पात्रता से तात्पर्य व्यवहार मे प्रामाणिकता और आध्यात्मिक ज्ञान के लिए पिपासुता होना है।

"पात्रत्वात् धनमाप्नोति"

पात्र को योग्य मार्ग द्वारा धनादिकी प्राप्ति होती ही है।

"धनात् धर्म तत सुखम्"

धन से धार्मिक कार्य (पुण्य कर्म) होते हैं और धार्मिक कार्यों से सुख प्राप्त होता है। इसलिये शास्त्र मे कहा है कि—

"धर्मं चरति पण्डित"

वास्तविक पढ़ा हुआ जन वही है, जिसका आचरण धर्मानुकूल हो।

(५) अपरा विद्या

शाश्वत सुख अर्थात् 'नित्य आनन्द' जिसे परमानन्द भी कहते हैं, उसकी प्राप्ति केवल अपरा (ब्रह्म-विद्या) द्वारा ही हो सकती है। इसलिए भगवान् ने 'अध्यात्म-विद्या विद्यानाम्' अर्थात् सब विद्याओं में श्रेष्ठ अध्यात्म विद्या ही को अपना स्वरूप कहा है।

सब भूषण को शुभ भूषण है,
यह मधुमयी है वाणि उदारा ।
नर को यदि सुन्दर वेश करे,
पशु सार जिस फल सवहि भारा ॥
चतुरानन चौदह भौन रचे,
पर ना विद्या सम ताहि मँझारा ।
नर चाहे सदैव पढ़ विद्या,
हरप्रसाद चहे जु पदारथ चारा ॥

अर्थात्—ब्रह्मा ने चौदह भुवन की रचना की परन्तु, इन सब में विद्या के समान कोई भी वस्तु नहीं, क्योंकि विद्या सब भूषणों में उत्तम प्रकार से प्रगति देनेवाली और जीवन को सफल करने वाली है। इसलिए कवि हरप्रसाद कहते हैं कि—जो मनुष्य चारो पदार्थ (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) चाहें वे सदैव विद्याभ्यास करें यह का यह प्रकार वाणीरूपी कल्पवृक्ष है।

(३) विद्या के मुख्य भेद

विद्या दो प्रकार की होती है, एक परा, दूसरी अपरा। परा (लौकिक) से बुद्धि का विकास होकर के सांसारिक कार्यों में कुशलता प्राप्त होती है, और कुछ अंशों में परा ही विद्या अपरा विद्या की साधक भी हुआ करती है। अपरा विद्या से ब्रह्म

(४) परा विद्या

" विद्या ददाति विनयम् "

विद्या से विनय प्राप्त होता है। यदि विद्या पढने पर भी विनय प्राप्त नहीं हुआ तो वह विद्या नहीं, किन्तु अविद्या ही है।

" विनयाद्याति पात्रताम् "

विनय से पात्रता आती है। पात्रता से तात्पर्य व्यवहार में प्रामाणिकता और आध्यात्मिक ज्ञान के लिए पिपासुता होना है।

" पात्रत्वात् धनमाप्नोति "

पात्र को योग्य मार्ग द्वारा धनादिकी प्राप्ति होती ही है।

" धनात् धर्म तत सुखम् "

धन से धार्मिक कार्य (पुण्य कर्म) होते हैं और धार्मिक कार्य्यों से सुख प्राप्त होता है। इसलिये शास्त्र मे कहा है कि —

" धर्म चरति पण्डित "

वास्तविक पढ़ा हुआ जन वही है, जिसका आचरण धर्मानुकूल हो।

(५) अपरा विद्या

शाश्वत सुख अर्थात् 'नित्य आनन्द' जिसे परमानन्द भी कहते हैं, उसकी प्राप्ति केवल अपरा (ब्रह्म-विद्या) द्वारा ही हो सकती है। इसलिए भगवान् ने 'अध्यात्म-विद्या विद्यानाम्' अर्थात् सब विद्याओं मे श्रेष्ठ अध्यात्म विद्या ही को अपना स्वरूप कहा है।

(६) सद्गुरु

अध्यात्म-विद्या का प्राप्ति बिना सद्गुरु (ब्रह्मनिष्ठ) के कदापि नहीं हो सकती इसलिए कहा है—"नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्" ॥

अर्थात् गुरु से बढ़कर संसार में दूसरा तत्त्व (उद्धारक) नहीं है। विचार सागर में भी कहा है —

दोहा—

ईश्वर तें गुरु में अधिक, धारे भक्ति सुजान।
बिन गुरु भक्ति प्रवीण हु, लहे न आतम ज्ञान॥

भावार्थ—यही है कि जिसकी कृपा से मनुष्य नर से नारायण हो जाता है, वह संसार में अवश्य परम पूजनीय तथा सेवनीय है।

(७) गुरु-सेवा

ऐसे सद्गुरु की सेवा—पूजा के लिए उपस्थित होने के पूर्व शुद्धि की आवश्यकता है। यथार्थ शुद्धि केवल शारीरिक शौच तथा बाह्यस्नानादि ही से प्राप्त नहीं होती। इसलिए शास्त्रों में कहा है—

१—"स्नानं मनोमलत्यागम्"

मन के मल का त्याग करना ही वास्तविक स्नान है।

२—"शौचमिन्द्रियनिग्रहः"

इन्द्रियों के व्यवहार को शुद्ध रखते हुए उनको अपने वश मे रखना 'शौच' कहलाता है।

३—"ध्यानं निर्विषयं मन"

विषयो से मन को मुक्त रखना ध्यान है।

(८) ईश वन्दना का रहस्य

जब मन विषय वासनाओं से रहित होजाता है, तब ईश्वर की ओर झुकने के योग्य होने से ईश बन्दना का सच्चा रहस्य जानने लगता है।

(९) महेश-वन्दना

सब देवो के देव महादेव ही हैं, जैसा कि महिम्न मे कहा है—

"महेशान्नापरो देव."

उक्त प्रकार से शौच स्नानादि द्वारा जब मनुष्य अन्दर और बाहर दोनो तरह से निर्मल होकर 'गुरूणां गुरु महेश" की निम्नलिखित बन्दना करता है तब उसे विशेष प्रकार का आनन्द होता है'—

वन्दे देवमुमापतिं सुर-गुरुं, वन्दे जगत्कारणं,
वन्दे पन्नगभूषणं मृगधरं, वन्दे पशूनां पतिं।
वन्दे सूर्यशशांक वन्हि नयनं, वन्दे मुकुन्द प्रियं,
वन्दे भक्तजनाश्रयं च वरदं, वन्दे शिवं शंकरम्॥

भावार्थ—हे देव ! आपको देवताओं के गुरु, जगत् के कारण सर्पमाला से विभूषित, बाघाम्बर धारी, जीवमात्र के अधिपति सूर्य चन्द्रादि द्वारा वन्दित, दिव्य नेत्रवाले, कृष्ण के प्यारे, भक्तों को अभय पद के प्रदाता, हे कल्याण स्वरूपी शंकर ! आपको मैं बारंबार वन्दना करता हूँ।

(१०) वन्दना द्वारा अभिमुखता

इस प्रकार वन्दना करते करते जब अभिमुखता की स्थिति प्राप्त होती है, तब यह भक्त गद् गद् हृदय से निम्नलिखित स्तुति करने लगता है —

> कर्पूरगौरं करुणावतारं,
> संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
> सदा वसन्तं हृदयारविन्दे,
> भवं भवानि सहितं नमामि॥

भावार्थ—हे प्रभो निर्मल गौर वर्ण वाले, करुणा के अवतार, संसार के सार, भुजंगों के हार को धारण करने वाले चैतन्य स्वरूप परमात्मन् ! मेरे हृदय कमल में सदा भवानी सहित बसने वाले ! आपको नमस्कार करता हूँ।

(११) स्व स्वरूप में महेश भावना

अब भक्त की स्थिति इससे भी उच्च कोटि पर पहुँचती है

तब वह अपने आप मे ही शिव स्वरूप का अनुभव कर प्रेम लक्षणा अथवा परा भक्ति में स्तुति करता है :—

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः, सहचराः प्राणाः शरीरं गृहम्
पूजा ते विषयोपभोगरचना, निद्रा समाधिस्थितिः ॥
संचारः पदयोः प्रदक्षिण विधिः, स्तोत्राणि सर्वा गिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलं, शम्भो तवाऽऽराधनम् ॥

अर्थात् हे शम्भो ! तू ही मेरी आत्मा है, बुद्धि माता पार्वती है, प्राण सहचर हैं, शरीर गृह है, जितनी विषयोपभोग रचना है, वह सब पूजन है, निद्रा समाधि है, जो चलता हूँ सो तेरी प्रदक्षिणा है, और जो कुछ बोलता हूँ सो वह तेरी स्तुति ही है, अधिक क्या कहूँ । मैं जो कुछ भी कर्म करता हूं, वह सब हे प्रभो ! तेरी आराधनाही है ।

अहा ! कैसी उत्तम स्थिति है । शिव महिमा का रहस्य कितना गहन और कैसा आनन्दकारी है । यह रहस्य अन्तः करण के उत्तरोत्तर शुद्ध होने पर अधिकाधिक विलक्षणता के साथ अनुभवगम्य । होता हैआरम्भ में जो बातें अदृष्ट और दुर्गम प्रतीति होती थीं, वेहसतत साधन द्वारा सद्गुरु कृपा से सुगम होने लगीं और आगे चलकर अत्यन्त निकटवर्ती अर्थात् अपरोक्ष अनुभव होने लगी हैं ।

भावार्थ—हे देव ! आप तो देवताओं के गुरु, जगत् के कारण सर्पमाला से विभूषित, वाघाम्बर धारी, जीवमात्र के अधिपति सूर्य चन्द्रादि द्वारा वन्दित, दिव्य नेत्रवाले, कृष्ण के प्यारे, भक्तों को अभय पद के प्रदाता, हे कल्याण स्वरूपी शंकर ! आपको मैं बारंबार वन्दना करता हूँ ।

(१०) वन्दना द्वारा अभिमुखता

इस प्रकार वन्दना करते करते जब अभिमुखता की स्थिति प्राप्त होती है, तब यह भक्त गद् गद् हृदय से निम्नलिखित स्तुति करने लगता है —

कर्पूरगौरं करुणावतारं,
संसारसारं भुजगेन्द्रहारम् ।
सदा वसन्तं हृदयारविन्दे,
भवं भवानि सहितं नमामि॥

भावार्थ—हे प्रभो निर्मल गौर वर्ण वाले, करुणा के अवतार, संसार के सार, भुजगों के हार को धारण करने वाले चैतन्य स्वरूप परमात्मन् ! मेरे हृदय कमल में सदा भी सहित बसने वाले ! आपको नमस्कार करता हूं ।

(११) स्व स्वरूप में महेश भावना

अब भक्त की स्थिति इससे भी उच्च कोटि पर पहुंचती है

अहं निर्विकल्पो निराकार रूपो,
विभुत्वाच्चसर्वत्र सर्वेन्द्रियाणाम् ।
सदा मे समत्वं न मुक्तिर्नबन्ध-
श्चिदानन्दरूपः शिवोऽहं शिवोऽहम् ॥

अर्थात्—मैं निर्विकल्प, निराकार रूप व्यापक सर्वत्र सर्व इन्द्रियों से सदा सर्व काल समरूप हूँ। न मैं मुक्त हूँ, न बन्ध हूँ। वरन सच्चिदानन्दरूप शिव हूँ, शिव हूँ।

(१३) अभेद दर्शन

इस अवस्था के अन्त में त्रिपुटि अर्थात् द्रष्टा-दृश्य-दर्शन, भक्त-भगवान्-भक्ति तथा ध्याता-ध्येय-ध्यान एक होजाने से अद्वैत स्थिति अपरोक्षानुभव का अलभ्य लाभ प्राप्त होता है, तब वह यही स्वाभाविक भाव ग्रहण कर लेता है'—

'समासम चैव शिवार्चनं च"

चराचर मे सम भाव का होना शिव पूजन है।

ऐसा जो समदर्शी पुरुष है वही "हित श्रोक्ता धीर वक्ता" कहलाता है, उसी को वास्तव मे पण्डित नाम शोभा देता है। श्री भगवान् का वचन है कि—

"पण्डिता' समदर्शिन'"

पण्डित उसी को कहते हैं—जो समदर्शी हो। समदर्शी ही को

(१२) अपार महिमा का अनुभव

इस उच्च स्थिति का भक्त कुछ काल ज्यों ज्यों अनुभव करता है, त्यों त्यों उसको शिव–गुरु के व्यापक स्वरूप की महत्ता का विशेष विशेषरूप से पता लगाता जाता है, परन्तु अपार का पार क्या ? तब वह स्थगित होकर ऐसे उद्‌गार प्रकट करता है —

असित गिरि समस्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे,
सुरतरुवरशाखा लेखनीपत्र–मुर्वी ।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति ॥

भावार्थ—हे प्रभु आपकी महिमा का क्या वर्णन करूँ । मैं तो क्या पर सारे समुद्र की स्याही होकर कल्पवृक्ष की कलम बनाई जावे, पृथ्वी ही कागज हो, स्वयं शारदा लिखने बैठे और सदा सर्व काल लिखती रहे तो भी वह पार नहीं पा सकती, तो मेरी क्या शक्ति ? स्वयं वेद ही यह कहता है —

"यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसासह"

अर्थात् जहाँ से वाणी लौटकर चली आती है, वह स्थिति मन आदि से भी अप्राप्य है । ऐसी स्थिति में मनुष्य के अन्तःकरण का निश्चय इस प्रकार होता है —

(१५) धीर वीर

इस परम पुरुषार्थ की प्राप्ति केवल धीर वीर पुरुष ही करने मे समर्थ हो सकते है। कायरों का काम नहीं। शूरवीर ही समर्थ हो सकते हैं। शूरवीर की परिभाषा श्रीशंकराचार्य महाराज ने निम्नलिखित की है —

"शूरान्महाशूरतमोस्ति को वा" ?

शूरो मे महाशूर कौन है ?

'मनोजवाणैर्व्यथितोन यस्तु' ।

कामदेव के वाणों से जो व्यथित नहीं हुआ है ।

प्राज्ञोऽथ धीरश्च समस्तु को वा ?

सब में प्राज्ञ और धीर कौन ?

"प्राप्तो न मोहं ललनाकटाक्षैः"

जो ललनाओं के नेत्र कटाक्षों में मोहित नहीं हुआ है।

सारांश यह है कि जिन्होंने अपनी इन्द्रियों पर पूर्ण रूप से विजय प्राप्त किया है वेही सच्चे शूर हैं। इसीलिए कहा है —

"इन्द्रियाणाँ जये शूर "

अभेद ज्ञान प्राप्त होता है । जो अपरा विद्या का मुख्य फल है, इसीलिये कहते हैं —

"अभेद दर्शनं ज्ञानं"

अपरोक्षानुभव अर्थात् भेद रहित ज्ञान ही स्वरूप दर्शन कहिये आत्मसाक्षात्कार है ।

(१४) गुरु कृपा

इस आत्मसाक्षात्कार के करनेवाले सद्गुरु के लिए शास्त्रों में कहा है —

"दातासम्मान्दानत"

इस गुह्य विद्या के प्रदाता दातारों के दातार केवल महेश कहिये गुरुओं गुरु ही है । जिनकी कृपा से मनुष्य स्वरूप को प्राप्त होता है । गुरु दत्तात्रेय भगवान् ने भी कहा है —

गुरुप्रज्ञाप्रसादेन, मूर्खो वा यदि पण्डितः ।
यस्तु संबुध्यते तत्त्वं, विरक्तो भवसागरात् ॥

भावार्थ यह है कि—गुरु के ज्ञानरूपी प्रसाद से मूर्ख व पण्डित कोई भी यदि हुआ तो; इस तत्त्व का बोध होजाने पर इस संसार रूपी समुद्र से वह पार होता है ।

विद्यार्थी लक्षण

श्लोक—

काकचेष्टा बकध्यानं, श्वाननिद्रा तथैव च ।
अल्पाहारी ब्रह्मचारी, विद्यार्थी पंच लक्षणम् ॥

अनधिकरी विद्यार्थी-

दोहा—

सुखी वियाधि आलसी, कुमति रसिक बहु सोय ।
ते अधिकारि न शास्त्र को, षट दोषी जन जोय ॥

विद्या प्राप्ति के साधन

दोहा--

गुरु पुस्तक भूमी सुभग, प्रीतम खचर सहाय ।
करहि वृद्धि विद्या पढी, बहिर पञ्च गुण गाय ॥

(सार सूक्तावली)

(१६) उपसंहार

अन्त में जिज्ञासु जनों का उचित कर यही कहना है कि सद्विद्या पढ़ने से विद्वानों का इस लोक में सर्वत्र सम्मान-पूजन होता है और देह के वियोग होने पर—

"देहाभावे तथा योगी, स्वरूपं परमात्मनि"

अर्थात् देह का वियोग होने पर तथा योगावस्था होने पर स्वरूप से ही परमात्म स्थिति प्राप्ति होती है। यही मनुष्य जीवन की सफलता की सफलता है।

ॐ तत्सत्

विद्यार्थी लक्षण

श्लोक—

काकचेष्टा बकध्यानं, श्वाननिद्रा तथैव च ।
अल्पाहारी ब्रह्मचारी, विद्यार्थी पंच लक्षणम् ॥

अनधिकरी विद्यार्थी–

दोहा—

सुखी वियाधि आलसी, कुमति रसिक बहु सोय ।
ते अधिकारि न शास्त्र को, षट दोषी जन जोय ॥

विद्या प्राप्ति के साधन

दोहा--

गुरु पुस्तक भूमी सुभग, प्रीतम खचर सहाय ।
करहि वृद्धि विद्या पढी, बहिर पञ्च गुण गाय ॥

(सार सूक्तावली)

(२)

गुरुदेव कहे सोइ पंथ चलो ।

यह बोध विमल अवधूत करे, गुरुवेद कहे सोइ पंथ चलो ।
नहिं क्लेश, आनन्द की थाह कोइ, यह ज्ञान खरो, यह ज्ञान खरो ॥

यह बोध० ॥टेक॥

गुरुवार को पूज्य गुरुवर की, पूजन करके दर्शन करना ।
दर्शन विन पूजन नाय बने, परमाद तजो, परमाद तजो ॥

यह बोध० ॥ १ ॥

गुरुदेव चराचर विश्व पति, दर्शन करते ही करदे मुक्ति ।
विन दर्शन होय नहीं मुक्ति, परमाद तजो परमाद तजो ॥

यह बोध० ॥ २ ॥

सत्संग करो चाहे खूब पढो, चाहे दान करो चाहे भक्त बनो ।
दर्शन करना दर्शन करना, परमाद तजो परमाद तजो ॥

यह बोध० ॥ ३ ॥

अविनाशी है आतम ब्रह्म अचल, गुरुणाम् गुरु श्रुति चित्त कहे ।
जड़ जीव की जड़ में होय रति, परमाद तजो परमाद तजो ॥

यह बोध० ॥ ४ ॥

(३)

आनन्द करो, आनन्द करो।

यह बोध विमल अवधूत करे, आनन्द करो, आनन्द करो।
इस योग से योगीराज बने, आनन्द करो, आनन्द करो॥

यह बोध०। टेक।

ग्रन्थी ग्रन्थों के पढ़ने से, बिन काटे आपहि आप कटे।
मोह का परदा दिल पे न रहे, ईकार तजो, ईकार तजो॥

यह बोध०॥१॥

गुरुदेव करें जब बोध अरी, निष्कपट जिज्ञासु की मुक्ति करे।
यह उत्तम मत धारण करना, ईकार तजो, ईकार तजो॥

यह बोध०॥२॥

ज्ञानी नहिं बाद विवाद करे, एक बाद विवाद अज्ञानी करे॥
कर दूर चमत्कार चमकीले सुनो, ईकार तजो, ईकार तजो॥

यह बोध०॥३॥

दोहा—

अब चेतन छिपते नहीं, देख दीखते साफ।
विद्वान् मिल ईश स्वयं, आपे न आप अजाप॥१॥

वार्ता-प्रसंग

(परोपकार कर्त्ता को कभी २ आनन्द के बदले क्लेश भी उठाना पड़ता है)

जैसे तैसे पुरुष को, दे उपदेश न सन्त।
मूरख कवि बिन गृह करो, चटिका ओ गृहवन्त॥१॥

एक दिन उपदेश प्रसंग मे गुरु शिष्य के प्रति बोले—हे शिष्य ! सांसारिक लोगों की माया बडी विचित्र होती है। इनसे बचकर चलना महान् कठिन कार्य है। महान् पुरुष ज्यों ज्यों इनसे निवृत्ति चाहते हैं, त्यों त्यों ये उन्हें अधिक अधिक सताते हैं। इनकी मूल दृष्टि निज स्वार्थ की ओर ही रहती है, वास्तविक पारमार्थिक श्रद्धा तो होती नहीं केवल अपने स्वार्थ सिद्ध करने को जब तक स्वार्थ सिद्ध नहीं होती, दिखावटी सेवा-भक्ति करते रहते हैं, और स्वार्थ सिद्ध होजाने पर विमुख

हो जाते हैं । कोइ कोई तो कृतघ्न बनकर दुःख तक पहुँचाने वाले बन जाते हैं । इसलिए चाहे धनी विभूति वाला हो, चाहे लोग, जहाँ तक हो सके इनके प्रलोभनों में मत आना और न इन्हें निज का भेद ही देना, क्योंकि वास्तविक स्वरूप के समझने वाले तो लाखों में एकाध ही सद्‌गुण-सम्पन्न, कृतज्ञ अर्थात्-उपकार मानने वाला होता है नहीं तो अन्त में वह उपकारिकता ही महात्मा को क्लेश दाता हो जाती है इस पर तुझे एक दृष्टान्त सुनाता हूँ; चित्त लगाकर सुन—

किसी नगर के निकट एक उपवन में कोइ एक महान् विरक्त समर्थ महापुरुष रहते थे, उनकी सेवा उस नगर के एक सेठ का पुत्र किया करता था । काल पाकर वह लड़का बीमार पड़ा और ऐसा बीमार हुआ कि उसके जीने की आशा घरवाले, वैद्य हकीम, डाक्टर सब ने छोड़दी । सारे शहर में हाहाकार मच गया, क्यों कि बड़ा सेठ, एक मात्र पुत्र वह भी सुन्दर, जवान, पढ़ा लिखा सबका प्रिय और साधु सन्तों का सेवक । इन गुणों को करके बहुत लोगों को बड़ी चिन्ता हुई ।

दुनिया दुरंगी ठहरी, तरह तरह की बातें शहर में होने लगीं, किसी ने कहा इसकी यह साधु-सेवा का फल है । धन भी लगेगा और शरीर भी जाने की तैयारी में है । सुनते हैं इसके गुरु तो बड़े समर्थ हैं, तो अब इसे क्यों नहीं बचाते ? देखो, कितने दिन से कितना बीमार है । कैसा कष्ट उठा रहा है, पर वे एक दिन

भी न तो उसके पास आए न समाचार ही पुछवा मंगवाये। किसी ने कहा अरे यार! ये साधु बाबा किसी के नहीं होते, माल-चट्ट होते हैं, जब तक माल मिला, तारीफ कर करके माल चाटते रहे, जब मौका पड़ा तो निर्मोही बन गए। किसी ने कहा-भाई! साधु का इसमें क्या दोष सब अपने अपने कर्मों के फल को भोगते हैं। सेवा करी है तो इसका फल स्वर्ग मे या दूसरे जन्म में मिलेगा। दूसरे ने कहा-साधु सेवा का फल तो प्रत्यक्ष होता है और जब इसके गुरु समर्थ ही हैं तो समर्थ पना क्यों नहीं बतलाते? यह खरा खरी का मौका,-किसी ने कहा भाई! इसमे उस लड़के का ही दोष है। हमने इसको बहुत समझाया था कि देख इस साधु से तुझे कुछ मिलने वाला नहीं है, हमारे गुरु का चेला होना वे बड़े प्रत्यक्ष चमत्कार के दिखाने वाले हैं, और बड़े बड़े लोग उनके पास आते जाते है-पर हमारी नहीं मानी। अब क्या हो सकता है? घड़ी दो घड़ी में मरनेवाला है, पृथ्वी पर उतार दिया है। भगवान् करे सो खरी। सारांश इस प्रकार कि तरह तरह की बातें इधर उधर होने लगीं।

इसी नगर का एक वयोवृद्ध पण्डित भी उन महात्मा जी का भक्त था, लोगों का स्वभाव ही होता है कि भगवान् से कहने की नहीं बने तो भक्त को खरी खोटी सुनावें। उसी प्रकार उस भक्त पण्डित को तानाजनी करने लगे। जब पण्डित ने देखा कि सारे

शहर में बहुत बावेला हो रहा है और अब उससे न सहा गया तो वह उपराम होकर महात्माजी के पास गया। दर्शन मेला के स्थान पर पण्डित को अतीव उदास देख महात्मा ने पूछा—कहो पण्डित आज बहुत उदास क्यों हो ?

पण्डित ने कहा—'महाराज कुछ नहीं ऐसे ही'। पण्डित निर्लोभी, गुरु भक्त तथा वयोवृद्ध था। इससे महात्मा जी ने फिर पूछा—'पण्डित कुछ तो कारण होगा ही, कहो क्या कारण है" ?

पण्डित चतुर था और यह जानता था कि यह महात्मा जी वचन में आजायें तो अवश्य काम बन जायगा, क्योंकि सिद्ध होते हुए भी दयालु तथा परोपकार वृत्ति वाले हैं। इससे बोला—महाराज क्या कहूं, कहना न कहना सरीखा ही है। जो भी मेरी उदासी का कारण मेरा निज का स्वार्थ नहीं है, पर मैंने कहा, और आपने ध्यान नहीं दिया तो कहना वृथा जायगा। इसलिए न कहना ही अच्छा है।

महात्मा बोले—जब तुम्हारा निजी स्वार्थ नहीं तो क्या परोपकार की बात है ?

पण्डित—हां, महाराज ! है तो परोपकार की बात।

महात्मा—फिर कहते क्यों नहीं ?

पण्डित—मैंने कहा और आपने नहीं किया तो ?

महात्मा—करने सरीखा कार्य तो प्रत्येक मनुष्य को करना धर्म है, तो फिर हम साधु ब्राह्मणों का तो शेष रहा शरीर–जीवन परोपकार के निमित्त ही होता है–अवश्य करेंगे।

पण्डित—महाराज वचन दो, आपके करने सरीखा है।

महात्मा—तो इसमे वचन देने की क्या आवश्यकता है ?

पण्डित—नहीं महाराज, वचन तो देना पडेगा, कृपा कीजिए।

महात्मा वातों मे आगए। बोले, 'अच्छा कहो, क्या बात है ?'

पण्डित—महाराज, बात यह है कि अमुक अमुक सेठ का पुत्र जो आपका सेवक है–वह मरणासन्न बीमार है, उसे अच्छा करो।

महात्मा—छिश् ! यह क्या छूगली बात की। उसमें क्या परोपकार–धर्म की बात है। हम किसे मारें और किसे जिलावें। ब्रह्माण्ड में कोई क्षण खाली नहीं जाता कि जिसमें लाखों प्राणी न जन्मते हों न मरते हों। क्या साधु–सन्तों का यही काम है ?

पण्डित—महाराज, यह बात ऐसी नहीं, यह बातें तो सब मैं जानता हूँ कि सेठ का लड़का आपकी कितनी तथा कैसी सेवा करता है, तथा आपका केवल वही एक सेवक नहीं वरन् उसके सरीखे क्या अच्छी २ कोटि वाले छप्पन कोटि सेवक–

भावुक भक्त हैं, और आपकी आज्ञा मात्र पर मर मिटने के इस मरने वाले भी हैं, पर आप तो असंग निर्लेप स्वच्छन्द महान् पुरुष हैं। आपको मनुष्य क्या देवादिक को भी आवश्य क्या नहीं, क्योंकि आप स्वरूपा-वस्थित-केवल स्वरूप हो। पर यह मौका ऐसा आगया है कि—सब्र भर में नास्तिकवाद बहुत फैल गया है और लोगों की श्रद्धा सन्त महात्मा से उठ जाय, इसका प्रबल प्रयत्न हो रहा है। इसलिए कुछ भी करो परन्तु जिस प्रकार अवतारादिक ने समय समय पर और महान पुरुषों ने निर्हेतुकता से अपने अपने अलौकिक सामर्थ्य द्वारा जन-मूढ़ता को दूर कर धर्म का प्रभाव प्रकाशित किया है, तुलसीदास, नरसिंह—मेहता आदिकों के दृष्टान्त आप श्री के मुखारविन्द से श्रोताओं तथा मैंने समय समय पर सुने हैं, उसी प्रकार इस मौके को भी आप लो। मुझे मालूम था कि आप कदापि मेरी प्रार्थना स्वीकार नहीं करोगे। इसलिये मैंने पहिले आपसे वचन लेलिया है। अब तो वचन बद्ध हो गये हो प्रार्थना माननी ही पड़ेगी। थोड़े दिन बाद वह भले ही मर जाय पर इस समय की चोटी तो राख दो।

महात्मा बड़े पसोपेश में पड़ गये बड़े धर्म संकट में पड़ गये। विचार करते करते महात्मा समाधिस्थ होगए। समाधि में महात्मा ने नारायण को स्मरण कर प्रार्थना की।

"हे प्रभो ! आत्मरूप से जो कुछ है सो आप जानते ही हैं। पर देहरूप से तो आपका दास हूँ। कर्त्ता कारयिता सब तू है, जो तुझे अच्छा लगे सो कर, तेरा धर्म और तू रक्षक"।

समाधि से निवृत हो महात्मा ने पण्डित से कहा—जाओ घर, लोगो की कही हुई निन्दा स्तुति पर ध्यान मत दो, प्रभु सब भली करेंगे। उस लडके से जाकर कह देना कि—सब प्रकार की चिन्ताओ को दूर कर इष्ट स्मरण कर। गुरु महाराज सब देख रहे हैं, जो होगा अच्छा ही होगा। चिन्ता मत करना। हे पण्डित ! आयन्दा फिर कभी ऐसी बात हम से मत करना जाओ।

पण्डित हर्षित चित्त से लौटकर शहर में आया और उस मृतप्राय अर्ध्व-श्वासित वणिक्-पुत्र को गुरु महाराज का शुभ सन्देश सुना, अपने घर चला गया। गुरु कृपा से उस वणिक् पुत्र की दशा एक दम पल्टी। जिसे देख प्रेमी भावुक, इष्ट-मित्र महान् आश्चर्यान्वित हुए। थोड़े काल में प्रभु की कृपा से लड़का अच्छा हो गया। दुनिया तो फिर भी दुरङ्गी ठहरी। लोगों का हाथ रोक सकते हैं, बोलते का मुह थोडे ही बन्द हो सकता है ? अस्तु।

लड़का अच्छा तो हो गया, पर समय पाकर उसकी वृत्ति में फेर पड़ा। श्रद्धा, भक्ति के बजाय आलस्य, प्रमाद, अभिमानादि ने डेरा जमाया। एक दिन गुरु ने कुछ उपदेश किया जो उसे

छुरा लगा। यहाँ तक कि मौका पा रात्रि को जब गुरु सोये हुए थे वही लड़का—जिसे गुरु ने प्राण दान दिया था, छुरा लेकर गुरु जी की छाती पर चढ़ बैठा। गुरु हक्का-बक्का गये, पर क्या कर सकते थे। वृद्ध, निःशस्त्र और ऊँघमरे थे। उधर शिष्य जवान, सचेत और सशस्त्र। गुरु ने नीचे पड़े पड़े शिष्य को छाती पर चढ़ा देख विचार किया। अब क्या करना? यदि प्रतिरोध करता हूँ, और उससे उसका कुछ अनिष्ट हो जाय, तो अच्छा नहीं, और यदि कुछ नहीं करता हूँ और चुपचाप मरता हूँ तो भी इस गुरु-हत्या के पाप से इसकी अधोगति होती है। यह मूर्ख अज्ञान-वश ऐसा कर रहा है। अब क्या करना, विचार में निरुपाय हो महात्मा ने मन ही मन नारायण का स्मरण किया। नारायण तो भक्त-वत्सल, सन्त, गो प्रतिपालक ठहरे पधारे।

गुरुजी की यह दशा देख हँसे। महात्मा बोले—नारायण यह क्या?

नारायण बोले—यह परोपकार का बदला! तुम सन्त के पन्थ को नहीं जानते, पर अब करना क्या?

महात्मा—तुम जानो, तुम्हारा धर्म और तुम रक्षक।

नारायण की कृपा हुई। महात्मा जी के व प्रभु स्वरूप के तेज से शिष्य एक दम कम्पायमान हो भयभीत हो भागा और गुरु निरुपाधिक हुए। अस्तु।

गुरु शिष्य के प्रति कहते हैं-हे शिष्य । देख सासारिक लोग परोपकार के बदले ऐसी गुरुदक्षिणा चुकाया करते हैं । जिस प्रकार काग की दृष्टि हमेशा विष्ठा पर ही रहती है, ऐसी ही गृहस्थियों की दृष्टि सदा निज स्वार्थ की ओर ही रहती है । निष्काम भाव से तथा सत्य हृदय से सेवा करनेवाले तथा महात्मा के सत्य स्वरूप को पहिचानने वाले तो कोई क्वचित् ही माई के लाल होते हैं । इसीलिए कहना है कि-इनसे सदा सर्वदा सावधान रह अपने लक्ष्य में ही जीवन बिताना ।

इतनी बात सुन शिष्य दोनो हाथ जोड़ कर गुरु महाराज के प्रति बोला-महाराज ! इसमें एक शका हुई है कि-गुरु इतने समर्थ थे-तो उन्होंने उस दुष्ट शिष्य को भस्म क्यों नहीं कर दिया ? नारायण को क्यों याद किया ?

गुरु शिष्य को बाल-शका सुन कर मुसकराये और बोले —

बेटा ! बड़ों को बडा ही खयाल करना पडता है । उन्हे आगा पीछा बहुत सोचना पडता है । देख यदि महात्मा उसे भस्म कर देते तो एक तो महात्मा जी का तप क्षीण होता दूसरे शिष्य अधोगति को जाता । महापुरुषों को निज शरीर मे राग नहीं होता, उनका तो एक मात्र लक्ष्य स्वरूप कहो वा नारायण कहो-उसी में रहता है । ऐसे समय में विश्व-व्यवस्थापक जिसे ईश्वर अथवा-भगवान् कहते हैं-नियमबद्ध कार्य करते हैं । महात्मा

तो निवृत रहते हैं। जैसे महर्षि विश्वामित्र कितने समर्थ थे कि जिनमें नया ब्रह्माण्ड रचने तक की शक्ति थी, पर जिस समय व यज्ञ कर रहे थे, राक्षसों ने उसमें विघ्न करना शुरू किया उस समय वे चाहते तो एक क्षण मात्र में सब को भस्म कर देते, पर उन्होंने ऐसा नहीं किया। बरन् साधारण तपस्वी याचक की भाँति राजा दशरथ के पास गये और राम लक्ष्मण को माँग कर लाये, उन्हें शस्त्र विद्या सिखाई और उनसे काम लिया।

राम भगवान् की बात देखो लंका में युद्ध करते समय जब लक्ष्मण जी को शक्ति लगी और वे मूर्छित होगए; उस समय क्या राम उन्हें संकल्प मात्र से अच्छा नहीं कर सकते थे? पर वैसा न करके साधारण गृहस्थ की भाँति उपचार योजना में लगे। हनूमान जी को संजीवन बूटी को भेजा। मार्ग में भरतजी के हाथ से व घायल भी हुए, लंका में से वैद्य को बुलाया, तात्पर्य कि आध्यात्मिक शक्ति का उपयोग नहीं किया। सो क्या तूने रामायणादि ग्रंथों में पढ़ी ही होगी; इसी प्रकार श्रीकृष्ण का उदाहरण लेना। कौरवों का नाश क्या उनके लिए कठिन था? क्षण मात्र में कर सकते थे—पर निःशस्त्र रह कर रथ-चालक हो अर्जुन से काम लिया और आप अलग के अलग रहे। दूसरा उदाहरण सुदामा—श्रीकृष्ण का ला। सुदमा कितना गरीब कैसी

व्यवस्था मे वृद्ध कोढ़ टपक रही, स्त्री समविचार वाली नहीं, बहु सन्तति, भोजनादि के पूरे साधन नहीं, और दोस्त किसके? त्रैलोक्याधिपति भगवान् श्रीकृष्ण के। पर उन्होंने अपने लिए अन्त करण में कभी ऐसा संकल्प नहीं किया कि—"मुझे अच्छा करो" वगैरा परोक्ष की बात जाने दो, अपरोक्ष में श्रीकृष्ण उनकी सेवा करते रहे, पर उस निस्पृही भक्त ने कभी दीनता नहीं दिखाई। अन्त में भले भगवान् ने अपना भगवानपन दिखाया और भौजाई (सुदामा जी की पत्नी) की मनोकामना पूर्ण की। जो हो, सुदामा निस्पृही ही रहे, जिनकी बोधप्रद कथा भागवतादि में प्रसिद्ध ही है, सो तू जानता ही है। ऐसे अनेक इतिहास हैं। यह तो महान् पुरुष अवतारादिक की बात है। पर तुझे साधारण वन पशुओं का एक दृष्टान्त सुनाता हूं कि जिसके सुनने मे तुझे ज्ञात होगा कि—साधारण बुद्धिवाला भी किस युक्ति से काम निकाल लेता है कि जिसमें साँप भी न मरे और लाठी भी न टूटे। चित्त लगाकर सुन—

किसी बन में एक शिकारी ने सिंह के पकड़ने को पिंजरा रखकर उसमें बकरी बाँधी। सिंह बकरी के खाने को उसमे घुसा, सिंह के घुसते ही फाटक के बन्द होजाने से सिंह उसमें घिर गया।

दैव वशात् दो-तीन दिन बन्द रहने से सिंह बड़ा व्याकुल हो गया। देव से प्रार्थना करने लगा कि हे प्रभो! इस बन्धन से

मुक्त कर, भविष्य में कभी ऐसे बन्धन में नहीं पड़ूंगा"। जिस जगह सिंह गया था, उसी मार्ग से एक सियार गुजरा। सियार को देखकर सिंह बोला—हे चतुर मित्र ! उद्धार करो !! देख मैं वन का राजा हूँ, पर इस समय फंस गया हूँ। यदि तू मुझे इससे मुक्त करदे तो मैं तेरा उपकार कभी नहीं भूलूंगा और सदा मित्रता निभाऊंगा। तू जानता ही है कि राजा की दोस्ती हो जाने पर फिर तुझे कुछ चिन्ता न रहेगी। एक तो तू सदा के लिए निर्भय हो जायेगा। दूसरे तुझे भोजनादिक की भी कुछ चिन्ता न रहेगी। मैं यावत् जीवन तुझे भोजनादि दूंगा। सियार भोला-भाला था, सिंह की बातों में आ गया। अपने पंजों से पिंजरे का फाटक उघाड़ा, सिंह बाहर निकला परन्तु, बन्धन मुक्त होते ही सिंह की वृत्ति में फर्क पड़ा, वृत्ति पलटी। भक्ष्य पदार्थ सन्मुख देखते ही क्षुधातुर हो सियार पर झपटा।

सियार बोला—हे मृगराज ! यह क्या ? अभी तो चार क्षण भी नहीं गुजरी कि तुमने रक्षक होने का वचन दिया था उसके विरुद्ध उसे भूलकर भक्षक बन रहे हो ?

सिंह हँसा और बोला—हे भोले प्राणी ! तू नहीं जानता कि राजा किसी के मित्र नहीं और वेश्या किसी की पत्नी नहीं, वेश्या तो कदाचित् निभा भी दे—पर राजा से मित्र भाव की आशा रखना आकाश कुसुम प्राप्त करने सरीखी बात है।

सियार—पर दिये वचन को तो सधारण से साधारण प्राणी भी निभाता है।

सिंह—अरे मूर्ख! साधारण आदमी भले वचन निभादें, क्योंकि वे साधारण ठहरे। राजा लोग ऐसे वचन निभाने लगें तो राज्य कैसे करें ? यह नीति-फीति तेरी तेरे पास रहने दे, मुझे भूख लगी है।

सियार—पर नीति भी तो आपही लोगों ने बनाई है। और कितनों ही ने जैसे कहा है, वैसा ही करके दिखाया भी है।

सिंह—नीति बनाने वाले मर गये, वे मूर्ख थे। नीति दूसरों के लिये बनायी जाती है। जो नीति के चक्कर में आते हैं, उन्हें दुनिया मूर्ख ही समझती है। बहस मत कर मुझे भूख लगी है।

सियार—पर मेरे खाये से आपकी भूख भी तो नहीं मिटेगी?

सिंह—भोजन न सही कलेवा ही सही, बहस न कर—मैं तो तुझे बिना खाये छोड़ने का नहीं ?

सियार—हे बनराज! अब आप खाओगे तो सही। मेरी अन्तिम प्रार्थना स्वीकार करलो तो अच्छा।

सिंह—क्या प्रार्थना है, जल्दी बोल मुझे बहुत भूख है।

सियार— मरने के पहिले शंका निवृत हो जाय तो अच्छा

क्योंकि—शाकिर मरना अच्छा नहीं। संका यही है कि—क्या परोपकार का यही बदला होता है? इसका न्याय तीसरे प्राणी से करवालो। जो न्याय हो वह सही।

सिंह ने सोचा—चलो इस प्राणी के मन की भी हो लेने दो। मेरे खिलाफ अव्वल तो कोई कहने वाला मिलेगा नहीं। यदि कोई मिल गया तो मैं उसकी मानने वाला कब हूं। उसके समेत चट कर जाऊंगा। ऐसा मन ही मन सोचकर सिंह बोला—अच्छा चलो। दोनों सिंह सियार न्याय कराने को चले। जो वन पशु इन्हें देखें, इनसे ही मन में यत्र तत्र भाग जाँय। अन्त में एक बूढ़ा सियार मिला। उसे इन दोनों ने उस पुकारा। वह आकर दूर खड़ा रहा। दोनों ने उससे अपना सब हाल कहा। सियार चुपचाप सब सुनता रहा।

सब हाल सुनकर बूढ़ा सियार थोड़ी देर चुप रहा—तब गंभीरता पूर्वक बूढ़ा सियार बोला—भाई तुम लोगों का इन्साफ तो हो सकता है, पर बिना मौका देखे ठीक ठीक न्याय नहीं हो सकता। इसलिए चलो अव्वल हमको मौका दिखलाओ।

सिंह सियार और न्याय पंच (वृद्ध सियार) चले। वह तीनों उसी जगह जहाँ पिंजरा था—पहुँचे। न्यायाधीश ने कहा—जिस हालत में थे वैसे ही हो जाओ। युवक सियार ने अंगला ऊँचा किया सिंह भीतर घुसा अंगला नीचा हो बन्द हो गया।

सिंह सियार को यथास्थित देख बूढे सियार ने उस युवक सियार को इशारा कर चलना शुरू किया। दोनो को चलते देख सिंह गुर्रा कर बोला-यह क्या ? इन्साफ करो।

बूढा सियार बोला—और इन्साफ क्या चाहिये ? मूर्ख! कृतघ्न! राजा होकर एहसान फरामोश हुआ जाता था ? इस पाप से तुझे बचाया-यह इन्साफ क्या कम है ? जवान सियार से कहा—बेटा जी, अभी तुमको बहुत जमाना गुजरान करना है। ऐसों के साथ क्या परोपकार करना जो रक्षक के बजाय भक्षक बन जाय। देख नीति के इस वाक्य को ध्यान में रखना—

उपकारोऽपि नीचानां, प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजंगानां, केवलं विषवर्द्धनम्॥

अर्थात् नीच पुरुष पर उपकार करना क्रोध का हेतु ही होता है शान्ति का नहीं। जैसे सर्प को दूध पिलाने से केवल विष की ही वृद्धि होती है। दोनों सियार चलते बने। अस्तु।

इतना दृष्टान्त कह गुरु बोले "हे शिष्य! देख उस वृद्ध सियार ने युक्ति से कार्य लेकर अपना, अपने जाति बन्धु का प्राण बचाया तथा सिंह को शिक्षा दे, कृतघ्नता के पाप से बचा लिया। इसी प्रकार उन महापुरुषों ने भी अपने को तप क्षीणता से बचाया।

शिष्य को गुरु घातकता के पाप से बचाया और विरल व्यवस्थापक से व्यवस्था करता धर्म को संरक्षित रखा और आप निर्लेप-असंग ही रहे ।

इतनी कथा कह गुरु शिष्य के प्रति बोले —हे शिष्य इतना कहने का यह प्रयोजन है कि प्रथम अधिकारी परखना । अनधिकारी को हित की बात नहीं कहना, अधिकारी को तो पूर्ण प्रेम से हृदय की वस्तु देना ही चाहिये, क्योंकि—यदि अधिकारी को वस्तु न दी जाय तो फिर उसका उपयोग ही क्या ? तुमने भी तो किसी से प्राप्त ही की होगी न ? यदि व अधिकारी को न दोगे तो तन पर एक प्रकार का ऋण रह जाता है । इसलिए जिस प्रकार उत्तम जिज्ञासु सद्गुरु की खोज में रहता है वैसे ही सद्गुरु भी अधिकारी शिष्य की तलाश में रहते हैं ऐसे उत्तम गुरु-शिष्यों की नामावली में योगी याज्ञवल्क्य, मुनि अष्टावक्र, राजा जनक के नाम सन्त समाज में सदा सर्वदा मान की दृष्टि पूर्वक लिए जाते हैं । देखा राजा जनक को जब बोध प्राप्त करने की जिज्ञासा हुई और अत्यन्त तड़ापेली लगी तो प्रभु कृपा से योगी याज्ञवल्क्य से उनका मेल हुआ । योगी याज्ञवल्क्य के उपदेश स राजा जनक को शान्ति प्राप्त हुई । कैसी शांति कि जिसे महाशान्ति कहते हैं । योगी ने उसकी परीक्षा तक की । एक समय जब योगी याज्ञवल्क्य राजा जनक को कथा सुना रहे

थे तिस समय वहाँ अनेक साधु ब्राह्मणादि बैठे हुए थे। याज्ञवल्क्य जी ने अपने योग बल से जनक की नगरी में आग लगादी जिससे राज महल तथा आसपास के गृहादि जलने लगे। दूसरे बैठे हुए साधु वगैरह तो अपने अपने लोटी–लगोटी बचाने को भागे भी परन्तु राजा जनक वैसा ही शान्त चित्त से एकाग्र मन किये कथा श्रवण में लगा रहा, क्योंकि वह इन्हे अनात्म वस्तु मान चुका था। दूसरे ऋषि–मुनियों को तब निश्चय हुआ कि याज्ञवल्क्य, जनक को इतना क्यों चाहते हैं ?

राजा जनक ने बोध–प्राप्ति कर दक्षिणा में अपना समस्त राज्य गुरु को चढ़ा दिया। गुरु ने विचार किया अपन राज्य को क्या करेंगे ? राजा को बहुत समझाया–पर राजा जब अपने प्रण पर दृढ़ रहा तो याज्ञवल्क्य ने कहा—हे राजन् ! सुन अच्छा यह राज्य हमारा ही सही पर अब गुरु–प्रसादी भी तुझे चाहिए या नहीं ?

राजा बोला—गुरु–प्रसादी से कौन इन्कार कर सकता है।

याज्ञवल्क्य जी बोले—तो राज्य गुरु–प्रसादी समझकर लो। इसकी व्यवस्था करना। अपने पने का अहंकार त्याग अपना जीवन व्यतीत करना। हम तो ब्राह्मण हैं, तपस्या करना हमारा कर्त्तव्य है, राज्य करना क्षत्रियो का धर्म है, सो करो। देखा, दोनों का, अर्थात् राजा जनक की गुरु–भक्ति और त्याग और

नाम तथा चरित्र को पढ-सुन कर भावुक जिज्ञासु भक्त अपना जीवन सुधारने में लगते है। इतनी कथा कहने का यही तात्पर्य है कि-महान् पुरुष-अवतारादि जिज्ञासुओ को उनके कर्मों का फल भुगतवाकर मुक्त कर देते हैं। और आप सदैव असंग और निर्लेप रहते हैं। तभी कहा है कि—

"गुरु शिष्य के लिए पुण्य की मूर्ति है, शिष्य गुरु के लिये भोग की मूर्त्ति है।"

हे शिष्य! इन महापुरुषा के चरित्र खूब मनन करने योग्य है। बडे एकाग्र मन से इनको बारम्बार पढ-सुनकर विचार करना चाहिये। इनके पढ़ने सुनने से आनन्द के साथ २ बड़ा रहस्य प्राप्त होता है। देख, सुदामा-श्रीकृष्ण की बाबत जो प्रथम कहा है, कितना आदर्श जीवन है? भगवान् श्रीकृष्ण चाहे तो एक सुई के नाके में सारे ब्रह्माण्ड को सैकड़ों बार निकाल दें, पर उन्होने सुदामाजी की कोढ धोई, सेवा की, सान्त्वना दी और सब बात चीत करी-पर रोग बाबत कुछ नहीं। तो सुदामा जो का फक्कड़पना देखो श्रीकृष्ण जो कुछ करते-कराते रहे, सब देखते सुनते रहे-पर 'रोग' के बाबत कुछ नहीं कहा। समझते थे, जो कुछ होरहा है, अच्छा ही हो रहा है। स्त्री कुल्टा है-होने दो, बहु सन्तति है-होने दो, गरीबी है-होने दो, कुछ पर्वाह नहीं। यह सब अपनी परीक्षा के लिए है, अपने ध्येय से न हटो।

परीक्षा कितनी टेढ़ी की जाती है, यह भगवान ने दिखला दिया। इतना प्रेम, ऐसा भाव, ऐसी मैत्री भावुकता दिखलाई कि हद करदी। 'कृष्ण–राय' की मैत्री कैसी होना चाहिए। एक दूसरे के प्रति कैसा भाव रख तदनुसार आचरण करना चाहिये। सब बतला दिया, पर परमार्थिक– मार्ग में हरेक को कैसा सचेत, सुदृढ़ रहना, इसका रहस्य भी सन्मुख खड़ा कर दिया है। सच है जब नारायण अन्तर्यामी हैं उसे ही समस्त—घटघट को जानने वाला, उद्धारक कहते हैं; तो वह अपना काम आप करेगा ही। हमें कह कर बतलाने की क्या जरूरत है। जरूरत है केवल इस भाव को कि हमारा भाव उसके प्रति शुद्ध और पूरा हो, फिर कैसा हो कठिन से कठिन रोग क्यों न हो, वह डाक्टर 'वैद्यनाथ' अवश्य अच्छा करेगा। यह दृढ़ भाव सुदामा जी ने कायम रखा और उसके अनुसार भगवान् कृष्ण को डाक्टर बन अच्छा करना पड़ा। ऐसा अच्छा किया कि–फिर कभी सुदामा जी को रोग का नाम न सुनना पड़ा।

गुरु–शिष्य के प्रति कहते हैं कि–हे शिष्य! मैंने जो तुम्हें भक्त, योगी, तथा ज्ञानी की स्थिति के संबन्ध में सूक्ष्म रीति से कहा है, उस पर एकान्त में जाकर बैठ और विचार कर।

॥ ॐ तत्सत् ॥

पुस्तक मिलने का ठिकाना:—

पं० कान्तिचन्द्र शर्मा,

भुवनेश्वरी प्रिंटिंग प्रेस,

रतलाम ।